# पुरुष सूक्त
## (व्याख्या, टिप्पणी सहित)


लेखक

अरुण कुमार उपाध्याय






नाग पब्लिशर्स

११ ए.यू.ए. जवाहर नगर,

दिल्ली-११०००७ (भारत)


## भूमिका

पुरुष सूक्त वेद का मुख्य अंश या सारांश है। यह हर वेद संहिता में पाया जाता है। यहां पुरुष का अर्थ केवल पुरुष या स्त्री व्यक्ति नहीं है, यह सम्पूर्ण विश्व, उसका निर्माता, तथा सभी जड़-चेतन जीव हैं। इस सूक्त में पुरुष द्वारा विश्व का निर्माण, उसका पालन तथा वृद्धि का वर्णन है। पुरुष को ब्रह्म भी कहा गया है। पुरुष रूप में हम पुरों या विश्व की रचनाओं से वर्णन या अध्ययन आरम्भ करते हैं। एक अन्य विधि है, क्षेत्रों का अध्ययन कर उनमें व्यक्त विश्व का निर्माण समझा जाय। यह श्री रूप है। पुरुष तथा श्री (या स्त्री) रूपों के मिलन से सृष्टि हुयी, अत: श्री सूक्त का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है।

पुरुष सूक्त की पाठ विधियों, स्वराङ्कन चिह्न, पुरुष का व्यापक अर्थ तथा वर्गीकरण समझाने के बाद प्रत्येक ऋचा की व्याख्या की गयी है। इसकी १६ ऋचाओं के बाद उत्तर नारायण सूक्त की ६ ऋचायें भी वाजसनेयी यजुर्वेद के अध्याय ३१ में हैं। उनकी भी व्याख्या की गयी है। अन्त में त्रिदण्डी स्वामी विष्वक्सेनाचार्य द्वारा संकलित रामानुज मत द्वारा इस सूक्त की वैदिक पूजा पद्धति दी गयी है। इसमें वेद की सभी शाखाओं तथा कुछ अज्ञात स्रोतों के वैदिक मन्त्र दिये गये हैं। उनके प्रयोग से उनके कई नये भौतिक अर्थों का संकेत मिलता है। यह अध्येताओं के अनुसन्धान का विषय है। पं मधुसूदन ओझा तथा उनके मुख्य शिष्य पं मोतीलाल शास्त्री ने वेद के अधिकांश तत्त्वों की व्याख्या की है। उन्होंने विशेष रूप से पुरुष सूक्त की व्याख्या नहीं की है, पर यह मुख्यत: उन लोगों की पुस्तकों के अनुसार है। उनके वर्णनों के आधार पर मैंने ७ योजन तथा ७ युगों की परिभाषा स्थिर की, जिसके कारण सामान्य संशोधन करना पड़ा। यज्ञ की वैज्ञानिक परिभाषायें प्राय: गीता के अनुसार हैं, जो सभी वैदिक वर्णनों का समन्वय करती हैं।

बाल्य काल में माता श्रीमती जगतारिणी देवी की श्रद्धा तथा पिता पं चन्द्रशेखर उपाध्याय के कोष रचना क्रम में कई रहस्य ज्ञात हुये जो बाद में शब्दों में प्रकट हुये हैं। इसके अतिरिक्त कई सन्तों तथा विद्वानों का अशीर्वाद मिला जिनमें कुछ हैं-पुरी गोवर्धन पीठाधीश स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती, तिरुपति के प्रो. राम सजीवन त्रिपाठी (रामबटोही जी), जैन मुनि महेन्द्रकुमार जी तथा प्रसन्नसागरजी। इनके तथा अन्य कई अन्य सन्तों के आशीर्वाद से ही यह सम्भव हुआ।

कटक, १२-११-२०१०          अरुण कुमार उपाध्याय

## विषय सूची

# पुरुष सूक्त

## अध्याय १

## पुरुष सूक्त के पाठ

**१. पुरुष सूक्त**-पुरुष सूक्त सभी वेदों में आता है। यहां शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन वाजसनेयी संहिता के अध्याय ३१ में वर्णित पुरुष सूक्त की १६ ऋचा तथा उसके बाद उत्तर-नारायण सूक्त की ६ ऋचा हैं। शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता के अध्याय ३५ में भी प्राय: वही पाठ है, किन्तु स्वराङ्कन में थोड़ा अन्तर है। ऋग्वेद मण्डल १० के सूक्त ९० में भी पुरुष सूक्त की १६ ऋचायें थोड़े पाठ भेद से हैं। अथर्व वेद की शौनक संहिता के काण्ड १९ के षष्ठ सूक्त में पाठ तथा क्रम अलग है, विशेषकर अन्तिम ऋचा। पैप्पलाद शाखा (९/५) में प्राय: यही पाठ है, पर स्वराङ्कन उपलब्ध नहीं है। कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी तथा काठक, कपिष्ठल शाखाओं में यह नहीं है। तैत्तिरीय शाखा के संहिता भाग के बदले आरण्यक भाग में पुरुष (३/११ में) तथा उत्तर नारायण(३/१२ में) दोनों सूक्त हैं। इसमें प्रति ऋचा को कई पदों में खण्डित किया गया है। कई ऋचाओं में पर्याप्त अन्तर है। इन सभी का पूर्ण पाठ पूरे स्वराङ्कन के साथ आगे दिया गया है। सामवेद की कौथुमी शाखा (आरण्यक पर्व, ६/४) में मात्र ५ सूक्त हैं जो स्वराङ्कन के साथ दिये गये हैं। जैमिनीय शाखा में भी प्राय: वही सूक्त हैं, पर उनके स्वर चिह्न उपलब्ध नहीं हैं।

**२. पुरुष सूक्त का महत्त्व**-विराट् चेतन विश्व को ही पुरुष कहा गया है। मनुष्य भी उसी चेतन का अंश होने के कारण पुरुष कहा जाता है। उसी को ब्रह्म भी कहा गया है, जिसके कई नामों की एकता का प्रतिपादन ब्रह्म सूत्र में किया गया है। पुरुष को रामानुज सम्प्रदाय में प्राय: नारायण नाम से सम्बोधित किया गया है। विराट् चेतन के द्वारा उत्पन्न जो समरूप पदार्थ फैला हुआ है, वह रस (समरूप) है (तैत्तिरीय उपनिषद्)। इसे पाने से आनन्द होता है, अत: इसे आनन्द भी कहते हैं। नर से उत्पन्न होने के कारण यह नार है, जिसका अर्थ जल भी है। इस जल में चेतन पुरुष सर्वत्र विद्यमान है। नर में उसका अयन (गति या निवास) होने के कारण उसका वैज्ञानिक नाम नारायण है। सम्पूर्ण वेद उसी का वर्णन है, पर उपासना में सब कुछ पढ़ना सम्भव नहीं है, अत: उसके सारांश रूप में पुरुष सूक्त का ही पाठ किया जाता है। इसके पाठ की तथा पूजा विधि भी रामानुज मत के परम सिद्ध सन्त श्री



विष्वक्सेनाचार्य (त्रिदण्डी स्वामी के नाम से प्रसिद्ध) के सङ्कलन के आधार पर दी गयी है।

**३. श्री सूक्त**-सम्पूर्ण विश्व न पुरुष है, न स्त्री। हम समझने के लिये अपनी सुविधा के अनुसार उसे पुरुष या कभी स्त्री के रूप में वर्णन करते हैं। ब्रह्म की परिभाषा ब्रह्म सूक्त के आरम्भ में है-जन्माद्यस्य यत:। अर्थात् जिससे जन्म आदि (वृद्धि, क्षय, मरण सभी) हों । जन्म देने वाले को माता या पिता दोनों माना जा सकता है। सांख्य दर्शन में चेतन तत्त्व को पुरुष तथा निर्माण सामग्री (उपादान कारण) को प्रकृति (स्त्री रूप) कहा गया है। जन्म देने वाली को मातृ कहा गया है, यह पदार्थ रूप है, अत: उसे अंग्रेजी में मैटर (matter) कहा जाता है। मनुष्य का शरीर भी माता के गर्भ में उसी के पदार्थों से बनता है, अत: उसे स्त्री कहा गया है। अन्य भेद है कि पुरुष वृषा है-अर्थात् वह केन्द्र जिससे तेज या पदार्थ का विकिरण हो। जो क्षेत्र इसे ग्रहण कर संयुक्त होता हैं वह योषा (युक्त होने वाला) या स्त्री है। पुरुष रूप में यह १३ प्रकार के विश्व तथा उनमें १४ प्रकार के भुवन बनाता है। स्त्री रूप में क्षेत्र के १० आयाम हैं, अत: १० महाविद्या आदि होती हैं। पुरुष की विस्तृत व्याख्या के साथ तुलना के लिये स्त्री तत्त्व तथा श्री सूक्त की भी व्याख्या की गयी है, जो ऋग्वेद के परिशिष्ट में है। पुरुष स्त्री दोनों रूपों को मिलाने से ही सम्पूर्ण विश्व समझा जा सकता है।

**४.अन्य सूक्त**-अथर्ववेद के पुरुष सूक्त के बाद ज्येष्ठ ब्रह्म के २ सूक्त हैं, जिनका सामान्य अर्थ भी दिया गया है। इसे पूर्ण रूपसे समझना वर्तमान काल में सम्भव नहीं है। अर्थ की व्याख्या में स्वराङ्कन का क्या महत्त्व है, यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। अत: व्याख्या के लिये उसका प्रयोग नहीं किया गया है। पहले पुरुष तत्त्व तथा वेद का सामान्य अर्थ कहा गया है। वेद के अपौरुषेय होने का क्या अर्थ है, तथा वह किस अर्थ में पौरुषेय भी है, इसकी भी चर्चा है।

**५. सहायक ग्रन्थ**-त्रिदण्डी स्वामी के पुरुष सूक्त तथा श्री सूक्त की व्याख्याओं तथा सत्यानन्द योग विद्यालय मुङ्गेर द्वारा प्रकाशित स्वामी निरञ्जनानन्द सरस्वती द्वारा पुरुष सूक्त की व्याख्या का आधार लिया गया है। त्रिदण्डी स्वामी की व्याख्या शाब्दिक अर्थ के लिये पूर्ण है। योग विद्यालय की पुस्तक में इसके अतिरिक्त कुछ दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या का प्रयास किया गया है। किन्तु वेद की वैज्ञानिक व्याख्या

पं. मधुसूदन ओझा ने प्रायः २५० संस्कृत पुस्तकों में की है, जिसकी व्याख्या उनके शिष्यों पं. मोतीलाल शर्मा आदि ने की है। पुरुष सूक्त की व्याख्या उन्होंने नहीं की है। पर उनके वैज्ञानिक अध्ययन तथा मेरे सांख्य-सिद्धान्त में वर्णित छन्द-माप के अनुसार अर्थ की चेष्टा की है ।

## पुरुष सूक्त

## (यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता, अध्याय ३१)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतं स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।५।।
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।६।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।७।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।८।।



तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।।९।।
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।१०।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याक्र शूद्रो अजायत ।।११।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१२।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ।।१३।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१४।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१५।।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१६।।

## उत्तर नारायण सूक्त

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ।।१७।।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।१८।।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा
।।१९।।
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।।२०।।
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे ।।२१।।
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ
व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्व लोकं म इषाण ।।२२।।

**(काण्व संहिता अध्याय ३५ में अन्तर )**

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।
ततो विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१४।।
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ
व्यात्तम्।

## ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ९०

(१६ सूक्त-ऋषि नारायण, देवता पुरुष, छन्द अनुष्टुप, १६ त्रिष्टुप्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।



एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।
ततो विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।५।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।६।।
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।।७।।
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।।८।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।९।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।१०।।
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ।।१२।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।१२।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।।१३।।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।१४।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिध॥ कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१५।।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः
।।१६।।

## अथर्व वेद (शौनक संहिता) १९/६

जगद्बीजः पुरुषः।
१-१६ ऋषि-नारायणः । देवता-पुरुषः । छन्द-अनुष्टुप् ।
सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः।।
तथा व्यक्रामद् विष्वङशनानशने अनु ।।२।।
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ।।४।।
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।५।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।६।।



चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।।७।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।८।।
विराडग्रे समभवत् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।९।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१०।।
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ।।११।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।१२।।
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।१३।।
तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।।१४।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१५।।
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ।।१६।।

## अथर्व वेद (पैप्पलाद संहिता) ९/५

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।।१ ।।
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ् अशनानशने अनु ।।२ ।।
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३ ।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्नेनाभवत् सह ।।४ ।।
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।५ ।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।६ ।।
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।७ ।।
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।८ ।।
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ।।९ ।।
तस्मादश्वा अजान्त ये च के चोभयादतः ।
गावो हजज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।१० ।।
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो हजज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।११ ।।
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।



पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।।१२ ।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१३ ।।
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो ऽअंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ।।१४ ।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्योऽजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१५ ।।
नाभ्यां आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्राङ् तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।१६ ।।

**तैत्तिरीय आरण्यक (३/११)**

स॒हस्र॑ शीर्षा॒ पुरु॑षः । सहस्रा॒क्षः स॒हस्रपात् ।
स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑ वृ॒त्वा । अत्य॑त्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् (१)
पुरु॑ष ए॒वेदं सर्व॒म् । यद्भू॒तं य॑च्च॒ भाव्य॑म्।
उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति (२)
ए॒तावा॑नस्य महि॒मा । अतो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑ं दि॒वि (३)
त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑ष॒ः। पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑वा॒त्पुन॑ः ।
ततो॒ वि॒ष्वङ् व्य॑क्रामत् । सा॒शनानश॒ने अ॒भि (४)
तस्मा॑द् विराड॑जायत । वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत । पश्चाद्भूमि॒मथो॑ पुरः(५)
यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ । दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।
व॒स॒न्तो अ॑स्याऽऽसी॒दाज्य॑म् । ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः (६)

सप्तास्यासन् परिधयः । त्रिसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाः । अबध्नन् पुरुषं पशुम् (७)
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् । पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्तः साध्या ऋषयश्च ये (८)
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यान् । आरण्या ग्राम्याश्च ये (९)
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः । ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत (१०)
तस्मादश्वा अजायन्त । ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् । तस्माज्जाता अजावयः (११)
यत्पुरुषं व्यदधुः । कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू । कावूरू पादावुच्येते (१२)
ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् । बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः । पद्भ्यां शूद्रा अजायत (१३)
चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च । प्राणाद्वायुरजायत (१४)
नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् । शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् । तथा लोकाँ२ अकल्पयन् (१५)
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे ।
सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः ।नामानि कृत्वाऽभिवदन्यदास्ते ।(१६)
धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार । शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः ।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति । नान्य॥ पन्था अयनाय विद्यते


(१७)
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः (१८)

**तैत्तिरीय आरण्यक (३/१२)**

अद्भ्यः सम्भूतः पृथिव्यै रसाच्च । विश्वकर्मणः समवर्तताधि ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति । तत्पुरुषस्य विश्वमाजानमग्रे (१)
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय (२)
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः । अजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम् । मरीचिनां पदमिच्छन्ति वेधसः
(३)
यो देवेभ्य आतपति । यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातः । नमो रुचाय ब्राह्मणे (४)
रुचं ब्राह्मं जनयन्तः । देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् । तस्य देवा असन् वशे (५)
ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । अहोरात्रे पार्श्वे । नक्षत्राणि रूपम् ।
अश्विनौ व्यात्तम्।इष्टं मनिषाण।अमुं मनिषाण सर्वं मनिषाण (६)

**सामवेद कौथुमी शाखा**

**(आरण्यक पर्व, षष्ठ अध्याय, खण्ड ४)**

३१२ ३ १२ ३ २ ३१ २
सहस्रशीर्षा पुरुष:सहस्राक्षः सहस्रपात्।

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमि ँ सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।।३ ।।
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १२ १ २
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनाऽनशने अभि ।।४ ।।
१२३ ३२३ ३ २ ३ २उ ३ १ २
पुरुष एवेदँ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।५ ।।
१ २ ३ २उ ३ ३ १ २ ३ १२
तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
३ १ २३ १ २र ३ १र २र ३ १२
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।६ ।।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३२
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।७ ।।

**सामवेद, जैमिनीय संहिता (२/३)**

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यत्तिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।।६ ।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहा भवत् पुनः ।



तथा विश्वं व्यक्रामद् अशनानाने अभि ।।७ ।।
पुरुष एवेदं सर्वं भव्यं यच्च भाव्यम् ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।८ ।।
तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।९ ।।
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमि मथो पुरः ।।१० ।।

**जैमिनीय संहिता** (२/४)

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्त एषामासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् धवि ।।१ ।।
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं हविः ।।२ ।।

## स्वर तथा उसका अङ्कन

यहां स्वर चिह्नों का प्रयोग होने के कारण स्वर का अर्थ तथा चिह्न अङ्कन की विधि का संक्षेप में वर्णन आवश्यक है। इसका मुख्य आधार पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित वैदिक-स्वर-मीमांसा है, जो रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत (हरयाणा)-१३१०२१ से प्रकाशित है तथा रामलाल कपूर एण्ड सन्स, २५९६, नयी सड़क, दिल्ली से भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त गीता प्रेस गोरखपुर के कल्याण मासिक का १९९९ का वेद-कथाङ्क में स्व. श्री गोपालचन्द्र मिश्र का लेख - माध्यन्दिनीय यजुर्वेद एवं सामवेद की पाठ-परम्परा-पृष्ठ २०२-२११ में साम-यजु के चिह्न तथा पाठ विधि हस्त सञ्चालन मुद्रा के साथ दी गयी है।

**स्वर शब्द के अर्थ**-(१) **वाक्**-वाणी या ध्वनि-अधि स्वरे (ऋक् ८/७२/७)। निघण्टु १/११ (३१) में वाङ्नामों में स्वर शब्द है। निघण्टु (३/१४) में स्वरित शब्द अर्चति (पूजा = स्तुति) अर्थ वाले आख्यातों में है।

(२) **वर्ण**-विशेष-अ से आरम्भ होने वाले उन वर्णों को स्वर कहते हैं, जिनके उच्चारण के लिये किसी अन्य वर्ण की सहायता न लेनी पड़े-स्वयं राजन्त इति स्वराः। (महाभाष्य १/२/२९)। अन्य उदाहरण-

यथा स्वरेण सर्वाणि व्यञ्जनानि व्याप्तानि। एवं सर्वान् कामान् आप्नोति यश्चैवं वेद। (संहितोपनिषद् ब्राह्मण, खण्ड २)

विवृतकरणाः स्वराः। आपिशलि (३/७) तथा पाणिनीय (३/८) शिक्षा।

अकाराद्यः स्वराः ज्ञेया औकारान्ताश्चतुर्दश। नाट्य शास्त्र (१४/८)

एते स्वराः। (ऋक् प्रातिशाख्य १/३)

तत्र स्वराः प्रथमम्। (वाजसनेय प्रातिशाख्य ८/२)

षोडशादितः स्वराः। (तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १/५)

अ इति आ इति स्वराः। (ऋक् तन्त्र १/२)

तत्र चतुर्दशादौ स्वराः। (कातन्त्र १/१/२)

पाणिनि व्याकरण में इसे अच् (=अ से च् तक) प्रत्याहार (संक्षेप सूत्र) से व्यक्त किया गया है। यह १४ माहेश्वर सूत्रों के प्रारम्भ में है-अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्।

(३) **संगीत के सप्तक**-संगीत की ७ ध्वनियों को भी स्वर कहा जाता है-षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद।-



षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः। (नारद शिक्षा १/२/४)

शारीरा वैणवाश्चैव सप्त षड्जादयः स्वराः।(नाट्य शास्त्र ६/२७)

स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः। (पिङ्गलसूत्र ३/६४)

यम-ऋक् प्रातिशाख्य (१३/४४) का उव्वट व्याख्या में इन षड्ज आदि स्वरों को यम कहा गया है।

क्रुष्ट आदि सप्तक-षड्ज आदि सप्तक को ही सामगान में -क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, और अतिस्वार्य-कहा गया है। इनको भी तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (२३/१२) में यम कहा है।

(४) **७ संख्या**-षड्ज, क्रुष्ट, या उदात्त आदि सात स्वरों के कारण स्वर शब्द का ७ संख्या के अर्थ में भी प्रयोग होता है।

स्वरा अर्ध चार्यार्धम्। (पिङ्गल छन्द सूत्र ४/१४)

अर्थात्-जहां प्रस्तार में सात गण होते हैं और आधा (साढ़े सात गण), वह आर्या छन्द का आधा भाग है।

(५) **प्राण**-नासिका रन्ध्रों से प्रवाहित होने वाला श्वास प्राण का रूप है। इसके लिये भी स्वर शब्द का प्रयोग होता है। यथा-

प्राणः स्वरः। (ताण्ड्य महाब्राह्मण ७/१/१०;१७/१२/२)

प्राणो वै स्वरः। (ताण्ड्य महाब्राह्मण२४/११/९)

स्वरो नासा समीरिते स्यात्। (मेदिनी कोष, रान्त ९४)

शिवस्वरोदय तथा हठयोगप्रदीपिका आदि में दाहिने-बायें नासिका रन्ध्र से प्रवाहित होने वाले प्राण के लिये क्रमशः सूर्य-स्वर और चन्द्र-स्वर शब्दों का व्यवहार किया है।

(६) **सूर्य**-एष ह वै सूर्यो भूत्वाऽमुष्मिन् लोके स्वरति। तद्यत् स्वरति तस्मात् स्वरः। (गोपथ ब्राह्मण १/५/१४)

(७) **सोम**-यदाह स्वरोऽसीति सोमं वा एतदाह।(गोपथ ब्राह्मण १/५/१४)

(८) **प्रजापति**-प्रजापतिः स्वरः। (षड्विंश ब्राह्मण ३/७)

(९) **पशु**-पशवः स्वरः।(गोपथ ब्राह्मण २/३/२२; २/४/२)

पशवो वै स्वरः।(ऐतरेय ब्राह्मण ३/२४)

(१०) **श्रीः**-श्रीर्वै स्वरः। (शतपथ ब्राह्मण ११/४/२/१०)

(११) **प्रणव**:-वीरमित्रोदय (मित्रमिश्र द्वारा) के भक्तिप्रकाश खण्ड में उद्धरण है-

योवेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।

= जो स्वर (ॐ) वेद के आरम्भ में कहा जाता है, तथा उसके अन्त में भी प्रतिष्ठित है।

इसकी व्याख्या में लिखा है-स्वरः प्रणवः।

(१२) **वर्णों के उदात्तादि उच्चारण**-

तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव। (शतपथ ब्राह्मण १४/४/१/२७)

**स्वर के पर्याय**-(१) **स्वार**-कात्यायनीय प्रतिज्ञा परिशिष्ट (१/८) में-

ब्राह्मणे तूदात्तानुदात्तौ भाषिकस्वारौ।

अर्थात् शतपथ ब्राह्मण में उदात्त और अनुदात्त भाषिक स्वार (=स्वर) होते हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (१७/६, २०/८) में स्वार शब्द केवल स्वरित के लिये प्रयुक्त हुआ है। नारद शिक्षा (२/१/१०) में भी जात्य स्वरित के लिये जात्य स्वार का प्रयोग है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य (३/८) में स्वरित के साथ स्वार का प्रयोग है, जो पर्यायवाची प्रतीत होता है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य (३/३४) में भी जात्य स्वरित के लिये जात्य स्वार का प्रयोग है।

(२) **यम**-तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (अध्याय २३) में उदात्त आदि स्वरों के लिये यम शब्द का प्रयोग है। ऋक् प्रातिशाख्य (१३/४४) में षड्ज आदि ७ स्वर भी यम कहे गये हैं।

(३) **गेह्य**-मीमांसा दर्शन शाबर भाष्य (९/२/३६) में कहा है-

यत्र आर्चिकानि पदादि निवर्तन्ते स्तोभा गेह्याश्चानुयान्ति .... गेह्या स्वराः।

अर्थात् जिस गान में ऋचा में पठित पद नहीं बोले जाते हैंए उसमें स्तोभ और गेह्य का अनुगमन होता है। यहां गेह्य का अर्थ स्वर है। सामगान का विषय होने से गेम क्रुष्टादि स्वरों का वाचक है।

(४) **जाति**-रामायण के टीकाकारों के अनुसार बालकाण्ड (४/८) में जाति शब्द षड्ज आदि ७ स्वरों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

(५) **स्वरति**-स्वरित के लिये स्वरति क्रिया का भी प्रयोग हुआ है-नारदीय शिक्षा (२/३/४) में स्वरति, (२/३/६) में स्वर्यते, तथा महाभाष्य (१/२/४८) में



स्वरयिष्यते क्रिया का प्रयोग स्वरित स्वर के लिये हुआ है।

(६) **प्रणव**-स्वरित का पर्याय प्रणव भी है-तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (१/४७) के -सर्वः प्रणव इत्येके -सूत्र की टीका में है-प्रणव शब्दः स्वरित पर्यायः।

**स्वरों के भेद**-(१) **७ स्वर**-महाभाष्य (१/२/३३) में ७ स्वर कहे गये हैं-

सप्त स्वरा भवन्ति-उदात्तः, उदात्ततरः, अनुदात्तः, अनुदात्ततरः, स्वरितः, स्वरितेय उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः, एकश्रुतिः सप्तमः।

अर्थात्- उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरित के आरम्भ में विद्यमान उदात्त (अन्य उदात्त से भिन्न), और एकश्रुति-ये ७ स्वर होते हैं।

नारदीय शिक्षा में सामगानोपयोगी ७ स्वर कहे गये हैं-षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। भाषिक सूत्र ३/१६-१७ में भी ये नाम हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (२३/१४) में इन्हें क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द और अतिस्वार्य कहा है। नारदीय शिक्षा (२/४) में ७ स्वर, ३ ग्राम (तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में३ स्थान, भाषिक ३/१८ में योनि कहा है), २१ मूर्च्छना तथा ४९ तान कहा गया है।

(२) **५ स्वर**-नारद शिक्षा (१/७/१९) में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचित (प्रचय), और निघात-ये ५ स्वर कहे हैं-

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरित प्रचिते तथा। निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पञ्चमः।।

प्रचय के पर्याय हैं-प्रचित, प्रच, निचित, उदात्तमय, एकश्रुति-

स्वरितात्परमनदात्तमेकमनेकं वाक्षरमुदात्तवत्। एकश्रुत्या उच्चारणीयं स्यात्। अयमेव प्रचयः प्रचितः, प्रचो, निचित, उदात्तमय-इति वैदिकैर्व्यवह्रियते। (शिक्षा संग्रह, प्रातिशाख्य प्रदीप)

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य २३/१९ की वैदिकाभरण व्याख्या में लिखा है-

उभयकरणरहितः प्रचयः, उभयकरणसमावेशजन्यः स्वरित इति।

अर्थात्, जो उदात्त अनुदात्त के करणों से रहित हो वह प्रचय और उदात्त अनुदात्त के उभयविधकरणों के समावेश से उत्पन्न स्वरित कहलाता है।

सायण के ऋग्भाष्य (१/१/१) में-ऐकश्रुत्यं प्रचयनामकं भवति।

(३) **४ स्वर**-कई आचार्य उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और प्रचय-ये ४ स्वर मानते हैं-

इह केचित् त्रैस्वर्येण समाम्नायन्ते, केचिच्चातुः स्वर्येण। (सायण भाष्य ९/३/३०)

प्रचय का अर्थ एकश्रुति है। तैत्तिरीय संहिता में ये ४ स्वर प्रयुक्त होते हैं (नारदीय शिक्षा १/११; तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १३/१८-२०, वैदिकाभरण व्याख्या)। भाषिक सूत्र (३/२६) के अनुसार तैत्तिरीय चरण की औखेय तथा खाण्डिकेय शाखा में कहीं कहीं चातु:स्वर्य था। ये शाखायें अभी लुप्त हैं।

(४) **३ स्वर**-उदात्त, अनुदात्त, स्वरित-ये ३ स्वर ही मुख्य हैं। शाकल, माध्यन्दिन, काण्व, कौथुम तथा शौनक संहिताओं में मात्र इन्हीं का उच्चारण होता था। यद्यपि इनमें एकश्रुति स्वर भी होता है, पर उच्चारण तथा हस्तसञ्चालन की दृष्टि से ३ ही स्वर होते हैं। नारदीय शिक्षा (१/११) तथा तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (२३/१६) के अनुसार आह्वरक शाखा में भी ३ स्वर थे। भाषिक परिशिष्ट (३/२५) के अनुसार चरक ब्राह्मण (लुप्त) में मन्त्रवत् स्वर कहा है।

(५) **२ स्वर**-वाजसनेय प्रातिशाख्य (१/१२९) में २ स्वरों का उल्लेख है। उव्वट की व्याख्या के अनुसार ये २ स्वर हैं-उदात्त, अनुदात्त। शतपथ ब्राह्मण में ये २ ही स्वर प्रयुक्त हैं। प्रतिज्ञा परिशिष्ट (१/८) में इन्हें भाषिक स्वर भी कहा गया है-

ब्राह्मणे तूदात्तानुदात्तौ भाषिकस्वरौ।

भाषिक सूत्र (१/४) में भी यही है। नारद शिक्षा (१/१२) के व्याख्याकार शोभाकर मिश्र इन्हें गाथा स्वर भी कहते हैं-

छान्दोगानां वाजसनेयिनां च ब्राह्मणे गाथास्वरौ प्रथमद्वितीयौ भवतः ... ।

भाषिक सूत्र (३/१५) तथा नारद शिक्षा (१/१३) के अनुसार ताण्ड्य तथा भाल्लवी ब्राह्मणों में २ ही स्वर थे-

शतपथवत् तण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः। (भा.सू.)

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ। तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम्। (नारदीय शिक्षा १/१२)

ताण्ड्य ब्राह्मण में आजकल स्वर उपलब्ध नहीं हैं। भाल्लवि ब्राह्मण चिरकाल से लुप्त है।

(६) **एक स्वर**-कई वैदिक ग्रन्थों में एक ही स्वर है, जो २ प्रकार का होता है-तान स्वर, प्रवचन स्वर।

ततोऽन्येषां (तानो) ब्राह्मण स्वरः। (भाषिक सूत्र ३/२७)

तान एवाङ्गोपाङ्गानाम्।(भाषिक सूत्र ३/२८)


अनन्तदेव के अनुसार आश्वलायन तथा बाष्कल ब्राह्मणों में तान स्वर ही था। (भाषिक सूत्र १/२७ की टीका)

वाजसनेय प्रातिशाख्य (१/१३१) के अनुसार साम, जप, न्यूङ्ख के अतिरिक्त मन्त्रों के एक ही स्वर होते हैं। व्याख्याकारों के अनुसार यह तान स्वर है, जिसका व्यवहार यज्ञ में होता है।

**तान स्वर का अर्थ**-कात्यायन प्रातिशाख्य (१/१३१) तथा कात्यायन श्रौत सूत्र (१/८/१८-१९) की तुलना से स्पष्ट है कि एकश्रुति को ही तान स्वर कहा जाता है। भाषिक सूत्र (३/२७) की व्याख्या में अनन्तदेव ने तान का अर्थ एकश्रुति ही लिखा है।

प्रावचन स्वर-कात्यायन के वाजसनेय प्रातिशाख्य (१/१३२) में यजुर्वेद में विकल्प से प्रावचन स्वर का विधान किया है-

प्रावचनो वा यजुषि।

इसकी उव्वट व्याख्या है-प्रवचन शब्देन आर्षपाठ उच्यते। तत्र भवः स्वरः प्रावचनः .. स च त्रैस्वर्यलक्षण एव भवति।

अर्थात्-प्रवचन शब्द से आर्ष पाठ कहा जाता है। आर्ष पाठ में होने वाला स्वर प्रावचन स्वर कहलाता है। यह प्रावचन स्वर त्रैस्वर्य रूप ही है।

मीमांसा (१३/३/१९) के शाबर भाष्य में भी प्रावचनः का अर्थ मन्त्र सवरः लिखा है।

साम प्रातिशाख्य के नाम से प्रसिद्ध पुष्प सूत्र या फुल्ल सूत्र (८/८) में-

यथादेशं च कालमविनामपि प्रवचनविहितः स्वरः स्वाध्याये तथा शाट्यायनिनामपि। इसकी अजातशत्रु व्याख्या-प्रवचन शब्देन ब्राह्मणमुच्यते। प्रोच्यत इति प्रवचनम्। स्वाध्याय शब्दः पूर्ववत्।=प्रवचन शब्द का विशिष्ट अर्थ ब्राह्मण है।

नारद शिक्षा (१/१/८) में -प्रावचनो विधिः। शोभाकरभट्ट व्याख्या-प्रवचने अध्ययने, भवो विधिः।

वाजसनेय याजुष मन्त्रों के २ प्रकार के स्वर हैं-संहितागत और मन्त्रगत। सूत्र (१/१२८) के अनुसार संहिता मन्त्रों का ३ स्वरों से पाठ होता है। आगामी सूत्र (१/१२९) के अनुसार ब्राह्मण भाग का २ स्वरों से पाठ होता है। यहां सन्देह हो सकता है कि ब्राह्मण भाग के संहिता मन्त्रों का उच्चारण २ स्वरों से हो या ३ स्वरों से। इसका

समाधान सूत्र (१/१३२) में है-प्रावचनो वा यजुषि। अर्थात् दोनों प्रकार से पाठ हो सकता है- संहिता में ३ स्वर और ब्राह्मण में वही मन्त्र २ स्वरों से।

**उदात्त आदि ३ स्वर**-वर्ण २ प्रकार के हैं-स्वरों को पाणिनि व्याकरण में अच् (अ से च् तक) तथा व्यञ्जन को हल् कहा है। यह १४ माहेश्वर सूत्रों के अनुसार है- अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव्। कपय्। शषसर्। हल्।

स्वर शास्त्र के अनुसार उदात्त आदि समस्त स्वर -अच् या स्वर वर्णों के ही धर्म (गुण) हैं, क्योंकि उनका उच्चारण स्वतन्त्र रूप से (बिना अन्य वर्ण की सहायता के हो सकता है।

व्यञ्जन वर्ण (हल्) के उच्चारण में स्वरों की सहायता लेनी पड़ती है।

**लक्षण**-उच्चैरुदात्तः।(अष्टाध्यायी १/२/२९, वाजसनेयी प्रातिशाख्य १/१०८, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १/३८)

नीचैरनुदात्तः।(अष्टाध्यायी १/२/३०, वाजसनेयी प्रातिशाख्य १/१०९, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १/३९)

समाहारः स्वरितः। (अष्टाध्यायी १/२/३१, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य १/४०)। उभयवान् स्वरितः। (वाजसनेयी प्रातिशाख्य १/११०)

अर्थात् -उच्च ध्वनि से उच्चारण उदात्त, नीची ध्वनि अनुदात्त तथा बीच का या समन्वय स्वरित है।

**उच्चारण विधि**-(१) **महाभाष्य** (१/२/२९-३०) वार्त्तिक-उच्चनीचस्यानवस्थितत्वात् संज्ञा प्रसिद्धिः। उदात्त का उच्च ध्वनि से, अनुदात्त का नीच (निम्न) ध्वनि से और स्वरित का मध्यम ध्वनि से उच्चारण करना चाहिए।

(२) अकारादि वर्णों के उच्चारणों के जो कण्ठ आदि स्थान हैं, उन स्थानों के उच्च, नीच, और मध्य-३ विभाग कर उच्च भाग से उदात्त का, निम्न भाग से अनुदात्त का, और मध्य भाग से स्वरित का उच्चारण करना चाहिये -समाने प्रक्रम इति वक्तव्यम्। कः पुनः प्रक्रमः? उरः कण्ठः शिर इति। (महाभाष्य १/२/२९-३०)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (१/३८-४०) की व्याख्या गार्ग्य गोपाल यज्वन् ने इसी प्रकार की है।

(३) **वाजसनेय प्रातिशाख्य** (१/१०८-११०) के व्याख्याकारों उव्वट और अनन्त भट्ट के अनुसार गात्रों (अङ्गों) के ऊर्ध्वगमन (चुस्ती) से जो स्वर उत्पन्न होता है,



वह उदात्त है। ढीलेपन से अनुदात्त तथा दोनों के मिश्रण से स्वरित स्वर का उच्चारण होता है।

(४) **ऋक् प्रातिशाख्य** (३/१) के अनुसार आयाम, विश्रम्भ और आक्षेप से क्रमशः उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का उच्चारण होता है -

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः। आयामविश्रम्भाक्षेपैस्त उच्यन्ते।

उव्वट व्याख्या-आयामो नाम वायुनिमित्तमूर्ध्वगमनं गात्राणाम् तेन उच्यते स उदात्तः। विश्रम्भो नाम अधोगमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्। आक्षेपो नाम तिर्यग्गमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्।

अर्थात्-आयाम = वायु के कारण शरीर के अवयवों का जो ऊर्ध्वगमन होता है, उससे उच्चरित ध्वनि उदात्त है। विश्रम्भ अर्थात् गात्रों का वायु के कारण अधोगमन से अनुदात्त होता है। आक्षेप अर्थात् गात्रों का वायु के कारण तिर्यग् गमन से स्वरित का उच्चारण होता है।

(५) **तैत्तिरीय प्रातिशाख्य** (२२/९-१०)-आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैः कराणि शब्दस्य। अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैः कराणि शब्दस्य। (महाभाष्य १/२/२९-३०) में इसकी व्याख्या भी)

= गात्रों का निग्रह, स्वर की रुक्षता और कण्ठ का संकोच-इन प्रयत्नों से उदात्त स्वर का उच्चारण होता है। गात्रों का ढीलापन, स्वर की मृदुता और कण्ठ का विकास-इन प्रयत्नों से अनुदात्त स्वर का उच्चारण होता है।

(६) **आपिशल शिक्षा** (८/२०-२२)-यदा सर्वाङ्गानुसारी प्रयत्नस्तीव्रो भवति, तदा गात्रस्य निग्रहः, कण्ठबिलस्य चाणुत्वं, स्वरस्य च वायोस्तीव्रगतित्वाद् रौक्ष्यं भवति, तमुदात्तमाचक्षते (२०)। यदा तु मन्दः प्रयत्नो भवति, तदा गात्रस्य स्रंसनं, कण्ठबिलस्य महत्त्वं, स्वरस्य च वायोस्तीव्रगतित्वाद् स्निग्धता भवति, तमनुदात्तं प्रचक्षते।(२१) उदात्तानुदात्तस्वरसन्निपातात् (सन्निकर्षात्) स्वरितः। (२२)

= जब शरीर के सभी अङ्गों का प्रयत्न तीव्र होता है, तब शरीर के अङ्गों का निग्रह, कण्ठ के छिद्र का संकोच और वायु के तीव्र होने से जो ध्वनि का रूखापन होता है, उसे उदात्त कहते हैं।(२०) जब (शरीर के अङ्गों का) प्रयत्न भन्द होता है, तब गात्रों का ढीलापन, कण्ठ के छिद्र का विकास और वायु की मन्द गति से ध्वनि की स्निग्धता (मृदुता) होती है, उसे अनुदात्त कहते हैं। (२१) उदात्त और अनुदात्त स्वरों के

सन्निपात (मेल) से स्वरित होता है। (२२)
(७) **पाणिनीय शिक्षा**-में भी यही विधि लिखी है। (सूत्र ८/२१-२३)
वास्तविक उच्चारण गुरु परम्परा से ही सीखा जा सकता है, जो लुप्तप्राय है। कर्णाटक के धारवाड़, महाराष्ट्र के पुणे (पुण्यपत्तन), तथा आन्ध्र के गोदावरी जिलों में यह परम्परा थी, उत्तर भारत के गुरुकुलों में विदेशी आक्रमणों के कारण पहले समाप्त हो गयी। अन्तिम ३ विधियां कुछ सरल हैं, ३, ४ विधियां भी प्रायः समान हैं। आजकल हस्त सञ्चालन द्वारा ही स्वर का निर्देश होता है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जोर से शब्द करने पर हाथ उपर उठ जाता है। शपथ लेने के समय भी इसी कारण हाथ उठाने की परम्परा थी, जो आज भी खेल आयोजनों में देखा जाता है-
निशिचरहीन करौं मही भुज उठाइ प्रण कीन्ह (रामचरितमानस, अरण्य काण्ड,९)
उर्ध्वबाहुविरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।। ६२।।
(महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व, ५/६२)
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन्मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः।(महाभारत, आश्रमवासिक पर्व ३७/४२)
युधिष्ठिर मीमांसक जी ने प्राचीन ग्रीक, अरबी (कुरान पाठ) में तथा लौकिक संस्कृत में भी स्वरों के प्रयोग के कई संकेत दिये हैं।
**यज्ञ में प्रयोग**-यज्ञ में सस्वर पाठ के कई उदाहरण दिये गये हैं-
(१) **ब्राह्मण**-वाचि स्वरमिच्छेत। तथा स्वरसम्पन्नयाऽऽर्त्विज्यं कुर्यात्। तस्माद् यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव। (शतपथ ब्राह्मण १४/४/१/२७)
अर्थात्-उस स्वर से सम्पन्न वाणी से ऋत्विक कर्म करे। इसलिये यज्ञ में प्रशस्त स्वर (से पाठ करने) वाले को लोग देखना चाहते हैं।
(२) **पाणिनीय शिक्षा** में-मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।
(महाभाष्य में -दुष्टः शब्दः-पाठ है)
अर्थात्- स्वर अथवा वर्ण के अशुद्ध उच्चरित मन्त्र उस अर्थ को नहीं कहता (जो यजमान का अभिप्राय है)। वह वाग् रूपी वज्र यजमान को नष्ट करता है, जैसे स्वर के अपराध से इन्द्रशत्रु ने किया।


त्वष्टा असुर ने अपने पुत्र की वृद्धि के लिये यज्ञ किया था। उसमें ऋत्विजों ने **इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व** मन्त्र में अन्तोदात्त इन्द्रशत्रु पद के स्थान में **इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व** आद्युदात्त पद का प्रयोग किया। उससे इन्द्र वृत्र का शत्रु= मारनेवाला है यह अर्थ प्रकट हो गया, जब कि उद्देश्य था त्वष्टा पुत्र द्वारा इन्द्र को मारना। ऋत्विजों की भूल असावधानी या गुप्तरूप से इन्द्र के समर्थन के कारण थी।
(३) **नारदीय शिक्षा**-प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो वै मन्त्रः प्रयुज्यते।
यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजां पशून्।।(१/६)
अर्थात्-यज्ञों में स्वर और वर्ण से हीन जो मन्त्र प्रयुक्त होता है, वह यजमान की आयु, प्रजा और पशु आदि को नष्ट करता है।
स्वरित के ९ भेद तथा एकश्रुति का विस्तार से विवेचन यहां नहीं किया जा रहा है।
**ह्रस्व ए ओ**-अर्ध (ह्रस्व) ए ओ के उदाहरणकुछ प्राचीन शिक्षाओं में हैं-
(१) **वासिष्ठी शिक्षा**-गार्ग्य गोपाल यज्वन् द्वारा तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (१/१) की व्याख्या में वासिष्ठी शिक्षा को उद्धृत किया है (यह वाराणसी संस्कृत वि.वि. से प्रकाशित शिक्षा संग्रह में नहीं है)-लृवर्णं दीर्घं परिहाप्य स्वराः षड्विंशति प्रोक्ताः।
अर्थात्-लृवर्ण के दीर्घ भेद को छोड़कर २६ स्वर कहे गये हैं।
यहां २६ स्वर इस प्रकार होते हैं-अ इ उ ऋ ए ऐ ओ औ-इन ८ स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत भेद से (८ × ३ = २४) चौबीस भेद होते है। लृकार के दीर्घभेद को छोड़कर ह्रस्व-प्लुत भेदों को मिलाने पर २६ स्वर होते हैं।
(२) **आपिशलि** शिक्षा (६/९-१०) में-
छान्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया ह्रस्वा पठन्ति। तेषामप्यष्टादश प्रभेदानि।
अर्थात्-सामवेदियों में राणायनीय अन्तर्गत सात्यमुग्र शाखा में सन्ध्यक्षरों के ह्रस्व भेद होते हैं। उनके मत से सन्ध्यक्षरों के भी १८-१८ भेद होते हैं।
(३) **पतञ्जलि** ने ह्रस्व ए ओ के विषय में लिखा है-
पारिषदकृतिरेषा तत्र भवताम्। नैव लोके नान्यस्मिन् वेदेऽर्ध एकारोऽर्ध ओकारो वास्ति। (ऐ औच् सूत्र भाष्य)
अर्थात्-(छान्दोग सात्यमुग्री और राणायनीय शाखाओं में) अर्ध एकार , अर्ध ओकार का उच्चारण गीति के कारण है। अन्यथा लोक या वेद में ए ओ का अर्ध रूप नहीं होता।

छन्द के लिये तुलसीदास ने भी ह्रस्व ए ऐ का प्रयोग किया है-

**अवधेश के द्वारे सकारे गई सुतगोद के भूपति लै निकसे । (कवितावली, १)**

तुलसीदास काशी और मगध के बीच कर्मनाशा नदी के तट पर राजापुर गांव के थे जहां उनके वंशज अभी भी विद्यमान हैं। काशी क्षेत्र के विशेष शब्दों रउआ (आप) और बाटे(वर्तते) का प्रयोग उन्होंने किया है।

**शिक्षा और व्याकरण के अनुसार** -अ इ उ ऋ-इन ४ स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत भेद होते हैं। प्रत्येक का शुद्ध (निरनुनासिक) और सानुनासिक-२ प्रकार का उच्चारण करने से ६ भेद होते हैं। इनमें प्र्त्येक का उदात्त, अनुदात्त, स्वरित उच्चारण होने पर (६ C ३ = १८) १८-१८ भेद होते हैं। कई आचार्यों के मत से लृ का दीर्छ भेद नहीं होता। अतः लृकार के १२ भेद होंगे। जो लृ का दीर्घ भेद भी मानते हैं, उनके मत से लृकार के भी १८ भेद होंगे। ए ऐ ओ औ-इन सन्ध्यक्षरों के ह्रस्व भेद नहीं होते। अतः इनमें प्रत्येक के १२-१२ भेद होते हैं।

अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति। अत्र-ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च। आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः।। इति। एवमिवर्णादयः।(आपिशलि शिक्षा,६/१-३) अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन चानुनासिक्यभेदेन संख्यातोऽष्टादशात्मकः। एवमिवर्णादयः। (पाणिनीय शिक्षा ६/१-२)। अत्र चावर्णो ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति त्रिधा भिन्नः। प्रत्येकमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन सानुनासिकनिरनुनासिकभेदेन चाष्टादशधा भवन्ति। एवमिवर्णोवर्णावृवर्णाश्च। (चान्द्रशिक्षासूत्र ३८-४०)

लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति। तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते। (आपिशलि शिक्षा,६/४-५, पाणिनीय शिक्षा ६/३-४, चान्द्रशिक्षासूत्र ४१)

यदृच्छाशक्तिजानुकरणा वायव्या दीर्घाः स्युस्तदा तमप्यष्टादशप्रभेदं ब्रुवते। (आपिशलि शिक्षा,६/६, पाणिनीय शिक्षा ६/५)

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति। तान्यपि द्वादश भेदानि। (आपिशलि शिक्षा,६/७-८, पाणिनीय शिक्षा ६/६-७, चान्द्रशिक्षासूत्र ४२)

**स्वर-चिह्न**-मुख्यतः उदात्त तथा एकश्रुति (एक समान उच्चारण) में कोई चिह्न नहीं होता। अनुदात्त वर्ण के नीचे पड़ी रेखा लगती है। स्वरित वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा



लगाई जाती है। स्वरित या अनुदात्त चिह्नयुक्त वर्ण के पूर्व बिना चिह्न के १ या २ वर्ण हों तो उन्हें उदात्त मानना चाहिये। स्वरित चिह्न के परे जो बिना चिह्न के वर्ण हैं, उन्हें एकश्रुति मानना चाहिये।

स्वरित के ९ भेदों में उच्चारण के लिये २ भेद हैं-उदात्त स्वर के परे संहितज स्वरित होता है। अनुदात्त के परे जात्य स्वरित होता है, जिसका शब्दों के अर्थ पर कुछ प्रभाव होता है।

**अर्थ पर प्रभाव**-सभी भाषाओं में जिस शब्द को मुख्यता देना है, उस पर जोर देते हैं, लेकिन उनका चिह्न नहीं देते हैं। प्रत्येक शब्द धातु तथा प्रत्यय के योग से बना है, उपसर्ग द्वारा उसके विशिष्ट अर्थ भी होते हैं। २ शब्दों का मेल समास है, उसमें जो प्रधान हो उसे उदात्त किया जाता है। इसी प्रकार वाक्य में जिस शब्द या पद को प्रधानता देनी है, उसका उदात्त उच्चारण होता है। इस प्रकार स्वरों का अर्थ पर ३ प्रकार से प्रभाव होता है-पद, समास, वाक्य में।

**पद स्वर**-प्रायः एक पद में एक ही वर्ण उदात्त होता है, बाकी अनुदात्त होते हैं-
अनुदात्तं पदमेकवर्जम्। (अष्टाध्यायी ६/१/१५८)

पद के प्रकृति या प्रत्यय रूपी जिस भाग में उदात्त स्वर रहता है, उसी भाग का अर्थ मुख्य होता है-तीव्रार्थतरमुदात्तम्, अल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम्।(निरुक्त ४/२५)
अर्थात्-उदात्त का अर्थ तीव्र होता है,अनुदात्त का अर्थ अल्प=गौण।
यही भाव पाणिनि सूत्रों (१/२/२९-३१) में है-उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः। ये सूत्र अन्य कई प्रातिशाख्यों में भी हैं।

**समास-स्वर**-समास के जिस पद में उदात्तत्व होता है, उसी पद का प्रधान अर्थ होता है-

तत्रोत्तरपदार्थस्य प्राधान्यं यत्र वर्तते। उदात्तस्तत्र भवति .... ।।
यपि स्वरः पूर्वपदे तदर्थः प्रस्फुटो भवेत्। सर्वेष्वेव समासेषु यत्र यत्र स्वरो भवेत्। काशं कुशं वावलम्ब्य स्वरं तं स्थापयेदिति।(वेङ्कटमाधव, स्वरानुक्रमणी १/३/२, ३, २२)

अर्थात्-उत्तरपद के अर्थ की जहां प्रधानता होती है, वहां उत्तर पद में उदात्त स्वर रहता है। यदि उदात्त स्वर पूर्वपद में हो, तो उसका अर्थ विस्पष्ट =प्रधान होता है। सब समासों में जहां उदात्त स्वर हो, उसके अर्थ की प्रधानता किसी प्रकार (काशकुशावलम्ब

न्याय से) स्पष्ट करनी चाहिये।

सर्वेष्वेव समासेषु कार्या सूक्ष्मेक्षिका बुधैः। पदेषु चा समस्तेषु शुद्धमर्थमभीप्सुभिः। (स्वरानुक्रमणी १/४/९)

अर्थात्-सब समासों में और असमस्त पदों में शुद्ध अर्थ के लिये सूक्ष्म विचार करना चाहिये।

**वाक्य स्वर**-वाक्य में जिन क्रिया आदि पदों का उदात्तत्व अथवा अनुदात्तत्व देखा जाता है, वहां उनके अर्थ प्रधान या गौण होते हैं-

एवं पदे समासे च यत्रोदात्तो व्यवस्थितः। वर्णे पदे वा तत्रापि काकुरस्तीति निश्चयः।। (स्वरानुक्रमणी १/१/२१)

अर्थात्-वाक्य के अथवा समास के जिस पद में अथवा पद के जिस वर्ण में उदात्त स्वर हो, उसी में काकु (विशेषार्थ बोधक ध्वनिविशेष) निश्चित समझनी चाहिये।

उदाहरण-**ब्राह्मणग्रामंगच्छ** =हे ब्राह्मण ! गाँव को जा।

**ब्राह्मणग्रामंगच्छ**=ब्राह्मणों का जो ग्राम (निवास स्थान) है, वहां जा।

**ब्राह्मणग्रामंगच्छ**=ब्राह्मणों के समुदाय को लक्ष्य करीके जा। या जिस गाँव का स्वामी ब्राह्मण है, वहां जा।

पहले वाक्य में ब्राह्मण और ग्राम दोनों उदात्त होने से २ स्वतन्त्र पद हैं। ब्राह्मण पद में आदि उदात्त सम्बोधन का चिह्न है-आमन्त्रितस्य च (अष्टाध्यायी ६/१/१९८)। द्वितीय तथा तृतीय वाक्य में ब्राह्मणग्राम समुदाय में एक उदात्त है। अतः ये दोनों पद समास से एकपद हो गये हैं-समर्थः पदविधिः(अष्टाध्यायी २/१/१ सूत्र का भाष्य)। द्वितीय में अन्तोदात्त हेने से वहां षष्ठी तत्पुरुष समास होगा(समासस्य-अष्टाध्यायी ६/१/२२३)-यहां अन्तिम पद ग्राम प्रधान है। तृतीय वाक्य में पूर्वपद ब्राह्मण में उदात्त है, अतः गांव में ब्राह्मण समुदाय या उसकी प्रधानता देखनी है।

मीमांसक जी की पुस्तक में कई उदाहरण दिये हैं कि उदात्त स्वर के कारण वेदके अर्थ में क्या परिवर्तन होता है। विशेषकर वेङ्कटमाधव ने इसका ज्यादा ध्यान रखा है। उनके ऋग्वेद के बृहद् भाष्य (अडयार संस्करण) के कई शब्दों की सूची दी है-

| शब्द | अर्थ | पृष्ठ |
|---|---|---|
| **ऋघिनः** | अग्निः | ४२६, ७३५ |
| **जठरे** | उदरवचनः | |
| **यमः** | येन गच्छति | ५०१ |
| **यमः** | वैवस्वतः | |
| **सत्यम्** | ऋतार्थे | ५२७ |
| **सत्यम्** | दारिद्र्ये | |
| **ज्येष्ठः** | प्रशस्यः | ५६९ |
| **ज्येष्ठः** | वयसा ज्येष्ठः | |
| **सुकृतम्** | निष्ठान्तम् | |
| **सुकृतम्** | क्विबन्तम् | ५८३ |
| **सुकृतम्** | भावे निष्ठान्तम् बहुव्रीहौ | |



**उच्चारण के नियम**-प्रायः १०० सूत्रों में उनकी व्याख्या के साथ उच्चारण के नियम दिये गये हैं। पर यहां प्रयुक्त यजुर्वेद तथा सामवेद के चिह्न तथा उनके हस्त सञ्चालन के नियम दिये जा रहे हैं। नियम तथा उनके चित्र गीताप्रेस, गोरखपुर के मासिक कल्याण के वेद कथाम (१९९९ ई.) में प्रकाशित स्व. गोपालचन्द्र मिश्र के निबन्ध (पृष्ठ २०२) के आधार पर दिया जा रहा है।

**माध्यन्दिन यजुर्वेद के नियम**-१-ऋ का उच्चारण रे के समान करना चाहिये।

२-अनुस्वार के भेद-(क) जहां पर ॼचिह्न हो, वहाँ पर लघु (एकमात्रिक) अनुस्यार होता है।

(ख) उपर्युक्त चिह्न के बाद यदि संयोग (संयुक्त वर्ण) हो तो गुरु जानना।

३-ठँ चिह्न हो तो वह भी दीर्घ संज्ञक है।

उपर्युक्त चिह्नित अनुस्वार का उच्चारण मगुंफ इस ध्वनि से (लघु या दीर्घानुसार) होना चाहिये, मग्वंफ रूप से नहीं।

४-विसर्ग का उच्चारण हकार के समान होता है, पर इसको हकार नहीं मानना चाहिये। यथा-

**देवो वः सविता**-हकार के समान उच्चारण होगा।

**देवी-** हिकार के समान **७ ७**

**आ॒खुर्स्ते पशु-** हुकार के समान ७ ७

**अग्नेः-** हेकार के समान ७ ७

**बा॒ह्वोः-** होकार के समान ७ ७

**स्वैः-** हिकार के समान ७ ७

**द्यौः-** हुकार के समान ७ ७

५-रंग अर्थात् अर्ध अनुस्वार के २ भेद हैं-

शत्रूं १।।, लोकाँ २।। (इसमें ह्रस्व या दीर्घ रंग का उच्चारण पूर्व स्वर के साथ सानुनासिक होता है।

६-जहाँ २ स्वर के मध्य ऽ चिह्न हो, वहाँ एक मात्रा काल विराम होता है।

७-जहाँ यकार के पेट में तिरछी रेखा हो, वहाँ जकार के समान उसका उच्चारण होता है।

८-हल् रकार का उच्चारण-श, ष, ह वर्णों के पूर्व के हल् रकार का रे उच्चारण किया जाता है।

९-मूर्धन्य षकार का उच्चारण-यदि ट-वर्ग (ट,ठ, ड,ढ,ण) से युक्त न हो तो क-वर्गीय खकार के समान उच्चारण होगा।

१०-ज्ञकार का उच्चारण ज्ञ =(ज् ञ)-मिश्रित के समान होना चाहिये। महाराष्ट्र में ग्न्य भी कहा जाता है।

माध्यन्दिन यजुर्वेद के प्रमुख चिह्न-

उदात्त-चिह्न रहित होता है-क

स्वरित-वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा-क॑

अनुदात्त-वर्ण के नीचे पड़ी रेखा-क॒

अनुस्वार ह्रस्व-क्र

अनुस्वार दीर्घ या ध्दृ

विसर्ग उदात्त के आगे-

विसर्ग अनुदात्त के आगे-

मध्यवर्ती स्वरित- ˪ या ४

अर्ध न्युब्ज तथा पूर्ण न्युब्ज- ω



## उदात्त आदि स्वरों की मुद्राओं का विवरण-

**वेदपाठ विधि**-वेद पाठ में नीचे लिखे नियमों पर ध्यान देना चाहिये-

वेद मन्त्रोच्चारण के लिये प्रसन्न मन एवं विनीत भाव से हस्त मुद्रा पर दृष्टि रखते हुये चित्र १ (आगामी पृष्ठ पर) में दिखाये गये ढंग से शुद्ध आसन पर स्वस्तिक या पद्मासन में बैठकर बायें हाथ की मुट्ठी पर दाहिना हाथ रख सभी अंगुलियां मिलाकर गोकर्ण आकृति हाथ रखते हुये बैठना चाहिये।

वेद पाठ करने में न बहुत शीघ्रता करे, न मन्दता। शान्त भाव से स्वर को बिना ऊँचा -नीचा किये एक लय से उच्चारण करे। मन्त्र पाठ आरम्भ करते समय सर्व प्रथम हरिःॐ का उच्चारण करे।

हाथ को ठीक गोकर्ण आकृति रखना चाहिये।

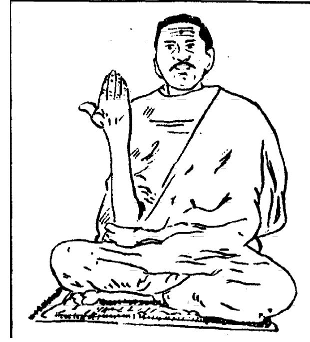
उदात्त में हाथ मस्तक तक तथा स्वरित में नासिकाग्र या मुख की सीध में एवं अनुदात्त में हृदय की सीध में हाथ जाना चाहिये। जात्यादि स्वरों में हाथ तिरछा जाना चाहिये। साधारणतया हाथ उदात्त में ऊपर (कन्धे के पास), स्वरित में मध्य में, तथा अनुदात्त में नीचे रहना चाहिये।

**उदात्त स्वर के २ भेद**-उदात्त स्वर के मुख्य रूप से २ भेद हैं-ऊर्ध्वगामी तथा वामगामी । उदात्त वर्ण का कोई चिह्न नहीं होता।

**प्रथम**-(क) स्वरित (ऊर्ध्व रेखा चिह्नित) वर्ण से पूर्व जो वर्ण चिह्न रहित हो, तो हाथ ऊपर जायेगा।

उदाहरण-आहमजानि (रुद्री १/१)





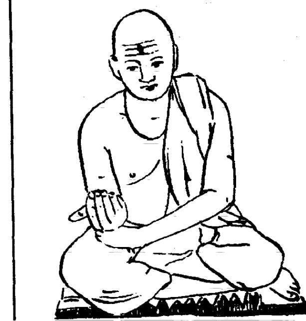
चित्र सं.१ चित्र सं. २

(ख) न्युब्ज चिह्न वाले स्वरित से आगे और ऊर्ध्व रेखायुक्त स्वरित से पूर्व जो वर्ण चिह्न रहित हो, तो हाथ ऊपर जायेगा। (चित्र २)

उदाहरण-बृहत्युष्णिहा (रुद्री १/२)

**द्वितीय**-वामगामी उदात्त के तीन अवान्तर भेद-(क) दो अनुदात्तों के मध्य में उदात्त (चिह्न रहित वर्ण) हो तो हाथ अपनी बायीं ओर जायेगा। (चित्र ३)





चित्र सं.३ चित्र सं.४

उदाहरण-गायत्री त्रिष्टुब्ज०। (रुद्री १/२)

(ख) वामगामी उदात्त-मन्त्र के मध्य के निश्चित अवसान या समाप्ति के अवसान



के चिह्नरहित वर्ण यदि अनुदात्त से परे तथा अग्रिम मन्त्रांश अनुदात्त से प्रारम्भ हो तो हाथ बायीं ओर जायेगा।

उदाहरण-गर्भधाम् (रुद्री १/१)

(ग) वामगामी उदात्त-मन्त्रारम्भ का वर्ण जो अनुदात्त चिह्न (नीचे पड़ी रेखा) से पूर्व हो, तो हाथ बायीं ओर जायेगा।

उदाहरण-य एतावन्तश्च (रुद्री ५/६३)

इस प्रकार दो प्रार का ऊर्ध्वगामी और तीन प्रकार का वामगामी उदात्त स्वर होता है। इसके ऊपर या नीचे कोई चिह्न नहीं रहता।

**अनुदात्त के ५ भेद**

अनुदात्त स्वर के नीचे तिरछी रेखा (क इस प्रकार) रहती है। अनुदात्त स्वर के ५ भेद हैं-

१-निम्नगामी, २-अन्त्यदर्शी, ३-दक्षगामी, ४-तिर्यग्दर्शी, और ५-अन्तर्गामी।

१-निम्नगामी उदात्त-अनुदात्त, उदात्त, स्वरित-इस क्रम से वर्ण हों, तो अनुदात्त चिह्न में हाथ नीचे जायगा। (चित्र ४)

उदाहरण-गणानान्त्वा (रुद्री १/१)

२-अन्त्यदर्शी उदात्त-अनेक उदात्त स्वर (निम्न रेखा वाले) हों, तो अन्तिम उदात्त में हाथ नीचे जायेगा।(चित्र ४)

उदाहरण-बल विज्ञाय स्थविरः (रुद्री ३/५)

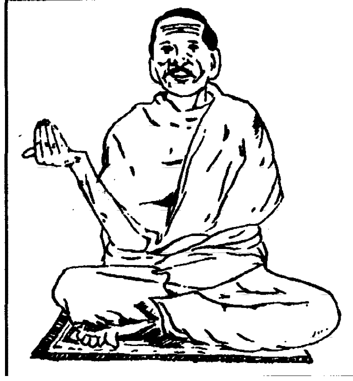
३-दक्षगामी उदात्त-अनुदात्त, उदात्त और अनुदात्त-इस क्रम से स्वर हों, तो प्रथम अनुदात्त में हाथ दाहिनी ओर जायेगा। (चित्र ५)

उदाहरण-पङ्क्त्या सह (रुद्री १/२)

४-अन्तर्गामी उदात्त-यदि मध्यावर्ती स्वर (जिस स्वर के नीचे ⌞ या ४ चिह्न हो,वह मध्यावर्ती कहा जाता है)-से अव्यवहित पूर्व अनुदात्त स्वर हो, तो हाथ पेट की तरफ घूम जायेगा।(चित्र ६)

उदाहरण-च व्युप्तकेशाय (रुद्री ५/२९)

५-तिर्यग्दर्शी अनुदात्त-यदि अनुदात्त से परे न्युब्ज चिह्न ( ‿ ) हो तो अनुदात्त में हाथ पिण्डदान के समान दाहिनी ओर झुकेगा। (चित्र ७)



चित्र ५



चित्र ६

उदाहरण-बृ॒हत्यु॒ष्णिहा (रुद्री १/२)

## स्वरित के ५ भेद

स्वरित स्वर के ५ भेद हैं-

१-मध्यपाती, २-मध्यदर्शी, ३-मध्यावर्ती, पूर्णन्युब्ज और ६-अर्धन्युब्ज। इसका मुख्य चिह्न वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा होता है।

१-**मध्यपाती** स्वरित-जहाँ स्वरित चिह्न (खड़ी रेखा) हो, वहाँ पर हाथ मध्य में (हृदय की सीध में) जाता है। (चित्र ८)

उदाहरण-ग॒णानां॑ न्त्वा (रुद्री १/१)

२-**मध्यदर्शी** स्वरित-स्वरित वर्ण के बाद बिना चिह्न के वर्ण को प्रचय कहते हैं। वह स्वरित के स्थान में ही दिखाये जाते हैं, इन पर कोई चिह्न नहीं होता। (चित्र ८)

उदाहरण-ग॒णपतिं॑ हवामहे (रुद्री १/१)

३-**मध्यावर्ती** स्वरित-जिस पद में वर्ण के नीचे ˪ या ४ चिह्न हो, उसके पूर्व में अनुदात्त चिह्न अवश्य रहेगा वहाँ हाथ छाती के सामने रहकर अनुदात्त चिह्न में भीतर की ओर घूमेगा और मध्यावर्ती स्वरित चिह्न में पूरा घुमाव करके बाहर आयेगा।

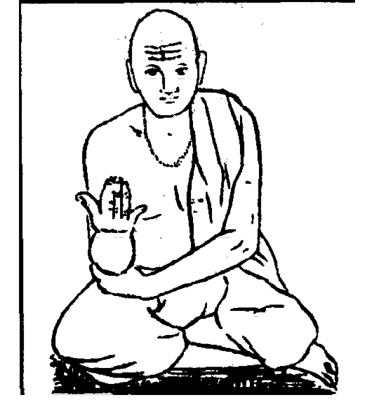
उदाहरण-च॒ व्युप्तकेशाय (रुद्री ५/२९)

४-**पूर्णन्युब्ज** स्वरित-अनुदात्त स्वर से आगे वर्ण के नीचे ( ꙴ ) चिह्न हो तथा उसके





चित्र ७



चित्र ८

आगे अचिह्न वर्ण के बाद मध्यपाती स्वरित ( ˪ ) चिह्न हो, तो न्युब्जबोधी चिह्न ( ꙴ ) में हाथ नीचे की ओर उलट जायेगा। (चित्र ९)

उदाहरण-बृ॒हत्यु॒ष्णिहा (रुद्री १/२)

५-**अर्धन्युब्ज** स्वरित-अनुदात्त चिह्न के आगे ( ꙴ ) चिह्न हो और उसके आगे अचिह्न वर्ण के बाद अनुदात्त चिह्न हो, तो न्युब्ज बोधी चिह्न में हाथ दाहिनी ओर उलटा किया जायेगा। (चित्र १०)

उदाहरण- र॒थ्यो॑ न र॒श्मीन् (रुद्री १/४)

**विशेष**-न्युब्ज चिह्न में अग्रिम स्वरों के सहयोग से हाथ नीचे या दाहिनी ओर जाता है। (१) अधोगामी पूर्ण न्युब्ज के उदाहरण के अनुदात्त में नीचे की ओर पिण्डदान के समान हाथ झुकेगा। (२) दक्षगामी अर्धन्युब्ज के उदाहरण के अनुदात्त में हाथ दाहिनी ओर जाकर पिण्डदान के समान झुकेगा।

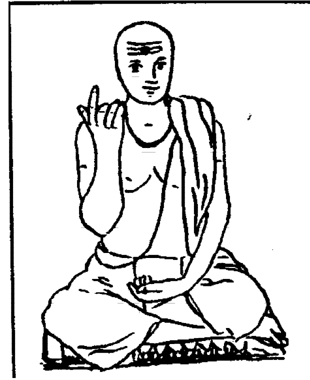
## विसर्ग की हस्त मुद्रायें

विसर्ग में ये ३ चिह्न होते हैं-

१-**विसर्ग**-(क) जहाँ विसर्ग के मध्य की रेखा ऊपर की ओर अंकित हो और ऊर्ध्वगामी उदात्त हो, वहाँ पर तर्जनी अंगुली ऊपर की ओर करना।(चित्र ११ क)

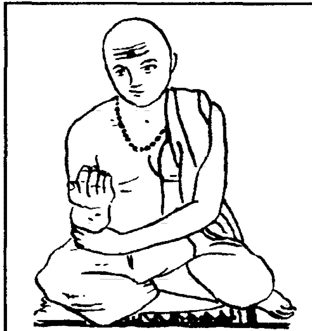
उदाहरण-आ॒शुः॑ शिशा॑नो (रुद्री ३/१)


चित्र ९


चित्र १०

(ख) यही विसर्ग यदि वामगामी उदात्त के बाद हो तो बायीं ओर हाथ रखते हुये तर्जनी अंगुली बाहर निकालना। (चित्र ११ ख)

उदाहरण-सहस्राक्षः॥ (रुद्री २/१)

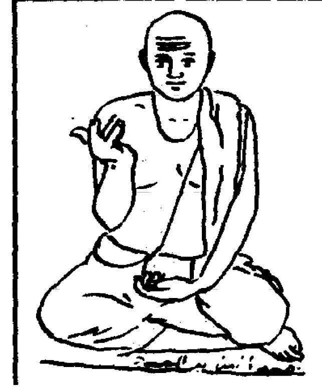

चित्र ११ (क)

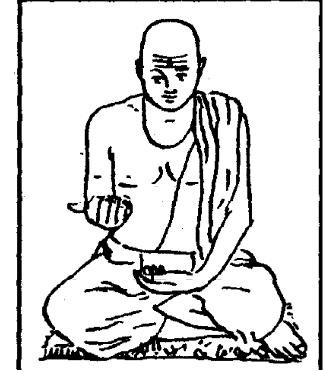

चित्र ११ (ख)

२-**विसर्ग**-जहाँ विसर्ग के मध्य में तिरछी रेखा हो वहाँ पर कनिष्ठा और तर्जनी को सीधी रखते हुये मध्यमा और अनामिका को हथेली की तरफ मोड़ना। (चित्र १२)

उदाहरण-**सूचीभिव**(रुद्री १/२)




चित्र १२


चित्र १३

३-**विसर्ग**-जहाँ पर विसर्ग के मध्य की रेखा नीचे की ओर हो, वहाँ पर कनिष्ठा अंगुली को नीचे की ओर करना। (चित्र १३)

उदाहरण-पुरुष (रुद्री २/१)


चित्र १४


चित्र १५

## अनुस्वार की मुद्रा के २ भेद

१-अनुस्वार-जहाँ अनुस्वार को (ँ) इस रूप में दिखाया गया है, वह एकमात्रिक

या लघु है। वहाँ तर्जनी अंगूठा मिलाना चाहिये। (चित्र १४)

उदाहरण-छन्दांसि (रुद्री २/७)

२-**अनुस्वार** जहाँ ( ँ या ठँ) इस रूप में हो, वहां केवल तर्जनी सीधी कर केदिखाना चाहिये। (चित्र १५)

उदाहरण-स॒भूमि ठँ (रुद्री २/१)

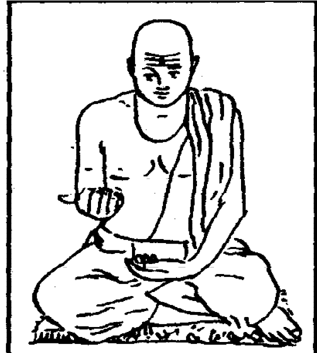
**अन्तिम हल् वर्णों की हस्तमुद्रा के ५ भेद**

१-अवसान मन्त्रार्थ या मन्त्रान्त पदपाठ में पदान्त में हल् क्, ट्, ङ्, ण्, हो तो तर्जनी को झुका कर दिखाना चाहिये। (चित्र १६)

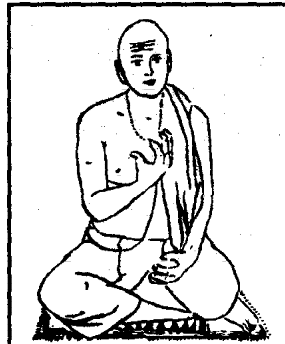
उदाहरण-पदपाठ में-**भिषक्, सम्राट्, प्राङ्, वृषण्।**

२-अवसान में हल् त् हो तो तर्जनी को अंगूठे से मिलाकर कुण्डल की आकृति करना। (चित्र १७)

उदाहरण-**सहस्रपात्**। (रुद्री २/१)



चित्र १६



चित्र १७

३-अवसान में हल् न् हो,तो तर्जनी के बगल से अंगूठा के नख का स्पर्श करना। (चित्र १८)

उदाहरण-**रश्मीन् (रुद्री १/४)**

४-अवसान के हल् म् में मुट्ठी बाँधकर दिखाना (चित्र १९)

उदाहरण-**गर्भधम्** (रुद्री १/१)





चित्र १९



चित्र २०

५-अवसान के हल् प् में पाँचों अंगुली मिलाना। (चित्र २०)

उदाहरण-पदपाठ मे ककुप्।

**वर्जित हस्तमुद्रा**

शास्त्रों में हस्त सञ्चालन के ये दोष कहे गये हैं-

चुलुर्नौका स्फुटो दण्डः स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः।

परशुर्हस्तदोषाः स्युस्तथाङ्गुल्या प्रदर्शनम्।। (सम्प्रदाय प्रबोधिनी शिक्षा)

१-चुलु (चुल्लु = आचमनमुद्रा), २-नौका (नौका के समान हाथ), ३-स्फुट (सीधा हाथ),

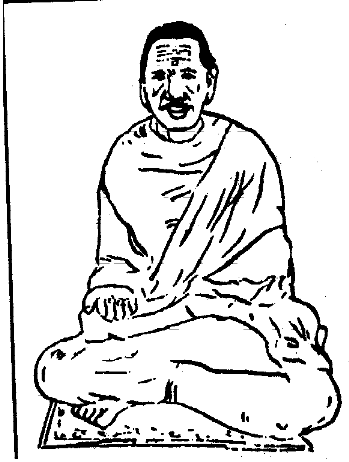
४-दण्ड (चपेटा के समान हाथ), ५-स्वस्तिक (अभय मुद्रा),६- मुष्टिक (मुट्ठी बन्द हाथ), ७-परशु (फरसे जैसा हाथ), ८-तर्जन (अंगुली से धमकी या समेत)



हस्तदोष १-चुलु



हस्तदोष २-नौका



हस्तदोष ३-स्फुट



हस्तदोष ४-दण्ड



हस्तदोष ५-स्वस्तिक



हस्तदोष ६-मुष्टिक





हस्तदोष ७-परशु



हस्तदोष ८-तर्जन

## सामगान की संक्षिप्त विधि

सामवेद के संहिता के २ भाग हैं-प्रथम भाग आर्चिक या पूर्वार्चिक है, दूसरा उत्तरार्चिक है। दोनों की कुल मन्त्र संख्या १८१० है। (कौथुमी शाखा)। यदि एक ही मन्त्र जो २ बार आया है, उसको छोड़ दें तो केवल १५४९ मन्त्र हैं। सभी मन्त्र ऋग्वेद के हैं। उनमें ७५ स्वतन्त्र हैं। पूर्वार्चिक में ७८५ ऋचाएँ हैं। उसके बाद एक आरण्यकाण्ड है, उसमें ५५ मन्त्र हैं। उसके बाद महानाम्नी आर्चिक है। तब उत्तरार्चिक है, जिसके १२३५ मन्त्र हैं।

साम का अर्थ है-गान या संगीत। ऋचि अध्यूढ्ज्ञसाम गीयते। ऋचा के आधार पर ही साम का गान होता है। उत्तरार्चिक में प्राय: ४०० प्रगाथ या गेय सूक्त हैं। पूर्वार्चिक में अग्नि, इन्द्र, सोम देवताओं की ऋचाएँ हैं। इनमें ग्रामगेय (जो ग्राम में गाये जायँ) और आरण्यगेय (जो वन में गाये जायें) का वर्णन है। आरण्यगेय को रहस्यगेय भी कहते हैं।

दो ऋचाओं के समूह को प्रगाथ कहते हैं। ग्रामगेय का विकृति गान को ऊहगान तथा आरण्यगान के विकृति-गान को ऊह्यगान कहते हैं। सामवेद आर्चिक में स्वर उदात्त १, अनुदात्त ३ तथा स्वरित २ के अम से दिखाये जाते हैं। दो अनुदात्त (३)

चिह्नों के मध्यमें रहने वाला उदात्त (२) अंक से दिखाया जाता है। ओंकार को सामवेदी उद्गीथ कहते हैं। इन गानों में अक्षरों के ऊपर-१, २, ३, ४, ५-इन अंकों से स्वरों का निर्देश किया जाता है। प्राय: मन्त्रों में ५ ही स्वर होते हैं। कुछ ऋचाओं में ७ तक स्वर भी लगते हैं। इन ७ स्वरों का संगीत (वंशी) के ७ स्वरों से इस प्रकार सम्बन्ध है-

१-(म) मध्यम, २-(ग) गान्धार, ३-(रे) ऋषभ, ४-(स) षड्ज, ५-(नी) निषाद, ६-(ध) धैवत, ७-(प) पञ्चम।

इनहीं स्वरों के अनुसार उद्गाता लोग यज्ञों में सामगान करते हैं।

स्तोभ-ऋचा में जो वर्ण नहीं हैं, उन्हें आलाप के लिये जोड़कर गान करना ही स्तोभ कहलाता है। स्तोभ अनेक हैं-औ हो वा। हा उ। ए हाऊ। होयि। औहोइ। ओहाइ आदि।

अनेक ऋषियों ने मन्त्रों का अपने ढंग से या लय से गान किया, वे गीतियां उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुयीं। जैसे-वामदेव्य, माधुछन्दस, श्यैत, नौधस आदि इनके अनेक नाम हैं।

**सामगान का उदाहरण**

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।

२ ३ १ २ ३ २उ ३१२३२उ ३ १ २ ३ १ २

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि।।५९४।।

**इस ऋचा के सामगान का विस्तार-**

२र र र १रर २ २ १

हाउ हाउ हाउ। सेतूंश्च स्तर। (त्रि:) दुस्त। रान्। (द्वे त्रि:)।

र२र१रर२

दानेनादानम्। (त्रि:)।

र र र र १ २ १ १ १

हाउ हाउ हाउ। अहमस्मिप्रथमजाऋताऽ२३स्याऽ३४५।।



२र र र १रर २ १

हाउ हाउ हाउ सेतूंश्च स्तर। (त्रि:) दुस्त। रान्। (द्वे त्रि:)।

र २र १र २र १र २र र र

अक्रोधेनक्रोधम्। (द्वि:) अक्रोधेनक्रोधम्। हाउ हाउ हाउ।

र रर र १ २ १ १ १

पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्यनाऽ२३ माऽ३४५।।

२र र र १रर २ १

हाउ हाउ हाउ। सेतूंश्च स्तर। (त्रि:) दुस्त। रान्। (द्वे त्रि:)।

२ १र २र

श्रद्धयाऽश्रद्धाम्।(त्रि:)।

र र र र र र र१ २ १ १ १

हाउ हाउ हाउ। यो मा ददाति सईदेवमाऽ२३वाऽ३४५ त्।।

२र र र १रर २ १

हाउ हाउ हाउ। सेतूंश्च स्तर। (त्रि:) दुस्त। रान्। (द्वे त्रि:)।

२ १र र २ र र र

सत्येनानृतम्। (त्रि:)। हाउ हाउ हाउ।

१ २ १ १ १ २ऽ ऽ ऽ

अहमन्नमन्नमदन्तामाऽ२३द्मीऽ३४५। हाउ हाउ हाउ वा।।

र१र १ २ १र २

एषागति:। (त्रि:)। स्वर्गच्छ। (त्रि:)। ज्योतिर्गच्छ। (त्रि:)।

१रर २र १र २ १ १ १ १

सेतूं स्तीर्त्वा चतुरा २३४५।।

किसी भी मन्त्र को सामगान में गाने के उपयुक्त करने के लिये नीचे लिखे ८ प्रकार के विकारों का भी प्रयोग किया जाता है-

| संख्या संज्ञा | विवरण | उदाहरण |
|---|---|---|
| १-विकार | एक वर्ण के स्थान में दूसरा बोलना | अग्ने-ओग्नायि। |
| २-विश्लेष | सन्धि का विच्छेद करना | वीतये-वोयि तोया २यि |
| ३-विकर्षण | लम्बा खींचना | ये-या २३यि |
| ४-अभ्यास | बार बार उच्चारण करना | तो या २ यि, तो या २ यि |
| ५-विराम | पद केमध्य में भी ठहरना | गुणानो हव्यदातये-गुणानोहा व्यदातये |
| ६-स्तोभ | निरर्थक वर्ण का प्रयोग | औ हो वा, हा उ, हावु |
| ७-आगम | अधिक वर्ण प्रयोग | वरेण्यम्=वरेणियोम् |
| ८-लोप | वर्ण का उच्चारण न करना | प्रचोदयात्=प्रचोऽ१२ऽ१२। हुम्। आ२। दायो। आ३४५। |

ऋग्वेद मन्त्र (६/१६/१०) के गान में सभी ८ विकारों के उदाहरण हैं-

अग्न॒ आया॑हि वी॒तयें गृणा॒नौं ह॒व्यदा॑तये । निहोता॑ सत्सि बर्हिषिं॑ः ।

सामगान के प्रयोग में यही मन्त्र-

१ ४ २ र र १ - १ - १ र २ र

ओं। ओऽग्नाई।। आयाहिऽ३ वोइतोयाऽ२इ। तोयाऽ२इ। गृणानोह।

१ १ १ २र १

व्यदातोयाऽ२इ। तोयाऽ२इ।। नाइहोता साऽ२३ ।।

५ र र ३ ५

त्साऽ२इबा २३४ औहोवा। ही ऽ२३४ वी।

इस प्रकार संक्षेप में सामगान की रूपरेखा दिखायी गयी है।

ऋक् तथा यजुर्वेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित में-उदात्त बिना चिह्न का, अनुदात्त वर्ण के नीचे तिरछी रेखा तथा वरित के ऊपर खड़ी रेख देते हैं। किन्तु सामवेद में यही मन्त्र इस प्रकार लिखा जाता है-(सामवेद ६६०)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ।।



## सामगान के विशेष चिह्न

१-सामवेद में कहीं -कहीं वर्णों पर र, क, और उ के चिह्न देखे जाते हैं। उनका तात्पर्य है कि जब दो उदात्त एकत्र होते हैं, तब पहले के ऊपर १ का अंक लगता है और दूसरा बिना चिह्न का रहता है। परन्तु इस दूसरे उदात्त के आगे वाले पर रकार सहित २ का अंक लगेगा।

२-अनुदात्त के बाद के स्वरित पर भी २र यही चिह्न होता है, किन्तु तब स्वरित के पहले अनुदात्त पर ३क यह चिह्न होता है।

३-यदि दो उदात्त सन्निकृष्ट हों और बाद में अनुदात्त स्वर हो तो प्रथम उदात्त के ऊपर २उ यह चिह्न दिया जाता हैतथा दूसरा स्वर चिह्नरहित होता है।

## अध्याय २

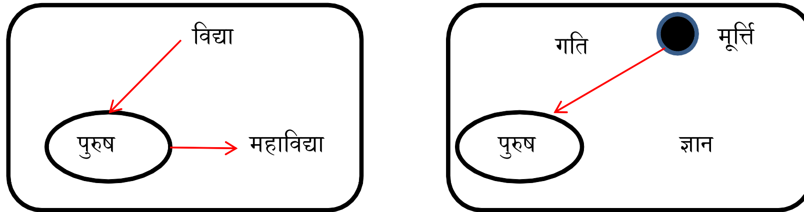
# वेद तथा पुरुष

**१. आगम-निगम-पुराण**-भारतीय या विश्व ज्ञान के ये तीन मूल स्रोत हैं। इन तीनों की उत्पत्ति एक साथ हुयी है-

प्रथमं सर्व शास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।
(वायु.पु.१/६१;मत्स्य पु.५३/३)

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को समझ नहीं आ रहा था कि सृष्टि कार्य कैसे करें। तब उन्होंने पुराण द्वारा पूर्व कल्प की प्रक्रिया का स्मरण किया और वेदों की रचना की। ध्यान की विधि, प्रयोग, अनुसन्धान-ये सभी तन्त्र के विषय हैं जिनका बिना उल्लेख का वर्णन है।

**विद्या और महाविद्या**-वेद श्रुति है, इसका यह अर्थ नहीं कि ऋषि लिखना नहीं जानते थे जो अनपढ़ लोगों की धारणा है। ज्ञान का वातावरण से ग्रहण श्रुति है। मूल सृष्टि का आरम्भ आकाश से हुआ, उसका गुण शब्द है। अतः श्रुति का अर्थ अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भी ग्रहण है। पुर का चेतन पदार्थ पुरुष है, वह बाहर से जो ग्रहण करता है वह विद्या या वेद है। पुर का बाहरी आवरण महर् है। पुरुष के कार्य का जो प्रभाव महर् द्वारा ग्रहण होता है, वह महाविद्या है।




मूल आधार या ब्रह्म अथर्व (थर्व=हिलना, थरथराना, अथर्व= स्थिर, शान्त) है। इससे श्रुति के ३ पदों-पदार्थ का रूप, उससे सूचना का आगमन, ज्ञान-द्वारा तीन वेदों-ऋक्, यजुः, साम- की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण सृष्टि में मूर्त्ति, गति, प्रभाव-क्षेत्र-ये ऋक्, यजुः, साम हैं। इन्हीं को अग्नि, वायु, रवि भी कहा जाता है। विद् धातु के ४ अर्थ ४ वेदों के अनुसार हैं।



**२. वेद विभाग**-वेद के ४ विभागों का तात्त्विक आधार है-

| तत्त्व | वेद | विद् धातु का अर्थ |
|---|---|---|
| मूर्त्ति | ऋक् | सत्ता (स्थिति)-विद सत्तायाम् (पा.धा. ४/६०) |
| गति | यजुः | लाभ (प्राप्ति)-विद्लृ लाभे (६/१४१) |
| ज्ञान | साम | ज्ञान-विद ज्ञाने (२/५७) |
| सन्दर्भ | अथर्व | विचार करना-विद विचारणे (७/१३) चेतनाख्यान निवासेषु (१०/१७७) |

वेद के ४ विभागों का प्रायः ४० प्रकार से वर्णन है, उसमें एक है-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः, सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजं सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण३/१२/८/१)

इन्हें अग्नि, वायु, रवि भी कहते हैं-

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं बह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं ऋग्यजुः साम लक्षणम्।।( मनुस्मृति १/२३)

इन दोनों श्लोकों में ब्रह्म का अर्थ अथर्व-वेद है, जो प्रथम वेद है-

ब्रह्मा देवानां प्रथमं सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्या सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।।१।।
द्वे विद्ये वेदितव्ये, इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैव अपरा च(४)
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते(५)(मुण्डक उप. १/१)

ऋक् तथा अन्य वेदों में भी अथर्व का प्रथम वेद के रूप में उल्लेख है-

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः।।१३।।
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्।।१४।।
(ऋक्, ६/१६/१३-१४; वा. यजु. ११/३२-३३, १५/२२-२३; साम ९/१०, तै.सं. ३/५/११/३-४, ४/१३/२-३, ४/४/१)

एक मूल वेद से तीन और होने के कारण त्रयी का अर्थ ४ वेद होता है, क्योंकि मूल भी बना रहता है। इसका भ्रामक अर्थ लगाया जाता है कि पहले एक वेद था बाद में अथर्व हुआ। ४ वेद-स्रष्टा रूप में ब्रह्मा के ४ मुख हैं तथा उनका चिह्न पलाश वृक्ष है। पलाश में भी एक शाखा से तीन पत्र निकलते हैं, जैसे अथर्व से ३ अन्य। हिन्दी

में उक्ति है-वही ढाक के तीन पात।

**३. वृक्ष-रूप में व्याख्या**-गीता में वेद को समझाने के लिये वृक्ष-रूप में व्याख्या है। मूल स्रोत वृक्ष के मूल जैसा है, उसे ऊपर कहा गया है। उससे निर्माण की विभिन्न दिशायें उसकी शाखायें हैं। निर्माण का परिणाम वृक्ष के फल जैसा है, अतः दोनों को फल ही कहते हैं। मूल से शाखा, पत्र (फल) का निर्माण तथा उसमें पुनः लय होने का क्रम सदा चलता रहता है, अतः इसे अविनाशी अश्वत्थ या अव्यय पुरुष कहा जाता है-

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।। (गीता १५/१)

अव्यय का अर्थ है, व्यय (खर्च) नहीं होना, मूल स्रोत से जितना कम होता है, वह पुरुष को बनाने में लग जाता है, अतः योग बराबर रहता है। भौतिक विज्ञान में ५ प्रकार के संरक्षण सिद्धान्त हैं-मात्रा, ऊर्ज्जा, (या सापेक्षवाद में दोनों का योग), आवेग, कोणीय आवेग, परमाणु के मूल कणों का स्पिन। अव्यय पुरुष का शरीर दारु (काष्ठ) का कहा गाता है। चारो ओर फैला हुआ पदार्थ समुद्र है, उससे अन्तःसंज्ञ वृक्ष अन्न का निर्माण करते हैं। इन्ही वृक्षों के फल आदि से मनुष्य का शरीर बनता है। अव्यय पुरुष क्षर से परे तथा अक्षर से भी श्रेष्ठ है, अतः उत्तम पुरुष (या पुरुषोत्तम = जगन्नाथ) कहा जाता है-

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।(गीता १५/१७)

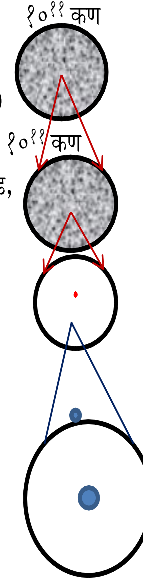
लोक तथ वेद (ज्ञान-विज्ञान) दोनों भाषायें एक साथ प्रचलित रहती हैं, अतः दोनों का वर्त्तमान काल में वर्णन है। पुरुषोत्तम प्रथित (first) है, अतः एक का क्रम एकीय नहीं, प्रथम होता है, और एक को (मर्यादा-पुरुषोत्तम) राम कहा जाता है। समुद्र (वातावरण) से वृक्ष के माध्यम से अव्यय मानव शरीर बनता है, अतः जगन्नाथ का शरीर भी समुद्र से बह कर आये काष्ठ से बनता है-

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्। (ऋक्१०/१५५/३)

अर्थात् जो अपौरुषेय दारू (काष्ठ) समुद्र से बह कर आया उसकी आराधना कर दुर्गम संसार को पार करो। विश्व-वृक्ष के ज्योतिषीय और आध्यात्मिक रूपों का सम्बन्ध आगे दिया जा रहा है। आधिभौतिक रूप कई व्यक्ति-रूपों का समन्वय है।



**विश्व वृक्ष**



| मण्डल | रूप | देवता | माहेश्वर-सूत्र के वर्ण | | शरीर के चक्र |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | स्वर | सवर्ण अन्तःस्थ | सौन्दर्य लहरी ९ का सृष्टि क्रम |
| १. **स्वायम्भुव** (आकाश-गङ्गा समूह के रूप में सम्पूर्ण विश्व) | $१०^{११}$ कण | ब्रह्मा (बृहत्) | अ | ह | विशुद्धि (कण्ठ मूल) |
| २. **परमेष्ठी** (आकाश-गङ्गा, ब्रह्माण्ड, कूर्म=चक्र, गोलोक) | $१०^{११}$ कण | विष्णु (बान्धना, वेष्टन) | इ | य | अनाहत (हृदय) |
| ३. **सौर** (सूर्य का प्रभाव-क्षेत्र) | | इन्द्र (विकिरण) | उ | व | स्वाधिष्ठान (नाभि) |
| ४. **चान्द्र** (चन्द्र कक्षा का गोला) | | सोम (विरल पदार्थ) | ऋ | र | मणिपूर (मेरुदण्ड का मूल) |
| ५. **भू** (पृथ्वी) | | अग्नि (सघन पदार्थ) | लृ | ल | मूलाधार (मल-मूत्र द्वारों के बीच) |

**टिप्पणी** -(१) विश्व के सभी ५ मण्डल निराकार के सघन रूप होने के कारण अग्नि (सृष्टि की अग्र या प्रथम क्रिया) हैं, सबसे सघन मण्डल पृथ्वी विशेष रूप से अग्नि है। इन ५ अग्नियों में प्रथम २ का अनुभव नहीं होता, अन्तिम ३ का मिला-जुला प्रभाव होता है-अतः इन्हें नाचिकेत (चिकेत= अलग-अलग, स्पष्ट) अग्नि कहा जाता है-ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे (परम-गुहा परमेष्ठी की परिधि परा = $१०^{१७}$ योजन का आधा है)

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति, पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः (कठ उ.१/३/१)

इनके मिलित प्रभाव से शान्ति है, अतः ये शिव के ३ नेत्र हैं। प्रति माङ्गलिक कार्य

में इन तीन नेत्रों का स्मरण किया जाता है-

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। (मुण्डक उप.२/१/४)

शिव = उ+ऋ+लृ = हुलहुली (भाषा में होली)। अंग्रेजी में भी होली (holy) = पवित्र

अन्तिम पद होने के कारण पृथ्वी पद (पद्भ्यां भूमिः-पुरुष-सूक्त-१३) या पद्म है

तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहु योजन विस्तृते। सर्व तेजो गुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्वृते।

तच्च पद्मं पुरा भूतं पृथिवी रूपमुत्तमम्।

नारायण समुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः। (पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड ४०/२-३)

पुष्कर-पर्ण और अग्नि-त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत(ऋक् ६/१६/१३)।

(२) अग्नि सघन तथा सोम विरल है। श्रद्धा द्वारा अग्नि सोम होता है। श्रद्धा अर्थात् सरल रेखा (श्रवा या श्रत्) में धारण (प्रसारण) से अग्नि फैलकर सोम हो जाता है-

श्रद्धत्स्व सोम्येति (छान्दोग्य उ. ६/१२/३)।

सोममध्ये हुताशनः (अग्निः)-(मैत्रायणी उप. ६/३८)।

सघन पदार्थ के रूप में पृथ्वी अग्नि है, यह चन्द्र-कक्षा के केन्द्र में है। सूर्य भी सघन तेज या ऊर्जा केन्द्र के रूप में अग्नि है, उसके चारो तरफ सोम के कई स्तर हैं-शतरुद्री (१०० सूर्य-व्यास दूर पृथ्वी), सहस्र-रुद्री (शनि-कक्षा), लक्ष-रुद्री (मैत्रेय-मण्डल)

शतशीर्ष रुद्रशमनीयम्, ह वैतच्छतरुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम्। (शत.ब्रा. ९/१/१/७)

शत योजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति (कौषीतकि ब्रा.८/३)

सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः। (जैमिनीय उप.ब्रा. १/४४/५)

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।

ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो हेड ईमहे। (वा.यजु. १६/६)

भूमेर्योजन लक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम्।

लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलः शशिनः स्थितम्। (विष्णु पु. २/७/५)

सूर्य-मण्डल की सीमा कोटि (=सीमा, या १०० लक्ष) व्यास दूरी पर है। इसके भीतर विष्णु के ३ पद हैं, मित्र-क्षेत्र में रुद्र के ३ स्तर। उसके बाहर वरुण-क्षेत्र है जिसमें महर्लोक का सोम है-

महत्तत्सोमो महिषश्चकार अपां यद्गर्भे अवृणीत् देवम्। (ऋक् ९/१७/४१)

सूर्य किरणों की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड है-यह विष्णु का परम पद है और सूर्यो का समूह (सूरयः) है। मनुष्य का मस्तिष्क उसका प्रतिरूप होने के कारण विद्वानों को भी सूरयः कहा जाता है-



इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। (ऋक् १/२२/१७)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। (ऋक्१/२२/२०)

(३) व्याकरण तथा तन्त्र (सृष्टि) के आधार रूप माहेश्वर-सूत्र में १४ सूत्र (१४ बार डमरू-वादन या १४ भुवन) तथा ४३ अक्षर हैं। प्रथम २ सूत्रों के अक्षर ५ मूल स्वर हैं-अइउण्। ऋलृक्। (अन्तिम हलन्त वर्ण सूत्र-समाप्ति का चिह्न मात्र है) स्वर वर्ण स्वः या आकाश के प्रतीक या स्वरूप हैं। उनके सवर्ण (एक ही स्थान से उच्चारण) अन्तःस्थ वर्ण शरीर के आन्तरिक विश्व के चक्रों के बीज मन्त्र हैं-हयवरट्। लण्। इन बीज-मन्त्रों के क्रम में मणिपूर-स्वाधिष्ठान का क्रम बदल गया है। साधना- क्रम में मेरुदण्ड का मूल स्वाधिष्ठान है, उसके उपर मणिपूर है। सौन्दर्य-लहरी (शङ्कराचार्य) श्लोक ९ में है-

महीं मूलाधारे कमपिमणिपूरे हुतवहं, स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपिभित्वा कुलपथं, सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।

(४) इन पर्वो की माप ७ प्रकार के योजनों में वेद पुराणों में दी गयी है। ७ योजन तथा ७ युग अस्य-वामीय-सूक्त के अनुसार हैं-

सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रो एको अश्वो वहति सप्तनामा। (ऋक् १/१६४/२)

मनुष्य से आरम्भ कर पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड, स्वयम्भू-क्रमशः कोटि-कोटि गुणा बड़े हैं। पृथ्वी के लिये सौर- मण्डल आकाश है, पुनः उसके लिये ब्रह्माण्ड आकाश है, ब्रह्माण्ड के लिये स्वयम्भू आकाश है। इन आकाशों के लिये पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड भूमि हैं। तीनों भूमि सूर्य-चन्द्र से प्रकाशित हैं-दोनों से प्रकाशित पृथ्वी, सूर्य से प्रकाशित सौर-मण्डल, तथा सूर्य-प्रकाश की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड है-

रवि चन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। स समुद्र सरिच्छैला पृथिवी तावती स्मृता।

यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तार परिमण्डलात्।

नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यास मण्डलतो द्विज।। (विष्णु पु. २/७/३-४)

तीन भूमि को ३ माता तथा आकाश को ३ पिता कहा गया है (ऋक् १/१६४/१०,२/२७/८)। प्रत्येक पृथ्वी के बाहर वायु (गतिशील पदार्थ) के क्रमशः १० गुणा बड़े ७ आवरण हैं, अतः अन्तिम आवरण कोटि गुणा होगा। $१०^७ = २^{२४}$, अतः कोटि गुणा का अर्थ है, २४ बार २ गुणा करना। अतः २४ अक्षरों का छन्द गायत्री

ही सभी लोकों की माप है-

इमे वै लोका गायत्री (ताण्ड्य महाब्राह्मण १५/१०/९, १६/१४/४)।

मनुष्य से आरम्भ कर गायत्री ($२^{२४}$) से गुणा करने पर पृथ्वी (गायत्री), सौर-मण्डल (सावित्री), ब्रह्माण्ड (सरस्वती), स्वयम्भू (नियती या संयती) का आकार होता है (आपस्तम्ब गृह्य सूत्र परिशिष्ट)।

(५) स्वयम्भू अति विरल होने के कारण आकाश जैसा है। गति का आरम्भ यज्ञ या परमेष्ठी मण्डल से है। सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य तेज या प्रकाश के स्रोत के रूप में इन्द्र है, उसी से सृष्टि चल रही है, अतः वह जगत् की आत्मा है। सौर तेज चन्द्र के पास आकर मन्द तथा विरल हो जाता है, अतः यह सोम है। सौर मण्डल में सबसे घनीभूत पृथ्वी है, अतः यह अग्नि हुआ। इन ५ पर्वों का आरम्भ २ अव्यक्त स्तरों से हुआ। सबका मूल ब्रह्म है जो रस-रूप है, अर्थात् हर स्थान, काल, तथा दिशा में समान है। उसकी सृष्टि अनेक प्रकार की हो सकती है, प्रति भेद एक बल्शा या शाखा है, अतः इसे सहस्र-बल्शा का कहा जाता है। सृष्टि करने की इच्छा शून्य-रूप रस से हुयी-इस मन को श्वोवसीयस (शून्य में निवास करनेवाला) मन कहा जाता है। उत्पत्ति-क्रम है-

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।..यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। (तैत्तिरीय उ. २/७/१)।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः....(तैत्तिरीय उ. २/१/३)।

मनुष्य शरीर में इसकी प्रतिमा सहस्रार तथा श्वोवसीयस-मन का आज्ञा-चक्र हैं।

**४. अक्षर-पुरुष**-अक्षर पुरुष क्रिया या यज्ञ रूप है। विश्व के प्रत्येक पर्व से मानव शरीर का एक कोष या एक आत्मा का गतिशील सम्बन्ध है।

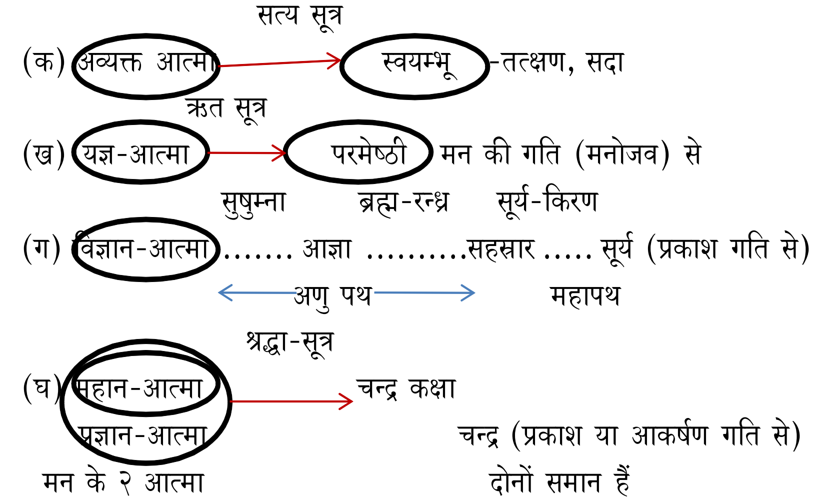
**टिप्पणी**-(१) अव्यक्त आत्मा तथा ब्रह्म एक ही है, उनमें सदा सम्बन्ध बना रहता है। सूर्य जगत् की आत्मा है-सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (वाज.यजु. ७/२२)

सूर्य का अंश विज्ञान आत्मा है, जो बुद्धि का नियन्त्रक है। अतः सूर्य को आत्मा-कारक भी कहते हैं। विज्ञान-आत्मा का निवास मुख्यतः हृदय में है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में हृदय से सुषुम्ना द्वारा आज्ञा-चक्र तक तथा उसके बाद ब्रह्म-रन्ध्र से सहस्रार तक का सम्बन्ध अणु-पथ कहलाता है। उसके बाद सूर्य तक का सम्बन्ध



महा-पथ है जो किरण द्वारा होता है-

तदेते श्लोका भवन्ति-अणुः पन्था विततः पुराणो मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव।




तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः।।८।।
तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च।
एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च।।
(बृहदारण्यक उप.४/४/८,९)

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलाणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ।।१।। तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाड़ीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः।।२।।....अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रामते स ओमिति वा होद्वामीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषा प्रपदनं

निरोधोऽवदुषाम्।।५।। (छान्दोग्य उ. ८/६/१,२,५)

ब्रह्म-सूत्र (४/२/१७-२०)-

१-तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया।

२-रश्म्यनुसारी। ३-निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च।

४-अतश्चायनेऽपि दक्षिणे।

मैत्रायणी उपनिषद् (६/३० ) भी द्रष्टव्य ।

प्रकाश-गति से सूर्य के साथ सम्बन्ध ८ मिनट में जाकर उतने ही समय में वापस आयेगा। अतः यह एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) में ३ बार आता-जाता है-

त्रिर्ह वा एष (मघवा-इन्द्रः-आदित्यः-सौरप्राणः) एतस्या मुहूर्त्तस्येमां पृथिवीं समन्तः पर्य्येति (जैमिनीय ब्रा.उप. १/४४/९)

रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।

त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्त्त मागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा।। (ऋक् ३/५३/८)

चन्द्र तक जाकर लौटने में प्रकाश को प्रायः १.७ सेकण्ड लगता है। इसे प्रायः निमेष-मात्र कहा गया है।

(२) **मन के स्तर**-मन की उत्पत्ति शून्य-रूप रस से हुयी, जिसे श्वोवसीयस् मन कहा गया है। उसका प्रथम रूप है-स्वायम्भुव मन जो अनन्त है, किन्तु दृश्य जगत् में सौ अरब ($१०^{११}$) कण रूप ब्रह्माण्ड हैं, अतः सौ अरब को खर्व (चूर्ण रूप) कहा जाता है। इसका वेद या ज्ञान अनन्त कहा गया है। दृश्य जगत् की प्रतिमा हमारा ब्रह्माण्ड है, जिसके खर्व कण सूर्य समान तारा हैं। इन दोनों की प्रतिमा मनुष्य का मस्तिष्क है, जिसमें खर्व कोषिका (neuron) हैं। इसके मूल ३ प्रकार के नक्षत्र हैं-ब्रह्माण्डों के समूह के रूप में स्वायम्भुव, तारा समूह के रूप में ब्रह्माण्ड, तथा सौर मण्डल के पिण्ड। नक्षत्रों की संख्या शतपथ ब्राह्मण में है-

एभ्यो लोमगर्त्तेभ्य ऊर्ध्वानि ज्योतींष्यान्। तद्यानि तानि ज्योतींषिः एतानि तानि नक्षत्राणि। यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्त्ताः।(शतपथ ब्रा.१०/४/४/२)

पुरुषो वै सम्वत्सरः ...।।१।।

दश वै सहस्राण्याष्टौ च शतानि सम्वत्सरस्य मुहूर्त्ताः। यावन्तो मुहूर्त्तास्तावन्ति पञ्चदशकृत्त्वः क्षिप्राणि। यावन्ति क्षिप्राणि, तावन्ति पञ्चदशकृत्त्वः एतर्हीणि। यावन्त्येतर्हीणि, तावन्ति पञ्चदशकृत्त्व इदानीनि। यावन्तीदानीनि, तावन्तः पञ्चदशकृत्त्वः प्राणाः। यावन्तः प्राणाः,



तावन्तोऽनाः। यावन्तोऽनाः, तावन्तो निमेषाः। यावन्तो निमेषाः, तावन्तो लोमगर्त्ताः। यावन्तो लोमगर्त्ताः, तावन्ति स्वेदायनानि। यावन्ति स्वेदायनानि, तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।(शतपथ ब्राह्मण १२/३/२/५)

अर्थात्, १ सम्वत्सर में जितने लोमगर्त्त हैं, उतने ही पुरुष में होंगें। पुरुष भूमि का १० गुणा है (पुरुष-सूक्त-१, स भूमिं विश्वतो वृत्त्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्)। मुहूर्त्त को क्रमशः १५ से विभाजित करने पर क्षिप्र, एतर्हि, इदम्, प्राण, अन, निमेष, लोमगर्त्त, स्वेदायन होते हैं। अतः,लोमगर्त्त = मुहूर्त्त $\times १५^{-७}$ = १ सेकण्ड का प्रायः ७५,००० भाग। १ सम्वत्सर में प्रायः $१०^{१२}$ लोमगर्त्त हैं। अतः ब्रह्माण्ड में $१०^{११}$ नक्षत्र होंगे। लोमगर्त्त सेकण्ड का ११,२०,००० भाग है जिसमें प्रकाश किरण २७० मीटर जाती है, वर्षा की बून्द प्रायः उतनी दूरी तक अपना आकार स्थिर रखती हैं।

(३) सौर-मण्डल में ६०,००० बालखिल्य हैं, जिनका आकार अङ्गुष्ठ (पृथ्वी रूप पुरुष का ९६ भाग, अर्थात् १३५ कि.मी.व्यास) के बराबर है। यूरेनस तक क्रतु अर्थात् यज्ञ है (भागवत पुराण, स्कन्ध ५), जो १०० कोटि योजन का अलोक भाग है। इसका आधा ५० कोटि योजन का लोक (प्रकाशित) भाग या प्रियव्रत है। इस नक्षत्र-मण्डल की दूरी सूर्य तुलना में ६० गुणा है (सूर्य-सिद्धान्त, १२/८०)। इन नक्षत्रों का प्रभाव क्षेत्र ही मन है। अलग-अलग कण मन के परमाणु हैं, उनका समुद्र सरस्वती है। उस मानस-सरोवर में चन्द्र के परिभ्रमण से लहर उठती है, वह चित्त की वृत्ति है। अतः पुरुष-सूक्त में-चन्द्रमा मनसो जातः-कहा गया है।

(४) सूर्य तथा चन्द्र से सतत् सम्पर्क द्वारा आत्मा (बुद्धि) तथा मन (चित्त-वृत्ति) का नियन्त्रण होता है। इसमें अन्य ग्रहों के प्रभाव से सूक्ष्म परिवर्त्तन होते हैं- यह सूर्य से उसके सहस्र व्यास दूर तक (शनि-कक्षा) ही अनुभव-गम्य है। यह सहस्राक्ष (इन्द्र) क्षेत्र का आरम्भ है-अक्ष= चक्षु, सहस्राक्ष = इन्द्र-चक्षोः सूर्यो अजायत (पुरुष-सूक्त)। वहीं तक का प्रभाव इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होगा।

(५) ग्रहों का प्रभाव अन्य चर-अचर प्राणियों पर भी पड़ता है, पुनः उनका हमारे ऊपर। भौतिक वातावरण के परिवर्त्तन माध्यम से भी ग्रहों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है।

**५. क्षर-पुरुष**-चरक-संहिता(शारीर-स्थान ५/२) के पूर्व उद्धृत वाक्य के अनुसार लोक के जितने भाग हैं, पुरुष के भी उतने ही भाग होगें। शरीर के ५ कोष विश्व

के ५ पर्वों के समतुल्य हैं। चरक-संहिता, शारीर-स्थान, अध्याय ५ के अनुसार-लोक की ६ धातु-१. आत्मा(अव्यक्त), २. आकाश, ३. वायु, ४. तेज, ५. जल, ६. पृथिवी। मनुष्य की ६ धातु-१. आत्मा (अव्यक्त), २. छिद्र-समूह (आकाश), ३. प्राण (वायु), ४. शारीरिक उष्णता (तेज), ५. क्लेद या गीलापन (जल), ६. पुरुष-मूर्त्ति या शरीर (पृथिवी)।

| **अन्य- लोक** | **पुरुष** |
|---|---|
| १. प्रजापति | मन |
| २. इन्द्र | अहंकार |
| ३. आदित्य | आदान (रस ग्रहण करने की शक्ति) |
| ४. रुद्र | रोष |
| ५. सोम | प्रसाद (प्रसन्नता) |
| ६. वसु | सुख |
| ७. अश्विनी-कुमार | कान्ति |
| ८. मरुद्गण | उत्साह |
| ९. विश्वेदेव | इन्द्रिय और उनके विषय |
| १०. अन्धकार | मोह |
| ११. ज्योति | ज्ञान |
| १२. चतुर्युग | बाल्य-यौवन-वानप्रस्थ-वृद्ध.........आदि। |

शरीर का स्थूल रूप जिस स्रोत से निर्मित होता है, उसी में मिल जाता है। पार्थिव शरीर अग्नि-जल-पृथ्वी-वायु से संस्कार होकर पृथ्वी में मिल जाता है। प्रेत शरीर (प्रज्ञान+महान) चन्द्र-मण्डल में जाता है -विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति। (कौषीतकि ब्रा.) वहां तक की गति के लिये मासिक श्राद्ध होता है। महान-आत्मा सौर मण्डल को पार करता है-द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मण्डल भेदिनौ।

परिव्राड् योगयुक्तो वा रणे चाभिमुखं हतम्। (विदुर-गीता, शुक्र-नीति ४/७/३०२) सौर मण्हल सौर वायु (प्रकाश तथा ऊर्जा का रैखिक प्रवाह = गोजा-ऋक् १/१०२/६, या ईषा-ईषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थः-यजुः १/१) के दबाव से धीरे-धीरे ६० वर्षों में पार होता है-आदित्याश्च ह वा आङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्द्धन्त-वयं पूर्वे एष्यामो वयमिति। ते हाऽऽदित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः, पश्चेवाङ्गिरसः, षष्ठ्यां वा वर्षेषु। (ऐतरेय ब्राह्मण १८/३/१७)



आदित्याश्चाङ्गिरसश्च सुवर्गे लोकेऽस्पर्द्धन्त, वयं पूर्वे सुवर्गं लोकमिष्यामः, वयं पूर्वे इति। त आदित्या एतं पञ्चहोतारमपश्यन्। तं पुरा प्रातरनुवाकादाग्नीध्रेऽजुहवुः। ततो वै ते पूर्वे सुवर्गं लोकमायन्। यः सुवर्गकामः स्यात्, स पञ्चहोतारं पुरा प्रारनुवाकादाग्नीध्रे ऽजुहुयात्। सम्वत्सरो वै पञ्चहोता, सम्वत्सरः, सुवर्गो लोकः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/३/५-६)

यहां ६० वर्षों के चक्र को आङ्गिरस कहा गया है, वृहस्पति ही आङ्गिरस है, अतः यह ज्योतिष का गुरु-वर्ष चक्र है। इसके ५ होता १२ वर्षीय गुरु परिक्रमा-काल है। ५-५ वर्षों के भी १२ युग होते हैं।

**६. सात लोक-** विश्व के ५ पर्वों में ४ मण्डल हैं-चान्द्र मण्डल पृथ्वी का ही प्रभाव-क्षेत्र है। ४ मण्डल और उनके बीच के ३ अन्तरिक्ष-ये ७ लोक कहलाते हैं। ७ लोक ३-३ लोकों में बंटे हुए हैं-बीच के दो लोक दो त्रिलोकियों में हैं। भू मण्डल भू लोक है, वह अपने आकाश सौर मण्डल में है, जो उसका स्वः लोक हुआ। सौर मण्डल रूपी भू-लोक के लिये उसका आकाश परमेष्ठी स्वः हुआ जिसे जनः लोक कहा जाता है। परमेष्ठी रूप भू के लिये स्वयम्भू स्वः हुआ। इस प्रकार इनकी सारणी है-

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | | ४ | | ५ |
| मण्डल- | भू | (चान्द्र) | सौर | | परमेष्ठी | | स्वयम्भू |
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
| लोक | भू | भुवः | स्वः | महः | जनः | तपः | सत्य |
| त्रिलोकी | | रोदसी | | क्रन्दसी | | संयती | |
| समुद्र | | अर्णव | | सरस्वान् | | नभस्वान् | |
| धाम | | अवम | | मध्यम | | परम | |
| देवता | | शिव | | विष्णु | | ब्रह्मा | |
| देवी | | महाकाली | | महालक्ष्मी | | महासरस्वती | |

५ मण्डलों के बाद मनुष्य ६ ठा विश्व है। ७ छोटे विश्व-

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
| विश्व- | कलिल | जीव | कुण्डलिनी | जगत् | देव-दानव | पितर | ऋषि |
| | cell | atom | nucleus | particles | quarks | prototype | string |
| आकार- | $10^{-5}$m, | $10^{-10}$m, | $10^{-15}$m, | $10^{-20}$m, | $10^{-25}$m, | $10^{-30}$m, | $10^{-35}$m |

**टिप्पणी**-(१)-वालाग्र (केश का अग्रभाग) भी एक विश्व है-
अनाद्यन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेक रूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः। (श्वेताश्वतर उ.५/१३)
इसका आकार वालाग्र है-
वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम्। (अथर्वशिर उ.५)

इसी से मनुष्य का जन्म होता है, अतः इसे जातरूप कहा गया है। गर्भ में आते ही यह धातुओं का कलन (collection) आरम्भ करता है, अतः यह कलिल (cell) है-तत्र प्रथमे मासि कललं जायते। (सुश्रुत शारीरस्थान ३/९)
स सर्वगुणवान् गर्भत्वमाप्तः प्रथमे मासि सम्मूर्च्छितः
सर्व धातु कलनीकृतः .....अव्यक्त विग्रहः .....(चरक शारीरस्थान ४/९)
बृहत्संहिता (५६/२) में वालाग्र का आकार दिया है-
परमाणु रजो-वालाग्र-लिक्षा-यूकं यवोऽङ्गुलं चेति अष्ट गुणानि यथोच्चरन् अङ्गुलमेकं भवति संख्या।
अर्थात् अङ्गुल को ८ से भाग देने पर क्रमशः यव, यूक, लिक्षा, वालाग्र होते हैं।
२४ अङ्गुल = हस्त = ४५ से.मी.।
अतः वालाग्र = ४५/(२४ × $८^{४}$)= ४ × $१०^{-४}$ से.मी. = ४ माइक्रोन।
(२) वालाग्र और उससे छोटे विश्व क्रमशः १ लाख भाग छोटे हैं-
वालाग्र शतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।
तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्।। (ध्यानबिन्दु.उप. ४)

छोटे विश्व ऋषि से आम्भ होकर, पितर, देव-दानव होते हैं। दानव से कुछ नहीं होता, देव से जगत् कण ३ प्रकार के हैं-चर (गतिशील हल्के= Lepton), स्थाणु (स्थिर भारी= Baryon), अनुपूर्वशः (आगे-पीछे, जोड़नेवाले = Meson)-
ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देव दानवाः।
देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थण्वनुपूर्वशः।। (मनुस्मृति ३/२०१)
(३) कलिल से छोटा विश्व जीव है, उसका आकार अणु के बराबर है तथा यह कल्प या रासायनिक क्रिया में नष्ट नहीं होता-
वालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।(श्वेताश्वतर उ. ५/९)



(४) कुण्डलिनी का आकार वालाग्र का कोटि भाग है। उसके भीतर दो आवरण क्रमशः १०-१० भाग छोटे हैं। भीतरी आवरण वालाग्र का १०० कोटि भाग या परमाणु की नाभि (nucleus) के बराबर है-
एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वानिर्वाणशक्तिः कोट्यादित्य प्रकाशां त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा। केशाग्रस्यातिगुह्या निरवधि विलसत ...।९।
अत्रास्ते शिशु-सूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तु शतधा भागैकरूपा परा।७।(षट्चक्रनिरूपण,७)
(५) कुण्डलिनी तक की माप होती है। उससे छोटे कण प्रकाश-पदार्थ दोनों रूप में हैं। मापदण्ड का सबसे छोटा रूप वही है अतः उसकी माप नहीं है। किन्तु परमाणु के मूलकण तथा उनके स्रोत क्वार्क का सिद्धान्त और प्रयोग द्वारा ज्ञान है। उससे छोटे दो स्तरों-पितर तथा ऋषि का किसी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं है। अतः इन्हें असत् कहा जाता है। केवल सत् गिनने पर इन विश्वों की शक्ति ५ प्राण हैं, असत् मिलाने पर ७ प्राण हैं-
पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
(श्वेताश्वतर उ. १/५)
सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ।।
(मुण्डक उ.२/१/८)
(६) ऋषि असत् प्राण हैं जिनसे सृष्टि हुयी है। ये श्रम और तप से खींचते हैं, अतः ऋषि (रस्सी) कहलाते हैं-
असद्वाऽइदमग्रऽआसीत्। तदाहुः-किं तदासीदिति। ऋषयो वाव तेऽग्रेऽ सदासीत्। तदाहुः-के ते ऋषय इति। ते यत्पुराऽऽस्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषन्-तस्मादृषयः।(शतपथ ब्रा.६/१/१/१)
(७) मनुष्य के आकार(लम्बाई चौड़ाई का औसत) १.३ मीटर का कोटि गुणा करने पर १३,००० कि.मीटर पृथ्वी का व्यास है। उसका लाख भाग $१०^{-५}$ मी. कलिल या शरीर कोष का आकार है। उसका लाख भाग परमाणु $१०^{-१०}$ मी. तथा परमाणु का लाख भाग उसकी नाभि है। मनुष्य आकार का ७ बार लाख भाग करने पर ऋषि का आकार १.३ × $१०^{-३५}$ मीटर है। इसे क्वाण्टम मेकानिक्स में सबसे छोटी दूरी प्लांक

दूरी कहा जाता है। यह स्ट्रिंग सिद्धान्त के सभी ५ वैकल्पिक वर्णनों का आधार है। ऋषि की परिभाषा तथा माप दोनों आधुनिक मान्यताओं के आधार हैं।

(८) पितर के समान किसी पदार्थ का वर्णन नहीं है। यह बाद की रचनाओं का आधार होने के कारण पितर (Prototype) कहा जा सकता है। इससे देव-दानव हुए जिनमें केवल देव से सृष्टि हुयी। ३३ देव सौर मण्डल के ३३ धामों के प्राण हैं, जिनकी चर्चा बाद में होगी। प्रत्येक क्षेत्र में ३ असुर होने से इनकी संख्या ९९ है। यह तम या बाधक होने से इससे सृष्टि नहीं होती। अतः केवल १ पाद या चतुर्थ भाग से ही पूरा विश्व है, तीन पाद बिना निर्माण के स्थिर (अमृत) हैं-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।३।

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।४। (पुरुष सूक्त, ऋक् १०/९०, वा. यजु. ३१, अथर्व १९/६, साम.६१९, तैत्तिरीय आ. ३/१२)

**७. पुरुष**-पुरुष की सभी परिभाषाओं का सङ्कलन पद्मपुराण में किया गया है। यह श्लोक त्रिदण्डी स्वामी जी ने पुरुष सूक्त की व्याख्या में उद्धृत किया है, पर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित पद्मपुराण में उपलब्ध नहीं है-

**पुं संज्ञे तु शरीरेऽस्मिन् शयनात्पुरुषो हरिः।**
**शकारस्य षकारोऽयं व्यत्ययेन प्रयुज्यते।।**
**यद्वा पुरे शरीरेऽस्मिन्नास्ते स पुरुषो हरिः।**
**यदि वा पुरवासीति पुरुषः प्रोच्यते हरिः।।**
**यदि वा पूर्वमेवासमिहेति पुरुषं विदुः।**
**यदि वा बहुदानाद्वै विष्णुः पुरुष उच्यते।।**
**पूर्णत्वात्पुरुषो विष्णुः पुराणत्वाच्च शार्ङ्गिणः।**
**पुराणभजनाच्चापि विष्णुः पुरुष ईर्यते।।**
**यद्वा पुरुष शब्दोऽयं रूढ्या वक्ति जनार्दनम्।।**

इस मानव शरीर को ही पु कहा जाता है। इसमें हरि शयन करते हैं, अतः वे पुरुष हैं। पु(रु)+शयन में श का ष हो जाता है, अतः यह शब्द पुरुष हो गया है। अथवा, इस पुर या शरीर में हरि का निवास है, अतः वे पुरुष हैं। या, पुर (शरीर या कोई भी रचना, नगर) में हरि का वास होने से वे पुरुष हैं। या वह सबके पूर्व में होने के



कारण पुरुष हैं। अथवा बहुत या सर्वस्व दान के कारण विष्णु को पुरुष कहते हैं। विष्णु पूर्ण (सब कुछ) हैं, या पुराण (पुरा + नवति = पुराण, पुराना ही नया होता है, मूल विष्णु ही जगत् के सभी रूप हैं) हैं, या पुराणों में उनकी ही स्तुति है, अतः वे पुरुष हैं। अथवा रूढि (प्रचलन) के कारण पुरुष का विष्णु के अर्थ में प्रयोग होता है।

पण्डित मधुसूदन ओझा ने अपने ब्रह्मसिद्धान्त (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६३) में पुरुष शब्द की ७ प्रकार से व्युत्पत्ति की है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद के साथ राजस्थान पत्रिका प्रकाशन जयपुर से प्रकाशन हुआ है। इसके श्लोक (११/१७२-१७४) हैं-

**पुरु व्यवस्यन् पुरुधा स्यति स्वतस्ततः स उक्तः पुरुषश्च पूरुषः।**
**पुरा स रुष्यत्यथ पूर्षु रुष्यते स पूरुषो वा पुरुषस्तदुच्यते।।**
**धी प्राणभूतस्य पुरे स्थितस्य सर्वस्य सर्वानपि पाप्मनः खे।**
**यत्सर्वतोऽस्मादपि पूर्व औषत् स पूरुषस्तेन मतोऽयमात्मा।।**
**स व्यक्तभूते वसति प्रभूते शरीरभूते पुरुषस्ततोऽसौ।**
**पुरे निवासाद्दहरादिके वा वसत्ययं ब्रह्मपुरे ततोऽपि।।**

पुरुष शब्द की वैदिक निरुक्तियां हैं-(१) पुरुधा + स्यति = सर्वप्रथम है तथा सृष्टि क्रिया में लिप्त है। षो धातु का अर्थ है व्यवसाय करना। इसमें वि तथा अव् उपसर्ग लगने से स्यति होता है। यह पुरुष या पूरुष भी कहा जाता है। (२) पुरुधा = स्यति = पुरुष-अर्थात् वह स्वयं कई रूपों का हो जाता है। (३) पुरा + रुष्यति = पुरुष। रुष = मारना, नष्य करना, क्रोध करना। अनन्त रस को सीमा के भीतर करना इसको मारना है। सृष्टि इसी प्रक्रिया से होती है। (५) पुरु + रुष्यते = यह पुरों को अपने भीतर घेरता है, अतः यह पुर + रुष = पुरुष हुआ। (५) पुरा + औषत् = यह अपने भीतर माया का आवरण नष्ट करता है। (६) पुरे + वसति = पुरुष (व का उ हो जाता है), अर्थात् यह पुर में निवास करता है। यह सबसे प्रचलित निरुक्ति है। (७) पुर दृश्य जगत् है, तथा रस भी (विश्व का मूल समरूप पदार्थ) है। यह ब्रह्म का पुर या स्थान है। चेतना का निवास दहर है। यह विन्दु मात्र या विस्तृत आकाश भी हो सकता है।

**८. पूरुष**-सामान्यतः पुरुष अर्थ में ही पूरुष शब्द का भी व्यवहार किया गया है। इनका भेद कहीं भी वर्णित नहीं है। पर पुरुष सूक्त तथा गीता में २-२ स्थानों पर दीर्घ पूरुष का प्रयोग है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।२।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।३।

वर्तमान, भूत, या भविष्य में जो कुछ भी विश्व था वह सब पुरुष है-अर्थात् सभी प्रकार के पुरों के भीतर का तत्त्व। सभी पुर इसकी महिमा हैं, किन्तु पूरुष इससे भी बड़ा है। उसका १ ही पाद विश्व बनाने में लगता है। बाकी ३ पादों का प्रयोग नहीं होता, वह भाग ज्यायान् है, अर्थात् वाराणसी की भाषा भोजपुरी में बेकार (जियान) है। सभी ४ पाद मिलाकर पूरुष हैं-यह बड़ा है अतः दीर्घ स्वर का प्रयोग है।

ततो विराडजायत, विराजो अधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।५।

दृश्य जगत् के जो रूप हैं, उन्हें विराट् कहा जाता है। उनका अधिष्ठाता (आधारभूत) उससे बड़ा है, अतः यहां दीर्घ का प्रयोग है-अधि-पूरुष। अगली पंक्ति में अत्यरिच्यत का भी अर्थ है कि वह विराट् से कुछ अधिक है।

गीता में कर्मयोग नामक तीसरे अध्याय में इसके २ प्रयोग हैं। पुरुष के साथ जब कर्म या उसका फल जुट जाता है, वह दीर्घ स्वर का पूरुष होता है-

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः। (३/१९)
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। (३/३६)

इसी प्रकार का के प्रयोग हैं-

(1) **भूमि-भूमा**-एक सीमा में बद्ध पिण्ड भूमि है। यह मनुष्य का शरीर, पृथ्वी ग्रह, सौर पृथिवी या ब्रह्माण्ड भी हो सकता है। इस पिण्ड का प्रभाव-क्षेत्र **भूमा** है, वह भूमि सीमा से बाहर आकाश में फैला हुआ है।

स भूमिं विश्वतो वृत्त्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् (पुरुष सूक्त १)

अर्थात् सीमाबद्ध भूमि से १० गुणा बड़ा पुरुष है।

श्रीर्वै भूमा (शतपथ ब्राह्मण ३/१/१/१२)
पुष्टिर्वै भूमा (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/८/३)
भूमा वै सहस्रम् (शतपथ ब्राह्मण ३/३/३/८)

(२) **ईश-ईशा**-हृदय के केन्द्र में स्थित होकर पूरी व्यवस्था का नियन्त्रण करने वाला ईश या ईश्वर है। हृदय के अर्थ है कार्य का केन्द्र स्थान। इसके ३ प्रकार के कार्य हैं।



हृ = आहरण या ग्रहण करना। द = ददाति, देना। य = यम-नियन्त्रण, चक्रीय क्रम में कार्य या उत्पादक यज्ञ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। (गीता १८/६१)

जैसे माया-यन्त्र (रोबोट) को उसके भीतर का यन्त्र चलाता है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के हृदय में स्थित होकर ईश्वर उनको चलाता है।

तदेतत् त्र्यक्षरँ हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये य एवं वेद अमित्येकक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद। (शतपथ ब्राह्मण १४/८/४/१)

यज्ञ उत्पादक कर्म है जो चक्र में होता है-

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः अनेन प्रसविष्टध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक्।
एवं प्रवर्तित चक्रं नानुवर्तयतीह यः (गीता ३/१०, १६)

विश्व के सभी हृदयों में जो स्थित है वह **ईशा** है-

ईशावास्यमिदं सर्वम् (ईशावास्योपनिषद् १)

**९. चतुष्पाद पुरुष**-हमारा संसार की प्रत्येक वस्तु का ज्ञान ४ रूपों में है, जिसे चतुष्पाद पुरुष कहते हैं-

(१) **क्षर पुरुष**-सभी पिण्डों का बाहरी स्वरूप धीरे धीरे नष्ट होता रहता है, उसे क्षर पुरुष कहते हैं। क्षरण =नष्ट होना।

(२) **अक्षर पुरुष**-हर क्षण पिण्ड का कुछ भाग नष्ट होने पर भी उसका कार्य रूप में परिचय बना रहता है जब तक वह वस्तु बनी रहती है। यह छिपा रहता है अतः इसे कूटस्थ कहते हैं। कूट का अर्थ पर्वत की चोटी भी है, जिससे पर्वत का नाम या परिचय होता है। अतः पिण्ड या व्यक्ति का नाम रूप में परिचय अपेक्षाकृत स्थायी है। यही अक्षर पुरुष है।

(३) **अव्यय पुरुष**-किसी व्यक्ति या पिण्ड का निर्माण, विकास, क्षय या विनाश यदि परिवेश के भीतर देखें तो कुछ भी अन्तर नहीं होता। पिण्ड में जो बढ़ता है वह बाहर कम हो जाता है। पिण्ड में जो कम होता है उतना बाहर बढ़ जाता है। कुल मिलाकर कुछ भी व्यय नहीं होता है। अतः परिवेश के अंश रूप में हर पिण्ड अव्यय पुरुष है। किसी पिण्ड के परिवर्तन का क्रम भी अव्यय है जिसे विपरीत वृक्ष के रूप में अव्यय

कहा गया है। इसमें छन्द या सीमा बद्ध पदार्थ पत्ते के समान क्षणभङ्गुर है-
ऊर्ध्वमूलमध: शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।
(गीता १५/१, योगशिखोपनिषद् ६/१४)

(४) **परात्पर पुरुष**-मूल स्तर पर किसी पिण्ड या ब्रह्माण्ड में कोई भेद नहीं है। यह अवस्था परात्पर पुरुष है। इसमें भेद नहीं होने से इसका कोई वर्णन नहीं है।

अन्य ३ की परिभाषा गीता (१५/१५-१७) में है-

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तम: पुरुषस्त्वन्य: परमात्मेत्युदाहृत:। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर:।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम:। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:।।

= संसार में २ प्रकार के पुरुष हैं-क्षर तथा अक्षर। सभी भूत क्षर हैं तथा उनका छिपा हुआ परिचय अक्षर है। सर्वोच्च पुरुष अलग है तथा उसे परमात्मा कहते हैं, जो ३ लोकों में प्रवेश कर उनका भरण करता है। वह अव्यय (नष्ट नहीं होने वाला) तथा ईश्वर (सबका नियन्ता) है। क्षर से परे तथा अक्षर से भी उत्तम होने के कारण मैं (श्रीकृष्ण भगवान्) लोक (साहित्य) तथा वेद (विज्ञान) दोनों में पुरुषोत्तम के रूप में प्रथित हूँ।

स्थूल रूप का ज्ञान होने के बाद क्रमश: उसके सूक्ष्म ३ स्तरों का ज्ञान होता है-
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। (पुरुष सूक्त २)

कुछ उदाहरण-

(१) **मनुष्य**- (क) क्षर-मनुष्य का बाहरी रूप प्रति क्षण बदलता है, यह क्षर पुरुष है। यहां पुरुष का अर्थ स्त्री भी है।

(२) अक्षर-प्रति क्षण बदलने पर भी हम अपने को जन्म से मरण तक वही व्यक्ति मानते हैं। दूसरों के लिये भी हमारा नाम रूप में वही परिचय बना रहता है।

(ग) अव्यय-यह कई रूपों में देखा जा सकता है। जन्म से लेकर मरण तक हमारा परिवर्तन का क्रम अव्यय है क्योंकि परिवेश के अङ्ग के रूप में उसमें कोई अन्तर नहीं होता। हमारे इस जन्म का परिचय अक्षर है, सभी जन्मों का परिचय अव्यय है। आकाश में पदार्थ का विस्तार समुद्र है, उसमें स्थानीय उपलब्ध पदार्थ दारु (काठ) का टुकड़ा है, जिससे पिण्ड का निर्माण होता है। सभी भूतों के स्वरूप जगन्नाथ भी इसी कारण दारु ब्रह्म हैं-



अदो यद्दारु प्लवते सिन्धो: पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो येन गच्छ परस्तरम्। (ऋक् १०/१५५/३)

(घ) परात्पर-जिस स्तर पर मनुष्य, पशु, निर्जीव या आकाश में कोई अन्तर नहीं है, वह परात्पर है, क्योंकि वह सभी वर्णनों से परे है। या अव्यय पुरुष क्षर-अक्षर के परे होने के कारण पर है। उससे भी परे होने के कारण यह परात्पर है।

(२) **वृक्ष**-(क) क्षर-वृक्ष की रचना क्षर पुरुष है।

(ख) अक्षर-जन्म से मरण तक वृक्ष की स्थिति अक्षर पुरुष है।

(ग) अव्यय-परिवेश से जल, वायु तथा मिट्टी के तत्त्व ग्रहण करना तथा पत्ता, फल-फूल, काठ आदि का उत्पादन अव्यय पुरुष है।

(घ) परात्पर-यह सभी के लिये समान या भेदरहित है।

(३) **नदी**-(क) क्षर-नदी की धारा तथा जल। धारा की दिशा तथा जल की मात्रा हमेशा घटती बढ़ती रहती है।

(ख) अक्षर-नदी की धारा बदले या जल बिलकुल सूख जाय, उस नदी का नाम वही रहता है।

(ग) अव्यय-समुद्र से वर्षा, वर्षा का जल जमीन के विभिन्न स्रोतों से होकर नदी में मिलना, तथा नदी का समुद में मिलना-यह चक्र अव्यय पुरुष है।

(घ) परात्पर-सभी के लिये एक ही है।

**१०. पुरुष के रूप**-समान्यत: पुर के भीतर रहनेवाला पुरुष है। उसका बड़ा रूप उसके बाहर भी वर्तमान है, जो उसका अधिष्ठान कहा गया है। इसमें दीर्घ स्वर के साथ पूरुष शब्द का प्रयोग है। विश्व की प्रत्येक रचना स्तर के लिये एक पुरुष रूप हैं। उनमें भी क्रिया अनुसार इनके कई भेद हैं। पण्डित मधुसूदन ओझा तथा उनके शिष्य पं मोतीलाल शास्त्री जी ने आत्मा तथा आत्मगति की अपनी पुस्तकों में इनका विस्तार से वर्णन किया है। इसका सारांश श्री ए एस. रामनाथन की पुस्तक-Vedic Concept of Atma-में है। यहां उनका संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है।

आत्मा के प्रकट होने के ५ मुख्य स्तर हैं-१. अखण्ड-यह अव्यक्त है तथा सभी विन्दुओं पर एक है। २. परात्पर-यह भी कल्पना से परे है, किन्तु हर विन्दु पर अलग अलग है। ३. षोडशी पुरुष-यह पुरुष के ४ रूपों क्षर, अक्षर, अव्यय, परात्पर के १६ कलाओं (अंश) वाला है। ४. यज्ञ पुरुष-यह नये रूपों का निर्माण करता है, जो उसे चलाने के लये जरूरी हैं। ५. विराट् पुरुष-दृश्य जगत्। इसके २ रूप हैं-ईश्वर प्रजापति

(सर्वव्यापी ब्रह्म का कर्त्ता रूप), तथा जीव (व्यक्ति) जो किसी एक पिण्ड में है तथा आत्मा का ही कर्त्ता रूप है। प्रत्येक के १५ रूप हैं, जिनका निर्देश सारणी में किया गया है।

अमृत आत्मा

| प्राण | अप् | वाक् | अन्न | अन्नाद |
|---|---|---|---|---|
| अव्यक्त | यज्ञ | विज्ञान | महान् | शरीर |
| (अरूप) | (उत्पादक) | (बुद्धि) | (पदार्थ) | (पिण्ड) |
| स्वयम्भू | परमेष्ठी | सौर | चान्द्र | पृथिवी |
| १. अन्तर्यामी | १. चिदात्मा | १. विज्ञान | १. आकृति | १. शरीर |
| २. सूत्र | २. यज्ञ | २. दैव | २. प्रकृति | २. हंस |
| ३. वेद | --- | ---- | ३. अहंकृति | ३.वैश्वानर |
| --- | --- | ---- | ---- | ४. तैजस |
| --- | --- | --- | ---- | ५. प्राज्ञ |

परात्पर ब्रह्म को रस (द्रव के समान समरूप पदार्थ) कहा गया है, जो अविभाज्य है। इसके भीतर स्पन्दन या कम्पन होते रहते हैं, जिन्हें बल कहा जाता है। बल के विभिन्न स्तरों के कारण इनके ३-३ के ३ वर्ग हैं-

१. अमृत-१. शान्ति-बल की सुप्त या निष्क्रिय अवस्था।

२. तृप्ति-स्वप्न के समान। यहां रस तथा बल दोनों समान हैं।

३. प्रसाद (कृपा)-जाग्रत अवस्था-रस के साथ बल भी दीखता है।

२. अमृत-मृत्यु (विश्व के १६ खण्ड)

१. माया (सीमा भाव)-आलम्बन या आधार-पुरुष

२. कला-(मात्रा के स्तर)-स्थान-मूल प्रकृति।

३. गुण (क्रिया या प्रभाव)-विभक्त प्रकृति-अलग अलग स्थानों पर।

३. मृत्यु-(विश्व की १६ प्रतिमायें)-



१. विकार-२ पिण्डों के बीच सम्बन्ध का कारण, कमी की पूर्त्ति।

२. अञ्जन-(रंग, दृश्य भेद)-बन्धन-पुरञ्जन-विराट् प्रजापति।

३. आवरण (सीमा)-सुप्त स्थिति-पुर-विश्व प्रजापति।

प्रथम ३ रूपों का अनुभव नहीं हो सकता। अन्तिम २ वर्गों के ६ रूप परिवर्त्तन के ६ स्तर हैं। सभी ६ बल ६ प्रकार के परिग्रह (अवारण में बन्द करने वाले) हैं।

**१. माया** २ प्रकार की है-मात्रा-बल (परिमाण का भेद) अनन्त प्रकार का है। कोषबल १६ प्रकार का है, जो वस्तुओं को अलग अलग करता है-१. विद्या-माया से मुक्ति देता है। अन्य १५ प्रकार बन्धन देते हैं। २. माया-सीमा उत्पन्न करने वाला। ३. जाया-उत्पन्न करने वाला। ४. धारा-सतत् परिवर्तन का क्रम। ५. आप्-जल के समान फैले पदार्थ द्वारा मिश्रण। ६. हृदय-सीमा के भीतर आदान-प्रदान का चक्र। ७. भूति-वृद्धि के लिये ५ पदार्थ-वित्त, पशु, प्रजा, गोत्र, वेद। ८. यज्ञ-भोक्ता (अन्नाद) तथा अन्न (भोग) का सम्बन्ध। ९. सूत्र-बलों के बीच सम्बन्ध। १०. सत्य-नाम, रूप, कर्म। ११. यक्ष-रूप का परिवर्त्तन। १२. अभ्व-अव्यक्त का व्यक्त में परिवर्तन। १३. मोह-असत् का स्थिति के रूप में आभास। १४. वय-कणों से पिण्ड का निर्माण। १५. वयोनाध-सीमा के भीतर समेटना। १६. वयुन-वयन की क्रिया।

**माया के स्तर**-महामाया-महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणी।..
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्। ....
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। (दुर्गा सप्तशती १/५४-५६)

यह विश्व निर्माण का मूल स्तर है। इसमें अलग अलग वस्तुओं का समन्वय योगमाया या विष्णुमाया से होता है-

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ((दुर्गा सप्तशती ५/१४)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।(गीता ७/२५)

इन्द्र या शिव माया से विश्व के रूप बने रहते हैं-

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश। (ऋक् ६/४७/१८)

**जाया, धारा, आप्**-अभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि, जनयिष्यामि, आप्स्यामि, तद् धारा-जाया-आपः-अभवत्। तद्धाराणां, जायानां, अपां-धारात्त्वं, जायात्त्वं, अप्त्वम्। (गोपथ ब्राह्मण पूर्व १/२/९-११)

**हृदय**-तदेतत् त्र्यक्षरँ हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्तयस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद। (शतपथ ब्राह्मण १४/८/४/१)

**भूति**-(प्राण) प्राणं वा अनु प्रजा पशवो भवन्ति। (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण २/४/७)। प्रजा वै भूतानि। (शतपथ ब्राह्मण २/४/२/१, ३/५/२/१३, ४/५/३/१)

**यज्ञ**-यज्ञो वै भुज्युः। (यजु १८/४२) यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति। (शतपथ ब्राह्मण ९/४/१/११)।

पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धाने मुखमाहवनीय उदरं सदः, अन्नमुक्थानि, मार्जालीयश्चाऽऽग्नीध्रीयश्च या समा देवतास्ते अन्तःसदसं धिष्ण्या प्रतिष्ठा गार्हपत्यव्रतश्रवणाविति। (कौषीतकि ब्राह्मण १७/७, गोपथ उत्तर ५/४)

**सत्य**-तदेतत् त्रयं सदेकमयमात्मा। आत्मा उ एकः सन्नेतत् त्रयम्। तदेतदमृतं सत्येन च्छन्नम्। प्राणो वा अमृतम्। नामरूपे सत्यम्। ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः। (शतपथ ब्राह्मण १४/५/१/३)

**सूत्र**-वायुर्वै गौतम! तत् सूत्रम्। वायुना वै गौतम! सूत्रेणायं च लोकः, परश्च लोकः, सर्वाणि भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति।

**२. कला**-बड़े छोटे का क्रम, वर्गीकरण।

**३.गुण**-तीन प्रकार की स्थिति-सत्य-एक सीमा के भीतर। रज-गति, तम-निष्क्रिय।

**४. विकार**-अणुओं में पविर्तन, यज्ञ द्वारा निर्माण।

**५. अञ्जन**-यह ३ प्रकार का है-विभूति-सत्व गुण का परिणाम। रजोगुण का परिणाम पाप्मा। तमोगुण का परिणाम-आवरण। इससे विराट् या दृश्य जगत् बनता है जो २ प्रकार का है-विश्व तथा व्यक्ति रूपों में।

**६. आवरण**-प्रति विश्व या व्यक्ति का रूप एक आवरण में छिपा है, उसकी रचना पुर है। यह विश्व प्रजापति है।

**मधुसूदन ओझा** के ब्रह्म विज्ञान-निर्विशेष अनुवाक् से-

अनेककरणी माया-मित्यानेकत्वसम्भवः। अवान्तरव्यवच्छेदादेको नानात्वमश्नुते।।
जन्मप्रदायिनी जाया सत्तान्वितबले बलम्।
निचाय्य धत्ते सत्तायां कृत्व सत्ता प्रदात् पृथक्।।
प्रवाहकारिणी धारा सन्तानयति गच्छतः। गति-स्थित्योः समं योगं या प्रयोजयतेऽद्भुतम्।



ऋतमापो बलात् सिद्धं, सत्यं हृदयतो बलात्। द्विधैवेदं जगत् सर्वं ऋतं वा सत्यमेव वा।।
वित्तं पशुः प्रजा गात्रं वेदा एभिर्हि पञ्चभिः। अभिवृद्धि-भूति बलात् गात्रवृद्धिर्द्रुमाङ्कुरः।
भोक्तारमभि भोग्यार्थोपसत्ति-र्यज्ञ मूलिका।
स्थिरे भोग्ये तु या भोक्तुराक्रान्तिः सूत्र-मस्ति तत्।।
वाचः प्राणस्य मनसो नाम्नि रूपे च कर्म्मणि।
अभियोगोऽस्ति तत् सत्यं यक्षं रूपादि भक्तयः।
बलानामसतामेषां मृत्यूनाममृते रसे। अपृथक्त्वमभेदो यस्त-दभ्व बलदर्शनम्।
अभावो भाववद् भाति मिथ्यार्थे सत्यताग्रहः। सोऽध्यासो-मोह एकत्वं यदत्यन्तविरुद्धयोः।
ज्ञाने विषयसंसर्गो विषयाकारिताधियः। वयुनं विषयाणां वा धिया त्यागपरिग्रहौ।
द्रव्याणि गुणकर्म्माणि मात्रावन्ति विभान्ति नः।
तद् वयो याश्च तन्मात्राः स वयोनाध इष्यते।
इत्थं पञ्चदशैतानि बलान्यन्योऽन्यमीरते। अविद्यैषा पञ्चदशी विद्या तत् प्रतिबन्धना।

१. माया परिग्रह-मायी महेश्वर | महेश्वर
२. कला परिग्रह-सकल षोडशी |
३. गुण परिग्रह-सगुण सत्य -विश्वेश्वर
४. विकार परिग्रह-सविकार यज्ञ-उपेश्वर
५. अञ्जन परिग्रह-साञ्जन विराट् |
६. आवरण परिग्रह-सावरण विश्व | -ईश्वर

कला वर्णन-५ पर्व हैं-स्वयम्भू (सम्पूर्ण जगत्), परमेष्ठी (ब्रह्माण्ड या आकाशगङ्गा), सौर मण्डल, चान्द्र मण्डल, भूमण्डल।

**आत्मक्षर कला**-

१. ५ पर्वों के ब्रह्मा-विश्वसृट्, पितामह, हिरण्यगर्भ, निधन, पद्मभू।
२. सभी के विष्णु-स्वयम्भू, गोसव, नारायण, कृष्ण, वामन।
३. सभी के इन्द्र-वाचस्पति, अर्जुन, मघवा, वृत्रहा, वासव।
४. पांचों के ग्नि-सत्याग्नि, ऋताग्नि, देवाग्नि, पश्वग्नि, अन्नादाग्नि।
५. पांचों के सोम-प्राण, भृगु, ग्रह, अन्न, ओषधि।

**विकार क्षर कला**-१. पांचों के प्राण-ऋषि, पितर, देव, गन्धर्व, पशु।
२. पांचों के आप-प्राण, अम्भ, मरीचि, आप, मर।

३. पांचों की वाक्-सत्या, आम्भृणी, बृहती, सुब्रह्मण्या, अनुष्टुप्।

४. पांचों के अन्न-अर्क, वाज, ग्रह, राजा, हवि।

५. पांचों के अन्नाद-विश्वभुक्, पलितवाम, सम्वत्सर, स्वधाभुक्, पशुभुक्।

**पुरञ्जन कला**-

१. पांचों के वेद-ब्रह्मनिःश्वसित, ब्रह्मस्वेद, गायत्रीमात्रिक, अथर्व, यज्ञमात्रिक।

२. पांचों के लोक-अशोकमहिम, कामलोक, देवलोक, पितृलोक, मनुष्य लोक।

३. पांचों के देव-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम, अग्नि।

४. पांचों के पशु-पुरुष, अश्व, गौ, अवि, अज।

५. पांचों के भूत-आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी।

**११. ईश्वर प्रजापति**-इसकी १६ विशेष कला विभूतियां हैं-

चतुष्पाद ब्रह्म का वाचक ॐ = अर्द्धमात्रा (विन्दु) + अ + उ + म।

परात्पर = अर्द्धमात्रा-निष्कल परात्पर पुरुष

| | | |
|---|---|---|
| २. पञ्चकल अव्यय - | १. आनन्द -रस रूप (सुप्त बल) | ज्ञानात्मा |
| (अकार) | २. विज्ञान -रस + सहचर बल | |
| (पुरुष) | ३. मन -रस + बल चिति | कामात्मा |
| | ४. प्राण = बल चिति (जाग्रत रस) | कर्मात्मा |
| | ५. वाक् -बल चिति (सुप्त रस) | |
| ३. पञ्चकल अक्षर- | १. ब्रह्मा-गति समष्टि गति | |
| (उकार) | २. विष्णु-विशुद्ध आगति | अन्तर्यामी |
| (अमृत) | ३. इन्द्र-विशुद्ध गति | |
| परा प्रकृति | ४. सोम-स्थिति गर्भ में आगति | सूत्रात्मा |
| | ५. अग्नि-स्थिति गर्भ में गति | |
| ४. पञ्चकल क्षर- | १. मर्त्य ब्रह्मा-प्रतिष्ठा | |
| (मकार) | २. मर्त्य विष्णु-आशनाया | विश्वाधार |
| अपरा प्रकृति | ३. मर्त्य इन्द्र-विक्षेप | |
| | ४. मर्त्य सोम-संकोच | विश्वम्भर |
| | ५. मर्त्य अग्नि-विकास | |

मर्त्य ब्रह्मा आदि पिण्ड रूप हैं, वह छन्द में सीमित रहते हैं तथा वृक्ष के पत्तों के



समान नाशवान् हैं। अमृत ब्रह्मा आदि क्रिया रूप हैं। ये क्रियायें सदा चलती रहती हैं तथा इन रूपों को अविनाशी अश्वत्थ कहा जाता है।

**१२. गुण परिग्रह**-महामाया मायातीता हैं। ३ गुणों से प्रकृति की क्रिया चलती रहती है। क्रिया रूप में प्रकृति सृष्टि स्थायी या अविनाशी है। वह अविनाशी अश्वत्थ अक्षर कहा जाता है। पिण्ड रूप में विश्व उत्पन्न या नष्ट होता है-वह क्षर ब्रह्म है। गुणों द्वारा क्रियात्मक विभाजन से हृदय तथा शरीर युक्त सत्य प्रजापति होता है।

सत्य = हृदय + शरीर के साथ

ऋत = बिना हृदय, शरीर फैला हुआ, अकर्मण्य।

ऋत-सत्य = हृदय या शरीर में एक।

गुणों से वेदत्रयी होते हैं, अतः सत्य प्रजापति को वेद प्रजापति भी कहते हैं। इसके आधार अव्यय पुरुष को सत्य का सत्य कहते हैं।

**१३. विकार परिग्रह**-व्यक्तिगत पिण्डों में परिवर्तन क्षर ब्रह्म है। पिण्डों का नाम-रूप-क्रिया का विनाश मृत्यु है। उनका नये पिण्डों में परिवर्तन को जन्म या सृष्टि कहा जाता है। अतः क्षर ब्रह्म को ही यज्ञ प्रजापति कहा जाता है। यज्ञ का सञ्चालन केन्द्र हृदय है, जिससे ३ क्रियायें होती हैं-हृ (विष्णु) = आहरण या लेना, द (इन्द्र) = देना, य (ब्रह्मा) = यम या नियमन, आधार। इनसे त्रयी विद्या द्वारा ही यज्ञ प्रजापति का जन्म होता है।

**षोडशी सर्ग**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अव्यय | पुरुष | कला सर्ग | भाव सृष्टि | सत्यस्य सत्य प्रजापति |
| अक्षर | परा प्रकृति | गुण सर्ग | गुण सृष्टि | सत्य प्रजापति |
| क्षर | अपरा प्रकृति | विकार सर्ग | क्षर सृष्टि | यज्ञ प्रजापति |

| **सत्य प्रजापति** | **गुण** | **यज्ञ प्रजापति** | **विकार** |
|---|---|---|---|
| १. अमृत ब्रह्मा | सत्त्व | १. मर्त्य ब्रह्मा | प्राण |
| २. अमृत विष्णु | रज | २. मर्त्य विष्णु | अप् |
| ३. अमृत इन्द्र | | ३. मर्त्य इन्द्र | वाक् |
| ३. अमृत इन्द्र | | ३. मर्त्य इन्द्र | वाक् |
| ४. अमृत सोम | तम | ४. मर्त्य सोम | अन्न |
| ५. अमृत अग्नि | | ५. मर्त्य अग्नि | अन्नाद |

विकार सृष्टि

| विकार | तन्मात्रा | महाभूत |
|---|---|---|
| प्राण | शब्द | आकाश |
| अप् | स्पर्श | वायु |
| वाक् | रूप | तेज |
| अन्न | रस | जल |
| अन्नाद | गन्ध | पृथिवी |

**१४. अञ्जन परिग्रह**-विकारों से उत्पन्न आवरण स्थूल भाव उत्पन्न करते हैं, यह भौतिक विराट् जगत् है। सभी भूतों की अन्तरात्मा विराट् पुरुष है। यह आवरण के २ स्तर हैं जो प्रकाश को पूरी तरह नहीं रोकते हैं। अतः भूतों का बाह्य जगत् से सम्बन्ध बना रहता है। विभूति प्रकाश को थोड़ा बदलकर या रंग (अञ्जन या रञ्जन) कर बाहर जाने देता है। पाप्मा प्रकाश को कुछ कम कर मलिन कर देता है।

**१५. आवरण परिग्रह**-प्रकाश को पूरी तरह रोकनेवाला आवरण विश्व का अन्तिम रूप प्रकट करता है, जिसमें सभी भूत अलग अलग हैं। उनका पुरुष रूप वैश्वानर पुरुष है।

विभूति - अञ्जन - स्वच्छ आवरण - ईश्वर (अव्यय रूप)
पाप्मा - अञ्जन - मलिन - जीव (अक्षर का रूप)
आवरण - आवरण - घन आवरण - जगत् (क्षर का रूप,शरीर)
विभूति-लोक, वेद, देव, भूत, पशु (५)
पाप्मा-पर्य्याय, उर्मि, आशय, अवस्था, क्लेश, कर्म, विपाक (७)
उर्मि-क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, व्याधि।
आशय-भावना, वासना।
अवस्था-जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मोह, मूर्च्छा, मृत्यु।
क्लेष (५)- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश।
कर्म (६) - विद्या प्रवृत्ति-यज्ञ, तन, दान।
सत्कर्म-इष्ट, आपूर्त्त, दत्त।
असत्कर्म-सुरापान, छल,चोरी आदि निषिद्ध कर्म।
अकर्म-हाथ-पैर हिलाना, हास्य, तृण तोड़ना आदि बेकार काम।



निष्काम-बुद्धियोग रूप कर्म।
सहज कर्म-कालक्रम के अनुसार कर्म।
विपाक-जाति, आयु, भोग।
सभी पर्य्याय जीवों को बान्धते हैं, ईश्वर उनसे मुक्त है।
आवरण ३ हैं-सत्त्व, रज, तम।
१६. पुरुषों की तालिका-

| | |
|---|---|
| १. महेश्वर | १. माया- मायी महेश्वर |
| | २. कला-सकल षोडशी |
| २. विश्वेश्वर | ३. गुण- सगुण सत्य |
| ३. उपेश्वर | ४. विकार-सविकार यज्ञ |
| ४. ईश्वर | ५. अञ्जन-साञ्जन विराट् |
| | ६. आवरण-सावरण विश्व |

**१६. पुरुषों की तालिका-**

विश्वातीत - परात्पर -अमायी
परात्पर पुरुष - मायी

| निष्कल | अव्यय | अक्षर | आत्मक्षर | विकार क्षर विश्वसृट् | पञ्चजन | पुरञ्जन पञ्चीकृत | पुर |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | आनन्द | ब्रह्मा (अमृत) | ब्रह्मा मर्त्य | विशुद्ध प्राण | पञ्चीकृत प्राण | वेद | आकाश |
| | विज्ञान | विष्णु !! | विष्णु !! | !! आप् | !! आप् | लोक | वायु |
| | मन | इन्द्र !! | इन्द्र !! | !! वाक् | !! वाक् | देव | तेज |
| | प्राण | सोम !! | सोम !! | !! अन्न | !! अन्न | पशु | जल |
| | वाक् | अग्नि !! | अग्नि !! | !! अन्नाद | !! अन्नाद | भूत | पृथिवी |
| | पुरुष | अव्यक्त !! | !! महान् | तन्मात्रा (गुण भूत) | विकार (अणु भूत) | वैकारिक (क्षर भूत) | जगत् (महाभूत) |
| परात्पर महेश्वर प्रजापति | षोडशी | प्रजापति | | सत्य प्रजापति | यज्ञ प्रजापति | विराट् प्रजापति | विश्व प्रजापति |

**विराट् पुरुष में ईश्वर तथा जीव संस्थायें**

| **पर्व** | **साक्षी ईश्वर** | **भोक्ता जीव (प्रवर्ग्य भाग)** |
|---|---|---|
| -निष्कल | गूढोत्मा (ईश्वर व्यय) | १. गूढोत्मा (जीव-अव्यय) |
| -अव्यक्त | अव्यक्त | २. अव्यक्तात्मा |
| १. स्वयम्भू (४९ अहर्गण+) | चिदात्मा | ३. शान्तात्मा |
| २. परमेष्ठी (४८ स्तोम) | हिरण्यगर्भ आत्मा | ४. महानात्मा |
| ३. सौर (३३ स्तोम) | सर्वज्ञ आत्मा | ५. विज्ञानात्मा |
| ४. चान्द्र (१५ स्तोम) | महानात्मा | ६. प्रज्ञानात्मा |
| ५. भू महिमा-२१ स्तोम-सर्वज्ञात्मा | | ७. प्राज्ञात्मा |
| | १५ स्तोम-हिरण्यगर्भात्मा | ८. तैजसात्मा |
| | ९ स्तोम-विराट् आत्मा | ९. वैश्वानर आत्मा |
| | भू वायु- वराह आत्मा | १०. हंसात्मा |
| | भू पिण्ड- चित्यामा | ११. भूतात्मा |

शान्तात्मा-१. अन्तर्यामी, २. सूत्रात्मा,३. वेदात्मा, ४. चिदात्मा।
महानात्मा (परमेष्ठी)-१. आकृति,२. प्रकृति, ३. अहङ्कृति, ४. यज्ञ।
विज्ञानात्मा (सौर)-१. विज्ञानात्मा, २. दैवात्मा।
मायी परात्मपर पुरुष को मिलाकर १९ आत्मा हैं। भूतात्मा पृथ्वी का भाग है। उसे कर्मात्मा कहते हैं, क्योंकि कर्मों के अनुसार उसकी गति होती है। कर्मात्मा या अन्तरात्मा भू महिमा के स्तरों के अनुसार ५ प्रकार की है--
प्राज्ञ, तैजस, वैश्वानर, हंस, भूत।

**१७. पुरुषों के नाम**-सभी पुरुष रूपों के एक एक उदाहरण दिये जाते हैं-

**०. अखण्ड परात्पर**-कल्पना से परे, अविभक्त-

१. सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। (छान्दोग्य उपनिषद् ६/२/१)
यह सदा सोम के साथ था, एक ही था, कोई द्वितीय नहीं था।

२. यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्। (केनोपनिषद् २/३)
जो व्यक्ति कहता है कि वह ब्रह्म को नहीं जानता वह सही कह रहा है। ब्रह्म ज्ञान का गर्व करने वाला कुछ नहीं जानता। अज्ञेय का ज्ञान उसी को है जो ज्ञान का दावा नहीं करता।



३. संविदन्ति न यं वेदा विष्णुर्वेद न वा विधिः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।। (तैत्तिरीय उप.२/४,९)
उसे न वेद जानते, हैं न ब्रह्मा या विष्णु। वाक् भी वहां जा कर बिना उसे पाये लौट आती है।

**०. परात्पर**-यह माया के साथ है-
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्। (मुण्डकोपनिषत् ३/२/८)
जैसे नदियां समुद्र में मिलकर अपना नाम-रूप खो देती हैं, उसी प्रकार विद्वान् ब्रह्म को पाने के बाद अपने (नाम-रूप) को खो देता है।

**१. गूढोत्मा**-सबके भीतर छिपा हुआ-
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। (कठोपनिषत् १/३/१२)
यह सभी भूतों में (माया के कारण) छिपा हुआ है। केवल सूक्ष्मदर्शी इसे सूक्ष्म बुद्धि से देख पाते हैं।

**२. अव्यक्त आत्मा**-यह निराकार है।
य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा। (जाबालोपनिषत्, २)
यह अनन्त अव्यक्त आत्मा है।
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः। (कठोपनिषत् १/३/१०, ११)।
इन्द्रियों के परे अर्थ (उनके विषय) हैं, अर्थ के परे मन है, मन के परे बुद्धि, बुद्धि के परे परे महान् आत्मा है। अव्यक्त महान् से भी परे है, तथा पुरुष उससे परे है। पुरुष के परे कुछ नहीं है।

**३. शान्तात्मा**-
नमः शान्तात्मने तुभ्यम् (मैत्रायणी उप.५/१)
तुझ शान्तात्मा को नमस्कार।
चतुर्थः शान्त आत्मा प्लुतप्रणवप्रयोगेण समस्तमोमिति।(अथर्वशिखोपनिषत्, १)
सभी कुछ ओम है, प्लुत प्रणव (३ मात्रा का) की चतुर्थ मात्रा शान्तात्मा है।
यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत्।

यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति। (मनुस्मृति १/५२)
जब वह देव जागता है, संसार की सभी क्रियायें होती हैं। जब वह शान्तात्मा सोता है, सभी क्रियायें बन्द हो जाती हैं।

**(क) अन्तर्यामी** (जो सबके भीतर गति करे)-
यः पृथिव्यां तिष्ठन्, पृथिव्या अन्तरो, यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरं, यः पृथिवीमन्तरो यमयति, एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः। (बृहदारण्यक उपनिषद् ३/७/३)= जो पृथिवी पर स्थित है तथा उसके भीतर भी है। उसे पृथिवी नहीं जानती। जिसका शरीर पृथिवी है तथा जो पृथिवी के भीतर रहता या नियन्त्रित करता है, वही अमृत आत्मा अन्तर्यामी कहलाता है।

**(ख) सूत्रात्मा** (एक विन्दु या पिण्ड का अन्य से सम्बन्ध)- इस सम्बन्ध का सूत्र वायु कहा जाता है, यह भौतिक विज्ञान के कई प्रकार के बल हैं।
वायुर्वै गौतम! तत् सूत्रम्। वायुना वै गौतम! सूत्रेणायं च लोकः, परश्च लोकः, सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति। (बृहदारण्यक उपनिषद् ३/७/२)
गौतम ही वायु है, यह योग करने वाला सूत्र है। इस वायु रूपी सूत्र से यह लोक तथा वह लोक जुड़े हैं तथा सभी परस्पर सम्बन्धित हैं।

**(ग) वेदात्मा** (अन्य वस्तुओं का ज्ञान)-
स एव नित्यकूटस्थः, स एव वेदपुरुष इति विदुषो मन्यन्ते। (परमहंसोपनिषत्, १)
(सभी भूतों में) जो नित्य कूटस्थ (अदृश्य परिचय) है, वह वेद-पुरुष है।

**(घ) चिदात्मा** (हर कोष में विद्यमान)-
अनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा चिद्रूप एव (नृसिंह उत्तरतापिनी उप.२)
जो आत्मा एक ही रूप में लगती है, वह सभी चित् में वर्तमान है।

**४. महान् आत्मा**-४ प्रकार का
स वा एष महानज आत्मा, योऽयं विज्ञानमयः, प्राणेषु, य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते, सर्वस्य वशी, सर्वस्येशानः, सर्वस्याधिपतिः। स न साधुना कर्म्मणा भूयान्, नो एवा साधुना कनीयान्। एष सर्वेश्वरः, एष भूताधिपतिः, एष भूतपालः, एष सेतुर्विधरण एषां लोकानामसंभेदाय।(बृहदारण्यक उपनिषद् ४/४/२२)
यह जो महान् से उत्पन्न आत्मा है वह विज्ञानमय है। वह प्राणों (उर्जा) में है तथा अन्तर्हृदय के आकाश में सोता है। वह सबको वश में करने वाला , ईशान (उन्हें चलाने वाला) है तथा सभी का अधिपति (आधार रूप) है। वह सत्कर्मों से बड़ा नहीं होता


न असाधु कर्मों से छोटा होता है। वह सबका ईश्वर, भूतों का अधिपति, भूतों का पालन कर्त्ता है। वह संसार के सभी वस्तुओं के बीच का सेतु (सम्बन्ध) तथा आधार है, तथा सभी लोकों (विश्व तथा व्यक्ति) को एक साथ रखता है।

**(क) आकृति आत्मा** (आकार)-
यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः। (ऋक्.१०/८५/५)
तुझ देव को लोग बार बार पीते हैं तथा उनकी प्यास बुझाते हो। वायु सोम का रक्षण करती है, तथा उससे आकृति की माप तथा आकार बनाती है।

**(ख) प्रकृति आत्मा**-पदार्थ तत्त्व तथा उनके गुण-
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।(श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/१०)
माया को प्रकृति समझो तथा मायी (उसके नियन्ता) को महेश्वर। उसी के अवयवों से सभी भूत तथा जगत् व्याप्त है।

**(ग) अहंकृति आत्मा**-(अलग व्यक्तित्व)
अङ्गुष्ठमात्रो रवि तुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्र मात्रोऽप्यपरोऽपिदृष्टः। (श्वेताश्वतर उप.५/८)
यह (आत्मा) अङ्गुष्ठ अकार की तथा सूर्य के समान प्रकाशमान है। उसमें सङ्कल्प (क्रियात्मक इच्छा) तथा अहङ्कार (अलग व्यक्ति का बोध) है। वह (जीव) सूई की नोक के समान है तथा साधक उसका अनुभव बुद्धि तथा आत्म-गुण द्वारा करते हैं।

**(घ) यज्ञात्मा**-उत्पादक रूप-
एष ह वै यजमानस्यामुष्मिंल्लोकऽआत्मा भवति, यद्यज्ञः। स ह सर्वतनूरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके सम्भवति, म एवं विद्वान्निष्क्रीत्या यजते। (शतपथ ब्रा.११/१/८/६)
यह यज्ञ (उत्पादन) करने वाले की आत्मा है। यह सभी शरीरों में है। विद्वान् इसी के द्वारा यज्ञ करते हैं।

**५. विज्ञान आत्मा**-यह सौर मण्डल की प्रतिमा है तथा इसके २ रूप हैं।
विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य! स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेश। (प्रश्नोपनिषद् ४/११)
विज्ञानात्मा में सभी देव, प्राण तथा भूत प्रतिष्ठित रहते हैं। उस अक्षर को जानने वाला

सर्वज्ञ है तथा सर्व ((ब्रह्म, अल्लाह = all) में प्रवेश करता है।
**(क) विज्ञान आत्मा** (बुद्धि)-
एव हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, योद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते।(प्रश्नोपनिषत् ४/९)
वह आत्मा द्रष्टा, श्रोता, घ्राता (सूंघने वाला) रसयिता (रस का अनुभव कर्ता) मन्ता (विचाने वाला) योद्धा, कर्त्ता है-वही विज्ञानात्मा पुरुष है।
**(ख) दैव आत्मा** (उर्जा, जिसका मूल स्रोत सूर्य है)-
दैवो वाऽअस्यैष आत्मा, मानुषोऽयम्। स यन्न न्यञ्ज्यात्, न हैतं दैवात्मानं प्रीणीयात्। अथ यन्न्यनक्ति, तथो हैतं दैवात्मनं प्रीणाति। (शतपथ ब्राह्मण ६/६/४/५)
मनुष्य की यह आत्मा दैव है। जो इसे नहीं अनुभव करते, वह दैवात्मा द्वारा प्रसन्न नहीं होते। जो इसके साथ चलते हैं, दैव उन्हें प्रसन्न रखता है।
**६. प्रज्ञान आत्मा**-
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।(वा.यजु.३४/३)
जो प्रज्ञान आत्मा है वह चेतना (चिति या व्यवस्था करने में सक्षम), धृति (सूचना धारण या स्मरण शक्ति) है, प्रजा (लोगों) की अमृत ज्योति (अक्षय शक्ति) है। इसके बिना कोई भी काम नहीं हो सकता। ऐसा मेरा मन सदा शिव सङ्कल्प से युक्त हो।
यदेतत् -हृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृ(इ)ष्टिर्धृतिमतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसुः कामो वश-इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति। सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रं, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानं ब्रह्म।(ऐतरेय उपनिषद् ३/१/२)
यह हृदय मन भी है। इसमें संज्ञान (बाहर की सूचना ग्रहण), आज्ञान (सङ्कलन) विज्ञान (तार्किक निष्कर्ष), प्रज्ञान (ज्ञान में वृद्धि), मेधा (सोचने की शक्ति), दृष्टि (देखना) या इष्टि (उपयोगी वस्तु का ज्ञान), धृति (स्मरण शक्ति), मति (सत् असत् विवेक), मनीषा (चिन्तन), जूति (मन की गति), स्मृति (अनुभव), सङ्कल्प (कार्य की योजना), क्रतु (कार्य का आरम्भ) मानसिक शक्ति, काम वासना-ये सभी प्रज्ञान के ही नाम से जाने जाते हैं। ये सभी प्रज्ञा रूपी नेत्र हैं, प्रज्ञान में प्रतिष्ठित प्रज्ञान ब्रह्म है।
**७. भूतात्मा**-पृथ्वी से निर्मित। ५ प्रकार का-
अथान्यत्राप्युक्तं-संमोहो, भ्रमं, विषादो, निद्रा, तन्द्रा, व्रणो, जरा, शोकः, क्षुत्, पिपासा,


कार्पण्यं, क्रोधो, नास्तिक्यं, अज्ञानं, मात्सर्यं, वैकारुण्यं, मूढत्वं, निर्व्रीडत्वं, निकृतत्त्वं, उद्धतत्वं, असमत्वं, इति तामसान्वितः-तृष्णा, स्नेहो, रागो, लोभो, हिंसा, रतिः, दृष्टिव्यापृतत्त्वं, ईर्ष्या, कामं, अवस्थितत्त्वं, चञ्चलत्वं, जिहीर्षा, अर्थोपार्जनं, मित्रानुग्रहणं, परिग्रहावलम्बो, ऽनिष्टेषु-इन्द्रियार्थेषु द्विष्टि, रिष्टेव-भिषङ्ग-इति-राजसान्वितैः परिपूर्णः, एतैरभिभूतः, इत्ययं भूतात्मा। तस्मान्नाना रूपाण्याप्नोति-(मैत्रायणी उपनिषद् ३/५)
इस भूतात्मा के विषय में अन्यत्र भी कहा गया है। इसके रूप हैं-संमोह, भय, विषाद, निद्रा, तन्द्रा (आलस्य), व्रण (घाव), जरा (बुढ़ापा), शोक, क्षुत् (भूख), पिपासा (प्यास), कार्पण्य (कंजूसी), क्रोध, नास्तिक्य (विश्व के एकत्व में अविश्वास), अज्ञान, मात्सर्य (दूसरे की बुराई), वैकारुण्य (दीनता, गरीबी), मूढत्व (नासमझी), निर्व्रीडत्व ( लापरवाही), निकृतत्व (अकर्मण्यता), उद्धतत्व (रोब दाब), असमत्व (भेद भाव)-ये सभी तामसिक भाव हैं। तृष्णा (इच्छा), स्नेह (प्रेम), राग (क्रोध), लोग, हिंसा, रति (लगाव), दृष्टिव्यापृतत्व (जो दीखे उसे पाने की इच्छा), ईर्ष्या (दूसरे की उन्नति से दुःखी), काम (वासना), अवस्थितत्व (एक ही स्थिति में रहना), चञ्चलत्व (भटकना), जिहीर्षा (हत्य की इच्छा), अर्थोपार्जन (धन कमाना), मित्रानुग्रहण (मित्र की सहायता), परिग्रहावलम्ब (भीख से गुजारा), इन्द्रियों के अनिष्ट से भय, भले फल की आशा,-ये सभी राजस गुणों के परिणाम हैं। इनसे अभिभूत (युक्त) होकर भूतात्मा कई रूप लेता है।
**(क) प्राज्ञ आत्मा** (अनुभव)-वातावरण का ज्ञान-
सुषुप्त स्थानः, एकीभूतः, प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्-चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः (माण्डूक्योपनिषद् ५)
यह सुप्त अवस्था जैसा है, एकरूप है, प्रज्ञान से भरा है, आनन्दमय है तथा आनन्द का उपभोग करता है, चेतना का आरम्भ है-यह प्राज्ञ तृतीय पाद है।
**(ख) तैजस आत्मा**-पृथ्वी का वातावरण की प्रतिमा, उसका तेज-
स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्-तैजसो द्वितीयः पादः। (माण्डूक्योपनिषद् ४)
यह स्वप्न अवस्था जैसा है, अन्तः चेतना है, ७ अङ्ग हैं, १९ मुख (स्रोत) हैं, वस्तुओं में प्रविष्ट होगर भोग करता है-यह तैजस द्वितीय पाद है।
**(ग) वैश्वानर**-पृथ्वी की महिमा (प्रभाव क्षेत्र) की प्रतिमा, नर रूप में विश्व-
जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक्-वैश्वानरः प्रथमः

पादः। (माण्डूक्योपनिषद् ३)
यह जाग्रत अवस्था, बाहरी चेतना, ७ अङ्ग का, १९ मुख का, स्थूल का भोग करने वाला-वैश्वानर प्रथम पाद है।
**(घ) हंसात्मा** (शरीर के बाहर हंस जैसा विचरण)-पृथ्वी के वायु-मण्डल की प्रतिमा-
नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३/१८)
९ द्वारों के देह का मालिक हंस है जो बाहर घूमता है। यह स्थिर तथा चलने वाले सभी का नियन्त्रण करता है।
**(ङ) भूतात्मा** (स्थूल शरीर)-पृथ्वी के पदार्थों का संकलन-
आत्मा वै तनूः। (शतपथ ब्राह्मण ६/७/२/६)
शरीर ही आत्मा है।
तस्मादितर आत्मा मे-द्यति च, कृश्यति च (ताण्ड्य महाब्राह्मण, ५/१७)
यह शरीर ही मेरी आत्मा है यह मोटा या दुबला होता है।
तत् सर्व आत्मा (शरीरं) वाचमप्येति, वाङ्मयो भवति। (कौषीतकि ब्राह्मण २/७)
वह सभी आत्मा (शरीर) वाक् द्वारा पुष्ट होता है तथा वाक् रूप है।

**१८. आत्मा के विविध रूपों के कारण भ्रम**-मृत्यु के बाद के जीवन या पुनर्जन्म के बारे में कई प्रकार के मत हैं। सभी एक विशेष प्रकार के आत्मा के लिये ठीक हैं। भौतिक शरीर मृत्यु के बाद अपने मूल स्रोतों में मिल जाता है। ये स्रोत ५ महाभूत हैं, जिनसे पृथ्वी बनी है। अतः पार्थिव शरीर पृथ्वी में ही मिलजाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। महान् तथा प्रज्ञान आत्मा एक साथ चन्द्रमा तक जाते हैं। वे चन्द्रमा की एक परिक्रमा में १ पद जाते हैं, तथा १३ परिक्रमा या १२ चान्द्रमास में चन्दमा तक पहुँचते हैं। इस के लिये मासिक श्राद्ध किया जाता है। प्रेत (प्र+ इतः = यहां से गया) शरीर चान्द्र-मण्डल (चन्द्र कक्षा का गोला) के पदार्थ से बना है। इसके बनने में पृथ्वी की १० परिक्रमा लगती है-अर्थात् १० दिन। इसी प्रकार पार्थिव शरीर बनने में १० चन्द्र परिक्रमा =२७३ दिन लगते हैं। पुरुष विश्व की प्रतिमा है तथा विश्व का निर्माण सर्वहुत यज्ञ है जो १० चक्रों (१० रात्रि, या १० अहः) में पूर्ण होता है-
अथ यद्दशममहरुपयन्ति। संवत्सरमेव देवतां यजन्ते। (शतपथ ब्राह्मण १२/१/३/२०)


मितमेतद्देवकर्म्म यद्दशममहः (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् २७/१)
अथ यद्दशरात्रमुपयन्ति। विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते। (शतपथ ब्राह्मण १२/१/३/१७)
ब्रह्मा वै स्वयम्भू तपोऽतप्यत। तदैक्षत। न वै तपस्यानन्त्यमस्ति। हन्त। अहं भूतेष्वात्मानं जुहवानि। भूतानि चात्मानीति। तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा, भूतानि चात्मनि, सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं, स्वाराज्यं, आधिपत्यं पर्य्यैत्। तथैवैतत् यजमानः सर्वमेधे सर्वान्मेध्यान् हुत्वा सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं, स्वाराज्य, आधिपत्यं पर्येति।१।
स वा एष सर्वमेधो दशरात्रो यज्ञक्रतुर्भवति। दशाक्षरा विराट्। विराड् उ कृत्स्नमन्नम्। कृत्स्नस्यैऽन्नादस्यावरुद्ध्यै। तस्मिन्नग्निं पराद्ध्यं चिनोति। परमो वा एष यज्ञक्रतूनाम्। यत्सर्वमेधः। परमेणैवैनं परमतां गमयति।२। (शतपथ ब्राह्मण १३/७/१)
हंसात्मा स्वप्न या ध्यान में शरीर से निकल कर बाहर घूमता है। चित्त के परकाया प्रवेश में यह अन्य शरीर में भी प्रवेश करता है। मरने के बाद किसी व्यक्ति या स्थान के प्रति दृढ आसक्ति के कारण हंसात्मा वहां भी जाता है।
महान् आत्मा का पूर्व तथा बाद की पीढियों से लेन-देन का सम्बन्ध है। भौतिक पिण्ड का अंश ७वीं पीढ़ी तक जाता है। अतः ७ पीढ़ी तक सम्बन्ध होने पर विवाह वर्जित है या ७ पीढ़ी तक श्राद्ध किया जाता है। आधुनिक जीव विज्ञान में मनुष्य के ४६ क्रोमोजोम माने गये हैं, जो माता-पिता से आधा-आधा मिलते हैं, अर्थात् प्रति पीढ़ी का योगदान क्रमशः आधा होता है। भौतिक शरीर के अतिरिक्त वेद में २ अन्य स्रोत माने गये हैं-इन सभी को सह कहा गया है। गर्भ में चन्द्रमा २८ नक्षत्रों के २८ सहदेता है, यह जन्मकाल के वातावरण का योगदान है। स्वयं के पूर्वजन्म के संस्कार के १० सह होते हैं। पूर्व जन्म की प्रवृत्ति के कारण माता-पिता का चुनाव होता है तथा उनके द्वारा वातावरण बनता है, अतः सभी आनुवंशिक हैं। इस प्रकार ४६+२८+१० = ८४ सह मनुष्य का निर्माण करते हैं। प्रति पीढ़ी में इनका आधा विभाजन होने से ७वीं पीढ़ी तक पूर्ण सह जाते हैं-४२, २१, १०, ५, २, १। केवल क्रोमोजोम मानने पर भी ७वीं पीढ़ी तक विभाजन होता है-२३, १२, ६, ३, २, १।
महान् आत्मा के साथ यज्ञात्मा का जो भाग है वह सौर मण्डल को पार कर आकाश-गङ्गा तक जाता है। इसके लिये गया श्राद्ध किया जाता है। पृथ्वी पर सौर गति की उत्तरी सीमा कर्क रेखा है तथा उस पर सबसे गर्म स्थान गया है। सौर मण्डल से बाहर प्राण की गति को भी गय कहा गया है, अतः इस स्थान का नाम गया है। सभी व्यक्ति आत्मा

आकाशगङ्गा में १ कल्प तक रहती हैं, जो ब्रह्मा का १ दिन है। आकाशगङ्गा तक ही व्यक्ति का अस्तित्त्व है, उससे बड़े स्तरपर सभी समान हैं। विष्णु पुराण (२/७/१२, २०) के अनुसार महर्लोक में १ कल्प तक आत्मा रहती है। यही कुरआन में कहा है कि कयामत (कल्प) तक आत्मा (आदमी) धरती (महर्लोक) पर रहता है। सौर-मण्डल की उर्जा से निर्माण होता है, अत: यह क्षेत्र देव-स्वर्ग है। इसके बाहर जल रूप में उर्जा है जिससे कोई निर्माण नहीं होता। इसे वरुण स्वर्ग कहते हैं। असुर सभ्यता में वरुण या जल से सृष्टि मानी गयी है, अत: उसके क्षेत्र जन:लोक (जन्नत) को वे स्वर्ग मानते हैं।

सूर्य से विकिरण को इन्द्र का वज्र कहा गया है, जिससे सौर मण्डल में उर्जा के ३० क्षेत्र बनते हैं। पृथवी से आरम्भ कर ये क्रमश: २-२ गुणा बड़े हैं। पदार्थ का निर्माण मूल रस से हुआ है। रस मिलने से आनन्द होता है। जहां पदार्थ का घनत्व अधिक है, वहां रस या आनन्द कम होगा। तैत्तिरीय उपनिषद् (२/७/२, २/८/१/१०) के अनुसार पृथ्वी का घनत्व सबसे अधिक होने से यहां आनन्द सबसे कम है। इसे दूर जानेपर ऊपर के धामों में आनन्द क्रमश: १०० गुणा बढ़ जाता है। आकाशगङ्गा का मूल पदार्थ अलकोहल (मद्य-ऋक् १/१५४/४-५) है, उसमें सौर मण्डल के विभिन्न धाम घुले हैं। अत: उसकी प्रतिमा रूप होमियोपैथिक दवा का अलकोहल में घोल बनाया जाता है तथा हर बार उसको १०० गुणा पतला करते हैं। सौर मण्डल के ३० धाम होने के कारण ३ बार पतला करते हैं, जो ३० पावर की दवा हुयी। सूर्य केन्द्रित क्षेत्र हैं २०० त्रिज्या पर चान्द्र-मण्डल, तथा ग्रहों का केन्द्र वृहस्पति १००० त्रिज्या पर। अत: २००, तथा १००० पावर की दवा होती हैं।

सौर मण्डल के भीतरी ग्रह ठोस हैं (मंगल तक)। इन्हें भागवत पुराण, स्कन्ध ५ में दधि समुद्र कहा गया है। उसके बाद शनि तक का पदार्थ मधु है, जिसे मधु-समुद्र कहा गया है। वृहस्पति तथा शनि गैसीय ग्रह हैं। उससे बाहर का क्षेत्र घृत है। इनके प्रतीक के रूप में इन चीजों का हवन होता है।

**१९. पुरुष शब्द के अन्य अर्थ**-किसी भी स्वतन्त्र संस्था या पदार्थ को पुरुष कहा गया है, जो प्राय: पूर्ण हो। पुरुष रूप में इसके अङ्गों का वर्णन होता है, जो एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसके कई अर्थों में प्रयोग साहित्य में दीखते हैं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं-



**(१) वास्तु पुरुष**-ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास:।(ऋक् १/१५४/६) अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि न:। (ऋक् ७/५५/१) ऋक् (७/५४-५५) के देवता वास्तोष्पति हैं।

(२) **वेद पुरुष**-यजूदर: सामशिरा असावृङ् मूर्त्तिरव्यय: (कौषीतकि उपनिषद् १/६) वेद के अङ्ग-छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर् निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते। (पाणिनीय शिक्षा ४१-४२)

**(३) ज्येष्ठ ब्रह्म पुरुष**-अथर्व वेद (१०/७/३२-३४) में पुरुष को ज्येष्ठ ब्रह्म कहा गया है-

यस्य भूमि: प्रमा, अन्तरिक्षम् उतोदरम्,
दिवं यशचक्रे मूर्धानम् तस्मै ज्येषठाय ब्रह्मणे नम:।
यस्य सूर्यश्चक्षु: चन्द्रमाश् च पुनर्णव:,
अग्निं यश्चक्रे आस्यम्, तस्मै ज्येषठाय ब्रह्मणे नम:।
यस्य वात: प्राणापानौ, चक्षुर् आङ्गिरसोऽभवन्,
दिशो यशचक्रे प्रज्ञानी:, तस्मै ज्येषठाय ब्रह्मणे नम:।

= भूमि जिसका चरण (पाद-पीठ) है, अन्तरिक्ष उदर है, द्युलोक मूर्धा (शिर) है, सूर्य आंख है, चन्द्रमा मन, और अग्नि मुख है, वायु जिसका प्राण और अपान है, दिशायें जिसकी श्रुति हैं, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है।

**(४) स्कम्भ पुरुष**-अथर्व वेद (१०/७/१८-१९) प्रसिद्ध स्कम्भ सूक्त है-
यस्य शिरो वैश्वानरश् चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्, अङ्गानि यस्य यातव:.., यस्य ब्रह्म मुखम् आहुर् जिह्वा मधुकशामृत, विराजम् ऊधो यस्याहु स्कम्भं तं ब्रूहि कतमस्विदेव स:। वैश्वानर जिसका शिर है, अङ्गिरा जिसका चक्षु है, गतिमान् समस्त लोक जिसके अङ्ग हैं, ब्रह्म जिसका मुख है, वर्षा आदि ऋतुयें जिसकी जिह्वा हैं, विराज् जिसका ऊधस् है, कहो इन सबका आधार स्कम्भ-पुरुष कौन है?

**(५) अज पुरुष**-अथर्व (९/५/२०-२१) में-
अजो वा इदमग्रे व्यक्रामत। तस्योर: इयम्-अभवद्, द्यौ: पृष्ठम्, अन्तरिक्षम् मध्यं, दिश: पार्श्वे, समुद्रौ कुक्षी, सत्यं चक्रतं च चक्षुषी, विश्वं सत्यम् श्रद्धा प्राणो विराट् शिर:। = अज इस सृष्टि के पूर्व भी व्याप्त था। उसकी छाती यह भूमि थी , पीठ द्यौ:, अन्तरिक्ष उदर, दिशायें दोनों पार्श्व, समुद्र कुक्षि थे सत्य-ऋत उसकी आंख बने।

विश्व, सत्य श्रद्धा -प्राण कहलाये, विराट् उसका शिर हुआ।
**(६) ओदन पुरुष**-अथर्व (११/३/१-२) में-
तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम्, द्यावा पृथिवी श्रोत्रे, सूर्याचन्द्रमसौ अक्षिणी, सप्तऋषयः प्राणापानाः।
= उस ओदन पुरुष का बृहस्पति शिर है, ब्रह्म मुख है, द्यौ-पृथिवी उसके कान हैं, सूर्य-चन्द्रमा आंखें, सप्त ऋषि उसके प्राण-अपान आदि (७ प्राण) हैं।
**(७) राष्ट्र तथा सम्राट् पुरुष**-यजुर्वेद (२०/५-१०) में राजा द्वारा प्रजा का सम्बोधन किया गया है कि वह राष्ट्र का प्रतिनिधि या स्वरूप है, तथा राष्ट्र के अङ्ग उसके अङ्ग हैं-
शिरो मे श्रीर्, यशो मुखम्, त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि,
राजा मे प्राणो अमृतं, सम्राट् चक्षुर्, विराट् श्रोत्रम्,
जिह्वा मे भद्रं, वाङ् महो, मनो मन्युः, स्वराड् भामः,
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीर्, अङ्गानि मित्रं मे सहः,
बाहू मे बलमिन्द्रियम्, हस्तौ मे कर्मवीर्यम्,
आत्मा क्षत्रम् उरो मम, पृष्ठीर् मे राष्ट्रम् -उदरम्,
अंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी, ऊरू अरत्नी जानुनी,
दिशो मेऽङ्गानि सर्वतः, नाभिर्मे चित्तम् विज्ञानम्,
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि, दिशि राजा प्रतिष्ठितः।
प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे, प्रत्यश्वेषु, प्रतितिष्ठामि गोषु प्रत्यङ्गेषु, प्रतितिष्ठामि आत्मन्, प्रति प्राणेषु, प्रतितिष्ठामि पुष्टे प्रतिद्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे।
**(८) वर्णात्मा पुरुष**-ब्रह्म वक्त्रं, भुजौ क्षत्रंकृत्स्नमूरूदरं विशः। पादौ यस्याश्रिताः शूद्राः, तस्मै वर्णात्मने नमः। (महाभारत ३/१८७/१३)
**(९) सम्वत्सर पुरुष**-संवत्सरो वा अग्निर्ऋतुस्तथास्तस्य वसन्तः शिरो ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षो वर्षाः पुच्छम् शरदुत्तरः पक्षो हेमन्तो मध्यम् पूर्वपक्षाः चितयः, परपक्षा पुरीषम्, अहोरात्राणि इष्टकाः। (तैत्तिरीय संहिता ५/७/६/५-६)
**(१०) राज्यपुरुष**-दृगमात्य सुहृच्छोत्रं मुखं कोशो बलं मनः। हस्तपादौ दुर्गराष्ट्रौ राज्याङ्गानि स्मृतानि हि। (शुक्रनीति १/६१-६२)
**(११) लोकात्मा पुरुष**-यस्याग्निरास्यं, द्यौर्मूर्धा, खं नाभिश्चरणौ क्षितिः, सूर्यश्चक्षुर्, दिशः श्रोत्रे, तस्मै लोकात्मने नमः (महाभारत, शान्ति पर्व, ४७/६८)



ऐसा ही वर्णन मुण्डक उपनिषद् (२/१/४) में है-अग्निर्मूधा, चक्षुषी चन्द्रसूर्यो, दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो, हृदयं विश्वमस्य, पद्भ्यां पृथिवी एष भूतान्तरात्मा।
**(१२) दण्ड पुरुष**-नीलोत्पलदलश्यामचतुर्दंष्ट्रश्, चतुर्भुजः, अष्टपाद्, नैकनयनः शङ्कुकर्णोर्ध्वरोमवान्, जटी द्विजिह्वम्, ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः एतद् बिभर्त्युग्रं दण्डो नित्यं दुराधरः। (महाभारत, शान्ति पर्व, १२१/१५-१६)
**(१३) पुराण पुरुष**-(पद्म पुराण १/६२/२-७) में-
ब्रह्म मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम्। वैष्णवं दक्षिणो बाहु, शैवं वामो महेशितुः।।
उरू भागवतं प्रोक्तं, नाभिः स्यान्नारदीयकम्।
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्, वामो ह्याग्नेयमुच्यते।।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः। ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः।।
लैङ्गं तु गुल्फं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्। स्कन्दं पुराणलोमानि, त्वगस्थ वामनं स्मृतम्।।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं, मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते।
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते।।
**(१४) काव्य पुरुष**-काव्य मीमांसा में-
शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्रकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्, समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि उक्तिवर्णं च ते वचः। रस आत्मा रोमाणि छन्दांसि अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति।

**२०. पुरुष शब्द के निर्वचन**-पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति का सारांश अवच्छेद ७ में दिया गया है। यहां कुछ अन्य निर्वचन दिये जा रहे हैं।
**(१) यास्क का निरुक्त**-इसके (२/३) में ४ विकल्प दिये हैं-(क) पुरिषादः, (ख) पुरिशयः, (ग) पूरयतेर्वा, (घ) पूरयति-अन्तर् । व्याकरण के अनुसार इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है-
**(क) पुरिषादः**-पद्लृ या पत्लृ गतौ (पाणिनीय धातुपाठ १/५८४) पत् गतौ वा (१०/२८६)। पद गतौ ४/५८, १०/३२०)
षद्लृ या सद्लृ विशरणगत्यवसानेषु (१/५९३, ६/१३६)-जाना, शक्तिहीन होना, सूखना, भग्न या नष्ट करना।
या शद्लृ शातने (१/५९४, ६/१३७)= जीर्ण होना, मुरझाना- से भी।
पुरि (उपपद) + षद्लृ + घञ् = पुरिषादः। इससे पुरिशः बनता है जो पुरि+ षद्लृ

+ङ है। इसके बाद सप्तमी लुक्-से पुर् मे उ का आगम तथा सुप् प्रत्यय से पुरुष हुआ। षद्लृ के ३ अर्थ-विशरण, गति, अवसाद तथा शद्लृ का १ अर्थ शातन से पुरिशाद में ४ अर्थ हैं। स्कन्द स्वामी ने गति अर्थ माना है-जो भोक्ता बन कर शरीर को प्राप्त करता है (निरुक्त २/३ पर स्कन्दस्वामी भाष्य)-अथवा शदिर् गत्यर्थः तस्मात् पुर् शब्दोपदेडप्रत्ययः। पुरं शरीरं भोक्तृत्वेन गच्उतीति पुरिशः शकारस्य षकार।

निरुक्त के अन्य भाष्यकार दुर्ग ने पूः का अर्थ शरीर या बुद्धि किया है, और षद्लृ धातु से निष्पन्न माना है। उन दोनों में जो विषय की उपलब्धि के लिये पूः में बैठता है, उस आत्मा को पुरुष माना है।-पूः शरीरं बुद्धिर्वा तयोरसौ विषयोपलब्ध्यर्थं सीदतीति पुरिषादः इति पुरुषः (निरुक्त २/३ पर दुर्ग टीका)।

स्वामी दयानन्द ने इसे ब्रह्म का वाचक माना है जो संसाररूपी पुर में व्याप्त होकर ठहरा हुआ है-पुरि सर्वस्मिन् संसारेऽभिव्याप्य सीदति वर्तत इति पुरुषः-ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका-सृष्टि उत्पत्ति।

**(ख) पुरिशयः**-पुरि शयनात् इति पुरुषः-जो पुर में शयन करे वह पुरुष है (निरुक्त २/३) पुरि उपपद + शीङ् धातु + अच् प्रत्यय = पुरिश =पुरिष।

शीङ् स्वप्ने (२/२५, आत्मनेपदी-शेते)-सोना शयन करना।

गोपथ ब्राह्मण (१/१/३९) में पुर में शयन करने के कारण प्राण को पुरुष कहा है-प्राण एष स पुरि शेते इति पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते।

शतपथ ब्राह्मण (१३/६/२/१) में वायु को पुरुष माना है, जो लोकों में बहता है-इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योऽय (वायुः) पवते सोऽस्यां पुरि शेतेतस्मात् पुरुषः।

तैत्तिरीय आरण्यक (७/८)-उपसना द्वारा सभी के हृदय में निवास करने वाले पुरुष का साक्षात् होता है-स एतस्मात् जीवनघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। इस पर सायण भाष्य-य उपासनया ब्रह्मलोकं प्राप्तः स एतस्मात् सर्वजीव-समष्टि- रूपादुत्कृष्टा-द्धिरण्यगर्भादप्युत्कृष्टं सर्वप्राणि-हृदयेशयं (पुरिशयं) परमात्मानं पश्यति।

प्रश्नोपनिषद् (५/५) में भी यही है-परात्पर पुरिशयं पुरुषमीक्षते।

बृहदारण्यक उपनिषद् (२/५/१८)-सभी पुरों में शयन करने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहा है-स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयः।

महाभारत(शान्ति पर्व २१०/३८) में ९ द्वार वाले पुर में शयन करने वाले को पुरुष कहा है-नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्। व्याप्य शेते महानात्मा तस्मात् पुरुष उच्यते।



ब्रह्म पुराण (३०/३८) में व्यक्त तथा अव्यक्त जगत् में शयन करने वाले को पुरुष कहा है-अव्यक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन उच्यते।

भागवत पुराण (७/१४/३७)-जीव रूपी पुरों में शयन करने वाला पुरुष है-पुराण्यन्येन सृष्टानि नृतिर्यगृषि देवताः। शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ।

अनन्ताचार्य ने पुरुष सूक्त की व्याख्या में पुर में शयन करने वाले या उसे भी पार करने वाले को पुरुष कहा है-

पुरमाक्रम्य सकलं शेते यस्मान्महाप्रभुः। तस्मात् पुरुष इत्येवं प्रोच्यते तत्वचिन्तकैः।

ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका की ५५वीं कारिका पर वाचस्पति मिश्र की टीका में लिङ्ग रूपी पुर में शयन करने वाले को पुरुष कहा है-पुरुषः इति। पुरि लिङ्गे शेते इति पुरुषः। लिङ्गे च तत्सम्बन्धीति चेतनोऽपि तत्सम्बन्धी भवतीत्यर्थः।

लिङ्ग भी तीन प्रकार के हैं, तथा इस परिभाषा में पुरुष के सभी रूप आते हैं-

मूल स्वरूप लिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृतः। सूक्ष्मत्वात्कारणत्वाच्च लयनाद् गमनादपि। लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते।। (योगशिखोपनिषद् २/९,१०)

स्वयम्भू-लिङ्ग सृष्टि का मूल कारण है, उसी में इसका पुनः लय होता है। बाण लिङ्ग गति की दिशा दिखाता है-यह भर्ग वा तेज रूप है-हरः स्मर हरो भर्गः (अमरकोष १/१/३३)। परमेश्वर के लक्षण अनन्त हैं , किन्तु उनका आभास १२ आदित्यों के अनुसार १२ प्रकार का है। इनका ज्ञान मस्तिष्क के इतराख्य (इतर = अलग) लिङ्ग से होता है।

**(ग) पूरयतेर्वा**-पूरी आप्यायने (४/४२, १०/२२६)-तृप्त करना, पूर्ण करना या भरना, सन्तोष या आनन्द होना, पूर्ण होना।

पूरी + कुषन्= पुरुष -पृषोदरादित्वात् से ऊ का ह्रस्व होता है।

**(घ) पूरयति अन्तः**-यह अन्तर्यामी पुरुष के लिये है तथा सम्भवतः यजु (२३/५२) पर आधारित है-पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश। दुर्ग ने सर्वव्यापी अर्थ में पुरुष माना है-पूर्णत्वेन पुरुषेण सर्वगतत्वाज्जगदिति पुरुषः। (निरुक्त २/३)

स्कन्दस्वामी टीका में इसे क्षेत्रज्ञ पुरुष माना है-

पूरयत्यन्तरित्यतर पुरुषमभिप्रेत्य अन्तर पुरुषः क्षेत्रज्ञः तं अभिप्रेत्योच्यते तेन हि इन्द्रिय-प्राणादि रूपं पुरि अष्टकं स्थूलञ्च ....। (निरुक्त २/३)

अहिर्बुध्न्य संहिता (५९/५) में पृ धातु से पुरुष माना है-

पूर्णत्वात् पुरुषो नित्यं पृणातेः पूर्णार्थकात्।

**(२) व्याख्यात्मक शैली**-

**(क) सबसे पूर्व**-तैत्तिरीय आरण्यक में सबसे पूर्व होने के काण पुरुष माना है (पुर अग्रगमने)। इसी को सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद कहा है-

पूर्वमेवाहमिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वं।

स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् भूत्वा उदतिष्ठत्।

स्वामी दयानन्द ने उणादि कोष ४/७४) में पुरः कुषन् की व्याख्या में पुरुष की उत्पत्ति पुरः = अग्रे गच्छति से की है।

**(ख) महाभूतों की उत्पत्ति, विभाजन**-मंगलाचार्य की पुरुष सूक्त टीका-महदादि सकल-जगदधिष्ठानं शुद्धबुद्धसत्यचिदानन्द नित्य निर्विकार-निरुपाधिकं ब्रह्मैव सृष्टेः पूर्वमेव स्थितत्वात् पुरुष इत्यर्थः। पुरु को महत् आदि तत्त्व मानकर उनका विभाग करने वाले को भी पुरुष कहा है-पुरूणि महदादितत्त्वानि सनोति माययोपेतत्वेनेति पुरुषः। इसके लिये उद्धरण है- यते वा इमानि भूतानि जायन्ते (तैत्तिरीय उपनिषद् ३/७)।

(ग) फल दाता-अहिर्बुध्न्य संहिता (५९/३३)-फलानि पुरुषेभ्यश्च सनोति क्रिययार्चितः। ततः पुरुष इत्येवम् ... अभिधीयते।

वाचस्पत्यम्-पुरूणि बहूनि फलानि मनोभिलषितानि सनोति ददाति वा।

इसका मूल है-षणु दाने (८/२)। पुरु + षणु + ड = पुरुष।

**(घ) संसार का अन्त करने वाला**-ब्रह्म सूत्र के सूत्र २ में यही परिभाषा है-जन्माद्यस्य यतः। जिससे इस (विश्व) का जन्म आदि (विकास, ह्रास, मरण आदि) हो। इसी से भागवत पुराण का भी आरम्भ हुआ है-

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतः चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।

तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा,

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि।।

संहार अर्थ का आधार है-षो अन्तःकर्मणि (४/३८)। पुरि + षो + क = पुरुष।

वाचस्पत्यम्-पुरूणि भुवनानि संहार समये स्यति = अन्तः करोति-इति।

मंगलाचार्य -आत्मनि प्रति संहरति।

**(ङ) पाप का दहन**-इसका आधार है-उष दाहे (१/४६४)। पुर् +उष +क = पुरुष। जो सबसे पूर्व था तथा जिसने सभी पापों को जला दिया, वह पुरुष है-



स यत् पूर्वोऽस्मात् सर्वस्मात् सर्वान् पाप्मनः औषत्तस्मात् पुरुषः। (शतपथ ब्राह्मण १४/४/२/२, बृहदारण्यक उपनिषद् १/४/१)

रामानुज भाष्य-पुरः उषति =प्रकाशयति-इति पुरुषः दाहप्रकाशयोरेकाधिकरणत्वात।

**(च) सभी में प्रविष्ट**-विश प्रवेशने (६/१३३)। पुर +विश = पुरुष।

पुरः पुरुष आविशत्। (शतपथ ब्राह्मण १४/५/५/१८, बृहदारण्यक उपनिषद् २/५/१८) सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः (कठोपनिषद् ६/१७)।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः। (गीता १५/१७)

पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् (अरुणोपनिषत् ३)

पुरुषः पुरं प्रविशति स्म पञ्चभिः, सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्र सूनुभिः। (शिशुपाल वध १३/२८)

**(छ) जगद् का बीज**-निरुक्त (२/१)-अपि अक्षरवर्णसामान्यात् निर्ब्रूयात् के आधार पर इसका निर्वचन है-पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः (मुण्हक उपनिषद् २/१/१५) । पुरुष = पु (पुमान्) + रु (रेतः) + षः (सिञ्चति)।

ऐसा ही ऐतरेय उपनिषद् (२/१/१) में भी है-पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म।

गीता (१४/३-४) में भी-

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।३। सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः। तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।४।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन। (गीता १०/३९)

बीजं मां सर्वभूताना विद्धि पार्थ सनातनम् (गीता ७/१०)

**(३) पूरुष**-यह पूरयतेर्वा, पूरयति अन्तः-इनसे बना है। दृश्य पुरुष से बड़े इसके ३ रूप वर्णित हैं-

**(क) चतुष्पाद पुरुष**-दृश्य जगत् १ ही पाद है, उसका मूल ३ पाद जो आकाश में अमृत है, वह मिलाने से पूरुष होता है-

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः। (पुरुष सूक्त ३)

**(ख) अधिष्ठाता पुरुष**-किसी भी प्रकार के पुर का निवासी पुरुष है। उसका आधार या अधिष्ठान उससे बड़ा है, वह पूरुष है।

तस्माद् विराडजायत, विराजो अधिपूरुषः। (पुरुष सूक्त ५)
यह (दृश्य जगत्) पुरुष पूर्ण है, इसका मूल वह पूरुष भी पूर्ण है-
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। (शान्तिपाठ)
(ग) परम को प्राप्त-असक्तोह्यचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः। (गीता ३/१९)
पाप युक्त-अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। (गीता ३/३६)

## अध्याय ३

# पुरुष सूक्त व्याख्या

### (१) सूक्त १-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्।१।
ऋग्वेद (१०/९०/१) स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गलम्।
अथर्व (१९/६/१-सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।

**अर्थ**-पुरुष के १००० (या अनन्त) सिर, १००० आंखें (या अक्ष =धुरी), १००० पाद हैं। वह पृथ्वी को सब तरफ से घेरकर उससे १० अङ्गुल अधिक या १० गुणा है।

**शब्द**-(१) **सहस्र**= सह (बल) + राति (देता है)-यह अधिक संख्या में होने के कारण बल देता है। या, स (साथ) + हस्र (हास, प्रभाव-फारसी में)-हास या मादकता युक्त। समानं हसति इति (हस् +र) सहस्रं। अन्तरिक्ष, पृथ्वी द्यौः त्रिपूर्ण मधूनि-ये तीनों ही मादकता से युक्त है। या हननेन सहितं इति सहस्रं (अनित्यता पूर्ण)-अव्यक्त की हजारों या अनन्त रचनायें हैं-सभी अनित्य हैं तथा अन्त में उसी में मिल जाती हैं। सूर्य का ताप उससे १००० व्यास दूर तक अनुभव होता है। किसी व्यक्ति को प्रायः १००० लोग जानते हैं। गांव, शहर की किसी बस्ती, या सेना की टुकड़ी में प्रायः १००० व्यक्ति साथ चलते हैं। सहस्र का अर्थ अनन्त भी होता है (मुद्गलोपनिषद्)।

(२) **शीर्ष**-सिर, श्री या तेज, प्रथम या उत्तम, मूल स्रोत।
शॄ हिंसायाम्, शीर्यते अज्ञानं यस्मिन् इति शीर्षम् (मस्तिष्क)
शीङ् स्वप्ने-शेरते ज्ञानेन्द्रियाणि यस्मिन् स शिरः-सभी ज्ञानेन्द्रियां इसमें सोती हैं।
शीर्षतो वाऽ अग्रे जायमानो जायते। (शतपथ ब्राह्मण ३/४/१/१९)
श्रीः (उत्कृष्ट वस्तु) वै शिरः (शतपथ ब्राह्मण ३/४/१/१९, २/१/२/८, ४/२/४/२०)
मनुष्य का तेज (श्री) सिर में होता है, अतः उसे शिर (श्री) कहते हैं-यच्छ्रियं समुदौहंस्तस्माच्छिरस्तस्मिन्नेतस्मिन्प्राणा अश्रयन्त तस्माद्वैतच्छिरः। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/४)

यह मूल स्थान या प्रथम उत्पन्न है- शिरो वै प्राणानां योनिः (श. ७/५/१/२२) शिरो वै प्रथमं जायमानस्य जायते (श. ८/२/४/१८, १०/१/२/५)
मनुष्य शरीर में सिर सबसे ऊपर होता है, मूल स्रोत को ही ऊर्ध्व या ऊपर कहा गया है-ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् (गीता १५/१).
(३) **सहस्रशीर्षा**-हजारों सिर वाला। यहां सहस्र का अर्थ अनन्त भी है। विश्व के कई स्रोत हैं। हर विन्दु को सृष्टि का आरम्भ विन्दु माना जा सकता है। या सृष्टि के १००० विकल्प रूप हैं।
(४) **सहस्राक्ष**-सहस्र अक्ष वाला। अक्ष का अर्थ आंख है, या धुरी है। मनुष्य आंख से देखता है। विश्व-पुरुष की मनुष्य जैसी आंख नहीं है, वह देखने के अतिरिक्त भी हर प्रकार का अनुभव कर सकता है। यह अनुभव किसी भी विन्दु से हो सकता है, तथा ऐसे विन्दु अनन्त हैं। धुरी का अर्थ सामान्यतः गाड़ी की धुरी है जिसके चारों तरफ चक्का घूमता है। यहां रथ का अर्थ शरीर तथा चक्र का अर्थ चक्रीय कर्म है जो मुख्यतः यज्ञ होता है। हर विन्दु यज्ञ का केन्द्र है। इसे हृदय कहते हैं, तथा ऐसे हर हृदय में पुरुष का वास है-ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। (गीता १८/६१)
(५) **सहस्रपाद**-पाद का अर्थ गति, गति का कारण पैर, तथा किसी प्रक्रिया का अन्तिम चरण (चरण =पाद) है। एक प्रकार से हर स्थिति को चरण कहा जाता है। ४ पैर के पशु होते हैं, अतः पाद का अर्थ १/४ भी है। इस अर्थ भें अगले सूक्त में प्रयोग है।
(६) **पुरुष**-इसकी विस्तार से व्याख्या हो चुकी है। यह विश्व का मूल स्रोत, निर्माता, निर्माण क्रिया, निर्माण का पदार्थ, भोग, भोक्ता, कार्य या भोग का परिणाम, तथा अन्तिम लय भी है। इस अर्थ में गीता का एक श्लोक भोजन के पूर्व पढ़ा जाता है-
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना।
दारु या वृक्ष के रूप में ब्रह्म या पुरुष के सभी गुणों का वर्णन है। यह विश्व का मूल (शीर्ष), निर्माण की शाखा या दिशायें (अक्ष) तथा उसका फल (पाद) है-
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।(गीता १५/१)
यह सङ्कल्प, कर्म तथा उसके फलों (शीर्ष-अक्ष-पाद) का अनन्त चक्र भी है-


अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्चमूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ।। (गीता १५/२-३)
अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमसि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्। (तैत्तिरीय उपनिषद् १/१०)
इस कर्म-फल के वृक्ष को काटने से ही मुक्ति मिलती है। विश्व के निर्माण की सामग्री, निर्माता तथा उसका आधार भी है। यह प्रश्न रूप में ऋग्वेद में तथा उसके उत्तर रूप में तैत्तिरीय संहिता में है-
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तत् यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।। (ऋक् १०/८१/४)
ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/९, संहिता ५/६/१)
ब्रह्म ही सृष्टि का अधिष्ठान (शीर्ष), आरम्भ (अक्ष) तथा निर्माण सामग्री तथा उसका परिणाम (पाद) है-
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथासीत्।
यतो भूमि जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन् महिना विश्वचक्षाः।।
(ऋक् १०/८१/२)
ब्रह्म का एक रूप आकाश में अमृत है (सूक्त ३)-वह वृक्ष के समान निस्तब्ध देखता है-यह पूरुष है। अन्य रूप क्रिया सृष्टि क्रिया में लिप्त है। ये दो प्रकार के सुपर्ण कहे गये हैं-साक्षी तथा भोक्ता, जिन्हें ब्रह्म-कर्म कहा जाता है। व्यक्ति रूप में ये जीव तथा आत्मा हैं-
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।
(ऋग्वेद १/१६४/२०, अथर्व ९/१४/२०, श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/६, मुण्डक उपनिषद् ३/१/१)
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव

स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३/९, यजुर्वेद ३१/१८)

(७) **भूमि**-भवन्ति भूतान्यस्यामिति। भू सत्तायाम् +मिक्+ङीप् =भूमि। जिसमें पदार्थों या भूतों का निर्माण होता है, वह भूमि है। आकाश में ३ प्रकार की भूमि है- पृथवी, सौर मण्डल, तथा ब्रह्माण्ड। सम्पूर्ण सृष्ट जगत् को भी भूमि कहा जा सकता है जो चतुर्थ धाम है। मनुष्य से आरम्भ कर पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड, स्वयम्भू- क्रमशः कोटि-कोटि गुणा बड़े हैं। पृथ्वी के लिये सौर- मण्डल आकाश है, पुनः उसके लिये ब्रह्माण्ड आकाश है, ब्रह्माण्ड के लिये स्वयम्भू आकाश है। इन आकाशों के लिये पृथ्वी, सौर-मण्डल, ब्रह्माण्ड भूमि हैं। तीनों भूमि सूर्य-चन्द्र से प्रकाशित हैं- दोनों से प्रकाशित पृथ्वी, सूर्य से प्रकाशित सौर-मण्डल, तथा सूर्य-प्रकाश की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड है-

रवि चन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। स समुद्र सरिच्छैला पृथिवी तावती स्मृता ।
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तार परिमण्डलात्।
नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यास मण्डलतो द्विज।। (विष्णु पु.२/७/३-४)

तीन भूमि को ३ माता तथा आकाश को ३ पिता कहा गया है (ऋक्१/१६४/ १०,२/२७/८) -तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वतस्थौ नेमवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वमिदं वाचमविश्वमिन्वाम्।
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु।

यज्ञ स्थान के रूप में पृथ्वी को गौ भी कहा गया है। गौ में स्थान, गति तथा निर्माण- तीनों हैं। पृथ्वी पर कोई भी उत्पादन अर्थात् यज्ञ का स्थान, या कोई कार्यक्षम प्राणी शरीर भूमि है।

अध्यात्म में समाधि की अवस्थाओं को ३ भूमि कहा गया है-

निरुद्धे चेतसि पुरा सविकल्प समाधिना। निर्विकल्प समाधिस्तु भवेदत्र त्रिभूमिकः।।
व्युत्तिष्ठते स्वतन्त्राद्ये द्वितीये पर बोधितः। अन्ते व्युत्तिष्ठते नैव सदा भवति तन्मयः।।
एवं प्राग्भूमि सिद्धावप्युत्तररोत्तर भूमये। विधेया भगवद् भक्तिस्तां विना सा न सिद्ध्यति।।
(योग शास्त्र १५६)

(८) **दशाङ्गुलम्**-१० अङ्गुल। अङ्गुल का सामान्य अर्थ है हाथ या पैरों का अन्तिम छोर। प्रत्येक में ५-५ अंगुल होते हैं। मध्यमा अंगुल की मोटाई की औसत माप को



अङ्गुल माना गया है। प्रायः ८ यव के दानों को उदर (मोटाई) में जोड़ने पर अंगुल होता है = प्रायः १.८८ से.मीटर। अंगुल में क्रमशः ८-८ द्वारा ४ बार भाग देने पर बालाग्र होता है जो प्रायः ४ माइक्रोन है (माइक्रोन = मीटर का १० लाख भाग)- बृहत्संहिता (५६/२)

अङ्गुल गिनती का माध्यम भी है। १ अंगुल को अंगुष्ठ कहा जाता है-जो हाथ मे सबसे मोटी अंगुली है। हाथ ऊपर करने पर मनुष्य ९६ अंगुल का होता है। आकाश में भूमि ही मापदण्ड है-उसका व्यास १२,८०० किलोमीटर को ९६ अंगुल माना जा सकता है। इस माप से ६०,००० बालखिल्य १ अंगुल= अंगुष्ठ आकार के हैं, अर्थात् १२८००/९६ = १३५ कि.मी.। ये सूर्य की तुलना में प्रायः ६० गुणा दूरी पर सूर्य की परिक्रमा करते हैं (सूर्य सिद्धान्त १२/८०, भागवत पुराण, स्कन्ध ५)। जहां पूरे विश्व की चर्चा हो रही है, वहां सम्पूर्ण दृश्य जगत् या चतुर्थ भूमि भी १ अंगुल होगा क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पुरुष उससे १० गुणा बड़ा है।

अंगुल दिशा निर्देश करता है। आकाश का विस्तार १० दिशाओं में हैं, अर्थात् सम्पूर्ण विश्व १० आयाम का है। इसमें ५ आयाम यान्त्रिक विश्व है, जिसका वर्णन भौतिक विज्ञान करता है। उसके ५ आयामों का अर्थ है कि माप के लिये ५ मूल इकाइयों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त चेतना के ५ स्तरों के अनुरूप ६ से १० तक आयाम हैं। इनके नाम हैं-पुरुष =चेतना का अर्थ यहां पर चयन है। यान्त्रिक विश्व स्वयं बिखर जाता है। उसे व्यवस्थित करने के लिये चेतन तत्त्व की जरूरत है। ७वां आयाम है ऋषि-जो अलग अलग विन्दुओं के बीच सम्बन्ध-सूत्र (ऋषि = रस्सी) है। ८वां आयाम वृत्र या नाग है जो वस्त्रों को घेरकर उनको आकार देता है। ९वां आयाम रन्ध्र (कमी) है, जो नये निर्माण या परिवर्तन का कारण है। १० वां आयाम रस या आनन्द है, जो सर्वव्यापी चेतन पुरुष है।

शरीर के भीतर १० अंगुल १० प्राण या १० इन्द्रियां हैं। इसी अनुरूप स्वामी दयानन्द ने ५ महाभूत तथा ५ सूक्ष्मभूत (तन्मात्रा) को विश्व के १० अंगुल माने हैं। स्थूल शरीर या विश्व के अतिरिक्त पुरुष सभी प्राणों तथा महाभूतों में भी व्याप्त है।

(९) **सर्वतः/विश्वतः**-दोनों शब्दों का अर्थ पूर्ण जगत् है। इसे विश्व इसी कारण कहते हैं कि पुरुष इसमें हर स्थान पर प्रविष्ट है। (विश् प्रवेशने, ६/१३३)। सर्व का अर्थ है सबमें सरण या गति करने वाला-यह अदृश्य गति है। (त्सर छद्म गतौ, १/ ३७३)

(१०) **वृत्वा**-व्याप्त कर या घेर कर। वृतु वर्तने १/५०८) या वृञ् वरणे (५/८)। जो सबमें विद्यमान है या सबका आवरण है।

(११) **अत्यतिष्ठत्**- तिष्ठत् का अर्थ है बैठना, या स्थान घेरना। स्था गतिनिवृत्तौ-गति पूर्ण करना, स्थित होना या ठहरना। अति का अर्थ अधिक है। जो पूरे विण्व को घेरकर उससे भी अधिक में फैला है, इसके लिये अत्यतिष्ठत् का प्रयोग है।

**व्याख्या**-(१) **१५ सहस्री**-विश्व के सभी ५ पर्वों में ३-३ सहस्र हैं। प्रति सहस्र में एक मनोता प्रधान है। ये १५ सहस्र (सह = साथ, स्र = चलना) विश्व के मूल या उक्थ है। मूल स्रोत के कुछ अंश का रूप बदल जाता है, या उससे निकल जाता है। जो बचा रह जाता है, वह उक्थ है।

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावा पृथिवी तावदित् तत्।

सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठती तावती वाक्।। (ऋक् १०/११४/८)

प्रति पर्व से कुछ निकलता है या विकिरण होता है-यह प्रवाह अङ्गिरा है। निकला हुआ पदार्थ इन्द्र है, जो पूरे आकाश में फैल जाता है। पर्व कुछ ग्रहण भी करता है। ग्रहण की क्रिया या आकर्षण भृगु है। आकर्षण शक्ति तथा गृहीत पदार्थ विष्णु है। इन्द्र तथा विष्णु का विपरीत प्रवाह सदा चल रहा है। इस प्रतिस्पर्धा में अन्ततः इन्द्र जीत जाता है क्योंकि क्षय की मात्रा अधिक होने के कारण पिण्ड नष्ट हो जाता है। मनुष्य के बालपन में विष्णु की मात्रा अधिक है, अतः विकास होता है। -

उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे, न पराजिग्ये कतरा च नैनोः।

इन्द्रश्च विष्णुश्च यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम्। (ऋक् ६/६९/८)

= इन्द्र तथा विष्णु स्पर्धा करते हैं, कोई किसी को हरा नहीं पाता। उनकी स्पर्धा से ३ साहस्री (क्षेत्र) बनी हैं।

किं तत् सहस्रमिति, इमे लोकाः, इमे वेदाः, अथो वागिति ब्रूयात्। (ऐतरेय आरण्यक)

ये ३ सहस्र कौन से हैं-यह लोक (विष्णु द्वारा पालित), ये वेद (ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न) तथा वाक् (इन्द्र रूपी विकिरण का आकाश में विस्तार)।

(२) **मनोता**-हर मनोत ३-३ भागों में विभक्त है-

त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति। (छान्दोग्य उपनिषद् ६/४/७)

(क) **स्वयम्भू**-१. वेद-प्रति विन्दु अन्य के बारे में जानता है या प्रभावित होता है। यह ज्ञान ३ प्रकार का है, मूर्त्ति ऋक्, गति यजु तथा महिमा या प्रभाव-क्षेत्र साम है। २. सूत्र-२ पिण्डों के बीच का सम्बन्ध। यह भी ३ प्रकार का है। सत्य एक सीमा के



भीतर केन्द्र के साथ है। ऋत् की कोई सीमा या केन्द्र नहीं है। सत्य-ऋत् में सीमा या केन्द्र में कोई एक है। ३. नियति-यह परिवर्तन की दिशा है। परिवर्तन २ प्रकार का है-सञ्चर तथा प्रतिसञ्चर (विपरीत गति)। परिवर्तन का केन्द्र हृदय है जिसके ३ अंग हैं-हृ = ग्रहण, द = दान, तथा य= यम या चक्र में गति।

(ख) **परमेष्ठी**-यह आकाश गंगा है जो निर्माण का आरम्भ है, सबसे बड़ीं ईंट होने के कारण परमेष्ठी तथा ब्रह्म का १ अण्ड होने के कारण ब्रह्माण्ड है। इसमें ३ धारायें हैं- भृगु =आकर्षण, अङ्गिरा (अंगार) =विकिरण, अत्रि (अत्र = यहां)- दोनों का सन्तुलन। भृगु के ३ क्षेत्र पदार्थ के घनत्व के अनुसार हैं-वायु, आपः, चन्द्रमा। अङ्गिरा के भी ३ क्षेत्र प्रकाश या तेज के घनत्व के अनुसार हैं-अग्नि, आदित्य, यम-

अग्निरादित्ययमा-इत्येतेऽङ्गिरसः, ... वायुरापश्चन्द्रमा-इत्येते भृगवः

(गोपथ ब्राह्मण, पूर्व २/९)

अत्रि का कोई विभाजन नहीं है, इस कारण भी यह अत्रि (अ+त्रि = ३ नहीं) है। यह एक ही ऋषि हेने के काण एकर्षि है जो विकिरण केन्द्र सूर्य तथा उसकी सीमा या अवसान यम के बीच का सम्बन्ध है। यह सृष्टि का पूषण करता है-अतः पूषा है। भौतिक विज्ञान में स्रोत तथा संग्राहक (source, sink) के बीच ऊष्मा-गतिकी क्रिया का चक्र चलता है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूहरश्मीन् समूह। (ईशावास्योपनिषद्, १६)

इन धाराओं के कारण परमेष्ठी के ३ मनोता हैं-

१. इट् या इड़ा-यह ईंटो के संग्रह रूप में पदार्थ की रचना है। इसके ३ रूप हैं-अन्न उपभोग के लिये कोई भी वस्तु है। गौ निर्माण का स्थान तथा उसकी क्रिया है। श्रद्धा विभिन्न ईटों के बीच का योग-सूत्र (आकर्षण, रासायनिक बन्धन, या स्नेह)।

२. उर्क (work)-निर्माण की दृश्य क्रिया या गति उर्क है। इसकी ३ विधियां हैं-आपः मिश्रण के लिये पदार्थ या क्षेत्र है। इसमें गति होने से मिश्रण होता है तथा निर्माण के लिये माता के समान होने के कारण मातरिश्वा कहते हैं (तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति-ईशावास्योपनिषद्, ४)। विराट् निर्मित पिण्ड का आकार है जिससे वह परिवेश से विशिष्ट दीखता है (विशेषेन राजते = विराट्)। रस विश्व निर्माण का मूल पदार्थ है।

३. भोग-यह कर्त्ता या निर्माता के उपयोग लायक वस्तु (भोग) है। यह ३ प्रकार का है-दधि ठोस पदार्थ है। सूर्य के निकट मंगल तक ठोस ग्रह हैं, जिसकी कक्षा को

भागवत पुराण, स्कन्ध ५ में दधि समुद्र कहा गया है-वही आकार है। मधु सौर मण्डल का सक्रिय तेजयुक्त पदार्थ है, जिसे आदित्य भी कहा है। भागवत में मधु समुद्र यूरेनस कक्षा तक कहा गया है, जहां तक सौर वायु है-३००० सूर्य व्यास तक ईषा-दण्ड है। ईषा को यजुर्वेद (१/१) में वायवस्थ ऊर्जा कहा गया है। घृत परमेष्ठी आकाश में विरल सार पदार्थ है। इस अक्षय भण्डार से ग्रहण कर सूर्य मधु तथा घृत का निर्माण करता है।

दधि हैवास्य लोकास्य (पृथ्वी का) रूपम्, मध्वमुष्य (स्वर्ग का) घृतमन्तरिक्षस्य (सूर्य रूपी तारों के बीच का क्षेत्र)-शतपथ ब्राह्मण (७/५/१/३)

गायत्रमयनं (सूर्य से २४ अहर्गण या प्रायः यूरेनस कक्षा तक) भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य स्वर्णिनम् मधुना अमुष्मिन् लोक उपतिष्ठते। (ताण्ड्य महाब्राह्मण १३/४/१०)

घृतभाजना आदित्याः (शतपथ ब्राह्मण ६/६/१/११)

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः (ऋक् १/९०/६, यजु १३/२७)

(ग) **सौर-मण्डल**-केन्द्रीय तेज क्षेत्र ज्योति है। २७ अहर्गण तक गौ है जहां क्रतु (सृष्टि यज्ञ) सम्भव है। जहां तक सूर्य का तेज आकाश-गंगा से अधिक है, वह वाक् है। इसे विष्णु के ३ पद, या शिव-शिवतर-शिवतम क्षेत्र भी कहते हैं। वाक् का क्षेत्र इस मण्डल का आयतन है, अतः इसके मनोता को आयु भी कहते हैं।

ज्योतिर्हिरण्यम् (शतपथ ब्राह्मण ४/३/४/२१, गोपथ पूर्व २/२१, ताण्ड्य महाब्राह्मण ६/६/१०, ऐतरेय ब्राह्मण ७/१२, तैत्तिरीय ब्राह्मण १/४/४/१ आदि)

ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति। (कौषीतकि ब्राह्मण २५/३, ९)

शत योजने (१०० सूर्य-व्यास तक) ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति। (कौषीतकि ब्राह्मण, ८/३)

गौर्वै देवानां मनोता। (ऐतरेय ब्राह्मण २/१०, कौषीतकि ब्राह्मण १०/६)

साहस्रो (१०० सूर्य-व्यास तक) वा एष शतधार उत्सः (यजु १३/४९) यद् गौः (शतपथ ब्राह्मण ७/५/२/२४)

मित्र एव क्रतुः। स यदेव मनसा कामयतऽ इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः। (शतपथ ब्राह्मण ४/१/४/१)-मैत्रेय मण्डल १ लाख सूर्य व्यास तक है।

त्रिंशद् धाम वि-राजति वाक् पतङ्गाय धीमहि। प्रति वस्तोरहद्युभिः ।(ऋक् १०/१८९/३)-यह सूर्य से ३० धाम या ३३ अहर्गण तक है।

संवत्सर (सूर्य के साथ चलनेवाला क्षेत्र, यहां तक प्रकाश जाने में १ वर्ष लगता है।)



आयुः। (शतपथ ब्राह्मण ४/१/४/१०)

असौ लोक (=द्यु लोकः) आयुः। (ऐतरेय ब्राह्मण ४/१५)

आयुर्वा उष्णिक्। (२८+२ धाम तक)-(ऐतरेय ब्राह्मण १/५)

१. ज्योति-इसके ३ रूप हैं-अग्नि=केन्द्र भाग ता तीव्र तेज। विद्युत्-विद्युत् कणों का प्रवाह जो ईषा (यजु १/१) कहा गया है। ईषा दण्ड का आकार ६००० योजन (योजन = सूर्य-व्यास), अर्थात् दोनो तरफ ३००० व्यास या यूरेनस कक्षा तक है। आदित्य उसके बाहर का सौर तेज है।

२. गौ-उत्पादन या निर्माण का क्षेत्र है। पृथ्वी को पुराणों में गौ कहा गया है, ग्रीक में भी गैया (Gaiya) शब्द है। इसके चारों तरफ का तेज क्षेत्र आदित्य है जो निर्माण की शक्ति दाता है, अतः यह आदित्य की बहन (स्वसा = उसके आश्रय में) है। पृथ्वी ही निर्माण का स्थान (वसु) है, अतः यह वसु की पुत्री है। निर्माण के कारण मूल पदार्थ टूट कर नया बनाते हैं, टूटने की क्रिया रुद्र की यह माता है।

३. आयु-इस शब्द के ३ अर्थ हैं-आयतन (जितना पदार्थ इस क्षेत्र में आ सकता है।), आय (जितना धन आया), तथा आयु (शरीर में जितने दिन चलने की क्षमता है)। सौर मण्डल के ३ आयतनों की माप छन्दों में है- गायत्री (२४ अहर्गण = पृथ्वी व्यास का $२^{२१}$ गुणा)-यह सूर्य का मैत्रेय मण्डल कहा गया है जिसका आकार विष्णु पुराण २/७/८) में १ लाख योजन (सौर व्यास) कहा गया है। त्रिष्टुप् (४४ अक्षर का छन्द)-महर्लोक की माप इससे १ कम ४३ अहर्गण है, अर्थात् पृथ्वी का $२^{४०}$ गुणा। यह सूर्य के पास यह आकाश-गंगा की सर्पाकार भुजा का व्यास है। जगती (४८ अक्षर)-आकाश-गंगा की माप १ अधिक ४९ अक्षर में है। ४९ अहर्गण = पृथ्वी का $२^{४६}$ गुणा = कठोपनिषद् (३/१/१) या ऋग्वेद (१/१६४/१२) के अनुसार परार्ध ($१०^{१७}$ योजन, योजन = ५५.५ कि.मी.) ९७००० प्रकाश-वर्ष है।

सूर्य संसार की आत्मा (यजु ७/४२) होने के कारण मनुष्य की आयु का भी आधार है। हृदय में स्थित विज्ञानात्मा का प्रकाश गति से जब तक सूर्य से सम्बन्ध बना रहता है, तब तक मनुष्य की आयु है। ऐतरेय ब्राह्मण (१/५) के अनुसार, गायत्री या २४ वर्ष तक मनुष्य के गात्र का विकास होता है। उसके बाद उष्णिक् (पगड़ी) या २८ वर्ष तक वह मुख्य रहता है। उसके बाद जगती या ४८ वर्ष तक वह जगत् (समाज) से जुड़ा रहता है। कुल २४+२८+४८ =११६ वर्ष की आयु है।

(घ) **चान्द्र मण्डल**-चन्द्र कक्षा का क्षेत्र सम-ताप का है। यह इतना गर्म नहीं कि

पदार्थ टूट जाय, इतना ठण्ढा नहीं कि सृष्टि के लिये रासायनिक क्रिया नहीं हो सके। यहां सूर्य से निकलने वाले अङ्गिरा तथा बाहर से आने वाले भृगु का समन्वय होने से जीवन का विकास होता है। यह अत्रि क्षेत्र सूर्य के विकिरण तथा उसके गुरुत्वाकर्षण से बना है। सूर्य चक्षु है, अत: इस अत्रि-ज्योति को नयन-समुत्थ कहा गया है-

अथ नयन समुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्तराज्ञी गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः।(रघुवंश २/७५)

राजा के कुल के लिये रानी ने दिलीप का तेज वैसे ही धारण किया जैसे नयन (सूर्य) से निकले आकाश की अत्रि ज्योति (चन्द्र) में सुरसरि (आकाशगंगा) का तेज मिलने से पार्थिव सृष्टि होती है।

इस मण्डल के ३ मनोता हैं-

१. रेत (बालू कण)-यह परमेष्ठी के बिखरे सोम के सघन होने से बना पदार्थ है। इसकी सघनता के ३ रूप हैं-सोम द्रव की तरह फैला है। नाभानेदिष्ट का केन्द्र (नाभि) है, पर सीमा नहीं है। हिरण्य में केन्द्र तथा सीमा दोनों हैं।

२. यश-यह रेत का प्रभाव है। मनुष्य के कर्मों का प्रभाव भी यश है। इसके ३ स्तर हैं-सुरा (मद्य)-मन का नियन्त्रण समाप्त करता है। पशु अन्य के द्वारा भोग या व्यवहार किये जाते हैं। सोम कई स्थानों पर बिखरा है।

३. श्रद्धा- यह दो भूतों के बीच का सम्बन्ध है। श्रवा (रेखा) + धा (धारण)-२ के बीच १ रेखा में धारण होता है। रैखिक सम्बन्ध सूत्र है। यह ३ प्रकार का है-पत्नी-बराबर का सम्बन्ध। भारत में पति-पत्नी दोनों का अर्थ स्वामी है। असुर विचार में पत्नी सेवा के लिये है-अत: उसे तवायफ (= wife) कहते है। आप: सम्बन्ध में २ पदार्थ जल की तरह मिल जाते हैं, उनका अलग रूप नहीं होता। तेज सम्बन्ध दूर का है-जैसे दर्शन, फोन पर बात।

(ङ) **भूमण्डल**-इसके मनोता हैं-वाक्, गौ, द्यौ।

१. वाक्-यह पृथ्वी का क्षेत्र है। ३ छन्दों द्वारा इसकी माप है-गायत्री (२४ अक्षर), त्रिष्टुप् (४४), जगती (४८)। अहर्गण माप में यह सौर पृथ्वी (मैत्रेय मण्डल, २४ अहर्गण = पृथ्वी का $२^{२१}$ गुणा), महार्लोक (४३ अहर्गण या पृथ्वी का $२^{४०}$ गुणा-प्राय: १४०० प्रकाश वर्ष व्यास का गोला-व्यास के बराबर आकाशगंगा की सर्पिल भुजा की मोटाई है), तथा आकाश-गंगा (४९.३ अहर्गण= पृथ्वी का $२^{४६.३}$ गुणा)

२. गौ-पृथ्वी ३ रूपों में गौ है-यह निर्माण का स्थान, साधन, तथा क्रिया (गति) है।



सौर-मण्डल की तरह इसके भी ३ भाग हैं, किन्तु इसकी अपनी ऊर्जा नहीं है। इसका स्रोत सूर्य का विकिरण है जो सावित्री (जन्म देनेवाली) है। पृथ्वी को उसका जो भाग मिलता है, वह गायत्री है।

३. द्यौ-यह पृथ्वी का आकाश है। इसके क्षेत्र हैं-पृथ्वी-यहां तक के पिण्ड इसके गुरुत्व में घूम सकते हैं। यह ९ अहर्गण या $२^{६}$ =६४ गुणा है। चन्द्रमा प्राय: ६१ त्रिज्या दूरी पर है। १०० गुणा बड़े क्षेत्र को पुराणों मे जम्बू द्वीप कहा गया है (५०००० पार्थिव योजन त्रिज्या)। दूसरा क्षेत्र अन्तरिक्ष (वराह) है, जहां के पदार्थ से पृथ्वी का निर्माण हुआ। यह १५ अहर्गण या $२^{१२}$ गुणा बड़ा= शुक्र कक्षा के ६०% दूरी तक है। बाहरी क्षेत्र है द्यौ जो २१ अहर्गण तक, अर्थात् पृथ्वी का $२^{१८}$ गुणा है। यहां तक के ग्रह (शनि तक) पृथ्वी गति पर प्रभाव डालते हैं।

यहां इनकी सारणी दी जा रही है। विस्तृत उद्धरण प. मोतीलाल शास्त्री के ईशावास्य उपनिषद्, विज्ञान भाष्य, खण्ड १ में हैं।

मन-प्राण-वाक्-

| व्यक्ति | विश्व | मण्डल |
|---|---|---|
| वाक् | प्राण | स्वयम्भू |
| प्राण | आप: | परमेष्ठी |
| मन | वाक् | सौर |
| प्राण | अन्न | चान्द्र |
| वाक् | अन्नाद | भू |

३ **मनोता**-

| मण्डल | वाक् | प्राण | मन |
|---|---|---|---|
| १. स्वयम्भू | वेद | सूत्र | नियति |
| २. परमेष्ठी | इड़ा | ऊर्क | भोग |
| ३. सौर | ज्योति | गौ | द्यौ |
| ४. चान्द्र | रेत | यश | श्रद्धा |
| ५. भू | वाक् | गौ | द्यौ |

प्रति मनोता के ३-३ भाग-

| **मनोता** | **वाक्** | **प्राण** | **मन** |
|---|---|---|---|
| वेद | ऋक् | यजु: | साम |

| सूत्र | सत्य | ऋत | सत्य-ऋत |
|---|---|---|---|
| नियति | हृ (विष्णु) | द (इन्द्र) | य (ब्रह्मा) |
| इड़ा | अन्न | गौ | श्रद्धा |
| ऊर्क | आप: | विराट् | रस |
| भोग | दधि | घृत | मधु |
| ज्योति | अग्नि | विद्युत् | आदित्य |
| गौ | वसु (पुत्री) | रुद्र (माता) | आदित्य (बहन) |
| आयु | गायत्री | त्रिष्टुप् | जगती |
| रेत | सोम | नाभानेदिष्ट | हिरण्य |
| यश | सुरा | पशु | सोम |
| श्रद्धा | पत्नी | आप: | तेज |
| वाक् | गायत्री | त्रिष्टुप् | जगती |
| गौ | वसु (पुत्री) | रुद्र (माता) | आदित्य (बहन) |
| द्यौ | पृथिवी | अन्तरिक्ष | द्यौ |

(३) **सौर मण्डल** के ३ क्षेत्र विष्णु के ३ पद हैं। इसमें ताप, तेज, प्रकाश के क्षेत्र सूर्य से १०$^{३}$, १०$^{६}$, १०$^{९}$ गुणा बड़े हैं, अर्थात् सूर्य व्यास को योजन मानने पर इतने व्यास के क्षेत्र हैं। हर क्षेत्र की भूमि इसका १०वां भाग है।

(४) **मनुष्य शरीर** में इसके २ अर्थ हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व या श्री उसके सिर में है। यह भूमि है, क्योंकि यह आधार है। इसका १० गुणा पुरुष का शरीर है-उसमें १० अंगुलि से हर क्रिया होती है। पुरुष शरीर को ३ लोक में विभाजित करने पर नाभि से नीचे भू, नाभि-कण्ठ के बीच भुव:, तथा सिर स्व: लोक हैं। भू या नाभि से १० अंगुल ऊपर हृदय है जहां पुरुष (ईश्वर) का निवास है (गीता १८/६१)।

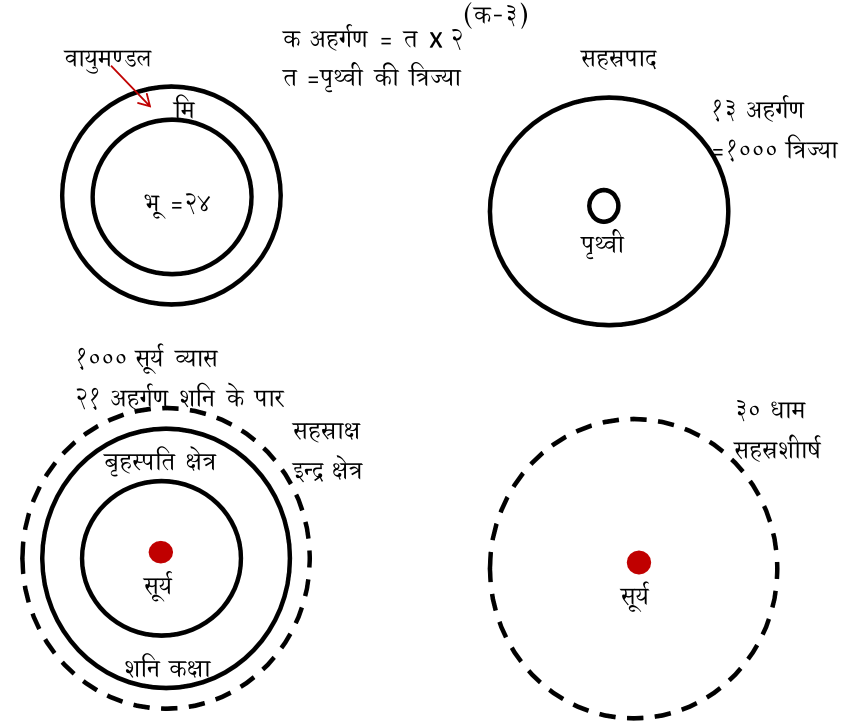
(५) **पृथ्वी**-भूमि का सामान्य अर्थ है पृथ्वी ग्रह। ठोस पिण्ड भू (भ = २४वां अक्षर) है, आवरण रूप वायु-मण्डल के साथ २५वां अक्षर म मिलाकर भूमि है। भूमि के १००० सिर, तथा २००० आंख और पैर हैं। इसका २४/२५ भाग ठोस पृथ्वी होगी। उसकी परिधि है २४/२५X १०००X २००० X २००० अंगुल

= २४/२५X १/९६ X ४X १०$^{९}$ दण्ड = ४ X १०$^{७}$ दण्ड

मीटर की मूल परिभाषा के अनुसार यह पृथ्वी की परिधि है। अत: यहां-१ दण्ड = १ मीटर।



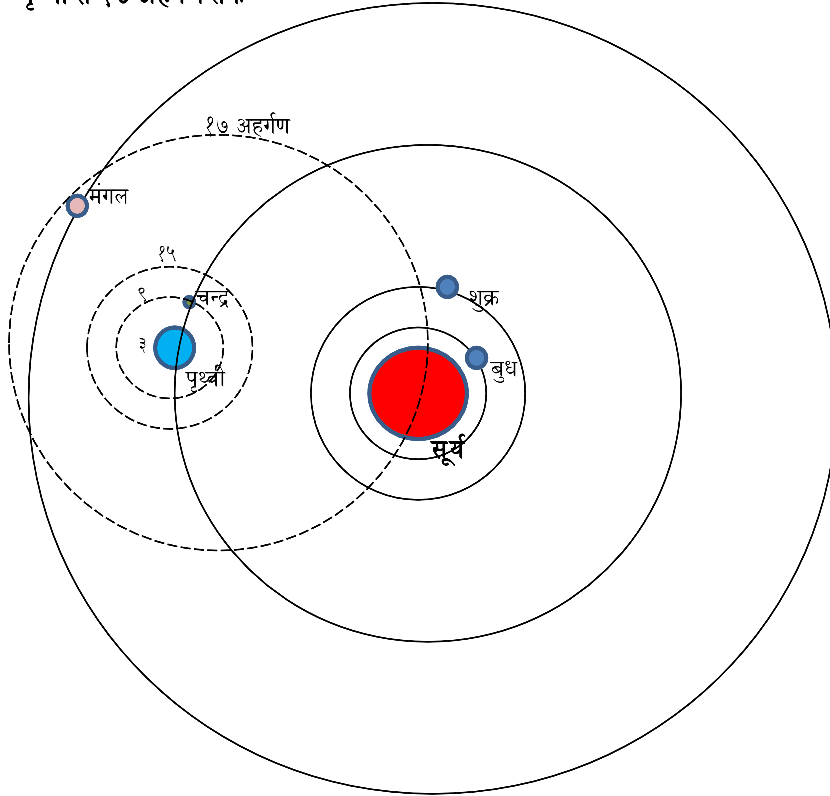
सौर मण्डल के पाद, अक्ष, शीर्ष




(६) **प्रकृति-पुरुष**-प्रकृति के २४ गुण भू (भ २४वां अक्षर है) या सृष्टि है। भू =सत्तायाम् (१/१) या भू प्राप्तौ (मिलना या एकत्र होना। प्रकृति के द्वारा विभिन्न कणों को मिलाकर सृष्टि होती है। २५वां तत्त्व पुरुष का प्रतीक २५वां अक्षर म है। यह निर्मित पदार्थ की सीमा है। चेतन तत्त्व उस सीमा से भी १० गुणा बड़ा है।

(७) **सृष्टि क्रम**-किस स्थान पर सृष्टि आरम्भ हुयी यह नहीं कहा जा सकता। कोई भी विन्दु सृष्टि का मूल केन्द्र या शीर्ष कहा जा सकता है। ऐसे अनन्त शीर्ष हैं, अत: सहस्रशीर्ष का अर्थ अनन्त शीर्ष है। आरम्भ के बाद क्रिया या यज्ञ का केन्द्र उसका

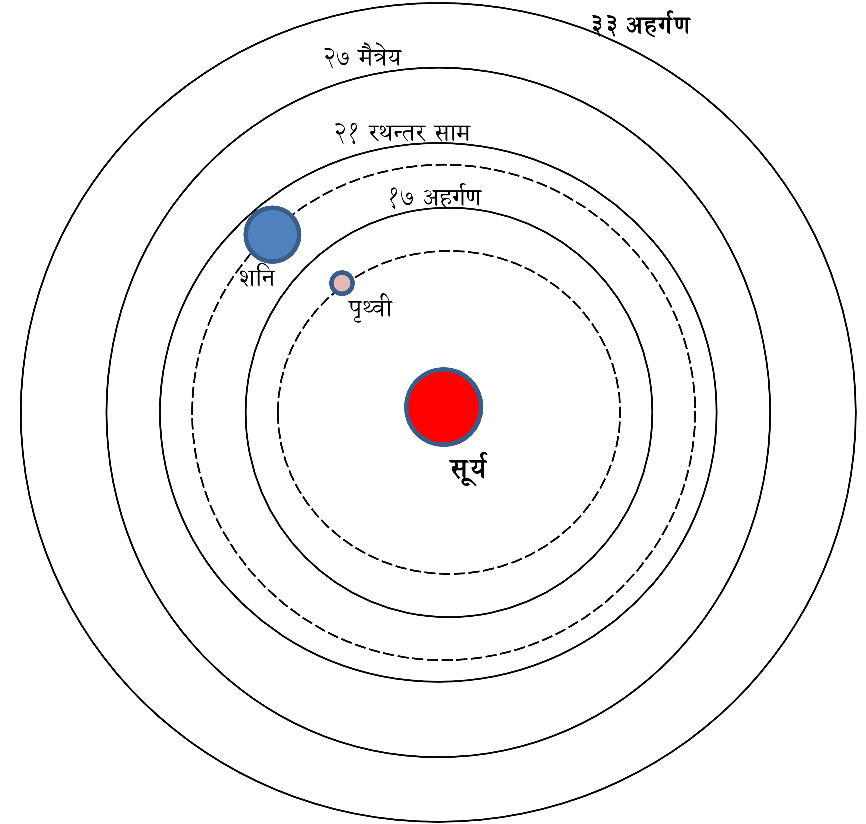
अक्ष है, यह भी अनन्त है। अणु से अणु या महत् से महान् जितने भी पिण्ड हैं, वे परिणाम ये पद हैं। ये भी सहस्र या अनन्त हैं। यहां पृथ्वी के निकट का क्षेत्र दिखाया जा रहा है, जो उसके द्यौ मी माप है-




सौर मण्डल का विस्तार ३३ अहर्गण तक है। इसमें १७ अहर्गण से ३३ अहर्गण तक के क्षेत्र अगले चित्र में हैं। पृथ्वी से १७वें अहर्गण पर सूर्य है, अत: सूर्य को प्रजापति कहते हैं। शनि तक के ग्रह पृथ्वी की गति पर प्रभाव डालते हैं, अत: वहां तक का क्षेत्र चक्र कहा जाता है। इसके भातर के ग्रहों का संयुक्त चक्र १ युग (४३, २०,०००

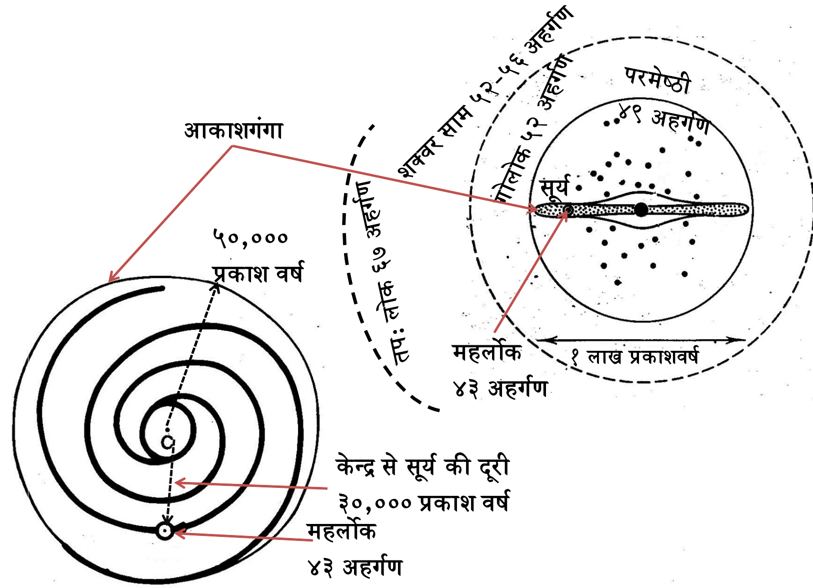


वर्ष का है। इस चक्र या रथ को २१वां अहर्गण पार कारता है, या तरता है, अत: इसे रथन्तर साम कहते हैं।




२७वें अहर्गण तक मैत्रेय मण्डल है, जो सूर्य से १ लाख योजन दूरी तक है। यहां तक के पिण्ड सूर्य के आकर्षण में घूम सकते है। इसके बाद ३३ अहर्गण तक सूर्य का प्रकाश आकाश-गंगा से अधिक है। यह सौर मण्डल की सीमा है।

पृथ्वी कक्षा के भीतर तक सूर्य का ताप क्षेत्र है। उसके बाद शनि तक तेज (प्रकाश) का क्षेत्र है। इसके बाद सीमा तक प्रकाश-क्षेत्र है। ये ३ क्षेत्र विष्णु के ३ पद हैं। जहां सूर्य विन्दु मात्र दीखता है, वह विष्णु का परम पद या ब्रह्माण्ड है। यह ब्रह्म का १ अण्ड मात्र है। सबसे बड़ी ईंट होने के कारण परमेष्ठी है। उसमें केन्द्रीय भाग चक्के की तरह घूमता है, जो आकाश-गंगा है। आकाश-गंगा तथा परमेष्ठी का व्यास प्राय: १ लाख प्रकाशवर्ष है।




आकाशगंगा में २ मुख्य सर्पाकार भुजायें है। दूसरी भुजा के बाहरी भाग में त्रिज्या के प्राय: २/३ दूरी पर सूर्य स्थित है। यहां भुजा के व्यास का गोला महर्लोक है, जा पृथ्वी का $२^{४०}$ गुणा है। ब्रह्माण्ड के चारों तरफ न्यूट्रिनो कोरोना फैला है, जिसे गोलोक (किरण का क्षेत्र) कहा गया है। इसे वेद में कूर्म चक्र कहते हैं। उसके बाहर का क्षेत्र अन्धकार पूर्ण है अत: उसके साम (क्षेत्र) को शक्वर (शक्वरी = रात्रि) कहते है। दृश्य जगत् ६७ अहर्गण तक है, जिसे तप: लोक कहते हैं।



सत्य लोककाल्पनिक मूल स्रोत है जो दृश्य जगत् तप: लोक से १० गुणा बड़ा है। यही पुरुष है।

## (२) सूक्त २-

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

अथर्व (१६/६/४)- उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह।

ऋग्वेद-पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।....

पुरुष यह सम्पूर्ण जगत् है जो भूत में था तथा भविष्य में भी होगा। वह अमृतत्व का ईश है तथा अन्न (स्थूल पिण्ड) से बढ़ता है या उसी द्वारा समझा जा सकता है।

**शब्दार्थ**-(१) **भूत**-यह चर अचर सभी सृष्टि है। भू सत्तायाम् (१/१) +क्त, भवति। भूत = जो हो चुका है।

(२) **भाव्यम्** (भव्यम्)-जो होने वाला है। भू + यत् =भव्यम्। भाव्यम् जो भावना या कल्पना से होता है। पुरुष के सङ्कल्प से सृष्टि आरम्भ हुयी।

सोऽकामयत् । बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदँ सर्वमसृजत यदिदं किं च। (तैत्तिरीय उपनिषद् २/६/३)

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। (ऐतरेय उपनिषद् १/१)

(३) **अमृतत्वस्य**-अमृत का भाव अमृतत्व है। नञ् + मृङ् प्राणत्यागे (६/११३) + क्त = अमृत। सदा बने रहने का भाव। इसका विपरीत है मरना या नष्ट होना। जिस तत्त्व से मनुष्य अमर हो जाता है, वह अमृत है। अमृत वही हो सकता है जो सदा एक जैसा हो। जिसका निर्माण होता है, वह पूर्व रूप का परिवर्तन मात्र है। बदलना उसका गुण है, अत: वह अवश्य मरेगा।-

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।१७।

जातस्य हि ध्रुवोर्मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।२७।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।२८। (गीता, अध्याय,२)

आगे के श्लोक में भी स्पष्ट है कि जो विश्व का मूल स्रोत जल जैसा रस रूप है वही अमृत है, उसी अविनाशी से यह जगत् हुआ है। उससे जो मुक्त या अलग हो गया, वह मुच्यु या मृत्यु है-स समुद्रादमुच्यत स मुच्युरभवत्तं वा एतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते परोक्षेण। (गोपथ ब्राह्मण, पूर्व १/७)

अशनाया हि मृत्युः। (शतपथ ब्राह्मण १०/६/५/१)= भोजन की इच्छा मृत्यु है।
(४) **ईशानः**-इश् ऐश्वर्ये (२/१०) + शानच् = ईशानः। महादेव की अष्टमूर्त्ति में एक। परमेश्वर, स्वामी। पर-ब्रह्म अर्थ में-
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते।१२।
ईशानो भूतभव्यस्य एवाद्य स उ श्वः ।१३। (कठोपनिषद् २/१/१२-१३
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३/१७)
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति (श्वे. ४/११)
ईशानः प्राणदः प्राणः (विष्णु सहस्रनाम, ८)
(५) **अन्न**-इसे प्राणी खाते हैं, यह भी प्राणियों को खाता (अदति)है, अतः अन्न है-
अद्यतेऽत्ति च भूतानि, तस्मादन्नं तदुच्यते। (तैत्तिरीय उपनिषद् २/२/२)
यहां-अद भक्षणे (२/१) का प्रयोग है। अन प्राणने (२/६३, ४/६४) से भी अन्न सिद्ध होता है।
यज्ञो हि देवानामन्नम् (शतपथ ब्राह्मण ५/१/१/२) अन्नं सोमो अन्नादश्च(शत. १/५/२/१७) अन्नाद् भवन्ति भूतानि (गीता ३/१४)
सस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते। आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्मुदाहृतम्।।
ब्रह्महत्याकृतं पापमन्नदानात् प्रणश्यति। अन्नदः पापकर्माणि पूतः स्वर्गे महीयते।।
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्। सर्वकाम समायुक्तः प्रेत्य चेहाधिकं शुभम्।।
अन्नमूर्जस्थलं लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नरः। सत्तां पन्थानमाश्रित्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
अन्ने प्रतिष्ठिता लोका इति।
जीवदानात् परं दानं न किञ्चिदपि विद्यते। अन्नाज्जीवति त्रैलोक्यं त्रैलोक्यस्येह तत्फलम्।।
(६) **अतिरोहति**-रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (१/५९८)= बीज द्वारा जन्म या प्रादुर्भाव होन। आरोहण का अर्थ ऊपर चढ़ना, अवरोहण =नीचे उतरना है। अति रोहण का अर्थ है सीमा से ऊपर चढ़ना-अति = अधिक। वृक्ष या सीढ़ी से हम ऊपर चड़ते हैं तथा उसके द्वारा उससे भी ऊपर उठ जाते हैं। वृक्ष स्वयं सदा बड़ता रहता है, प्रति वर्ष उसके तना पर नयी परत आती है, नयी शाखा तथा पत्ते बनते हैं। पशु का हर अङ्ग समान रूप से बड़ता है।
**व्याख्या**-(१) **कार्य-कारण**-भूत-भविष्य में कार्य-कारण सम्बन्ध है। जो पहले की स्थिति है, उसके कारण अगला निर्माण तथा स्थिति होती है। अतः वर्तमान काल की क्रिया, भूत में उसका कारण, तथा भविष्य में उसका परिणाम-सभी पुरुष है। सजीव-


निर्जीव की जितनी क्रिया, कारण परिणाम हैं, सभी पुरुष है।
(२) **फलित ज्योतिष**-वृक्ष के समान वृद्धि का अर्थ है कि नये निर्माण में पुराना बिल्कुल लुप्त नहीं होता। पुरानी चीजों के अवशेष तथा कुछ प्रभाव रह जाते हैं। इनसे आज की स्थिति देखकर भूत या भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। फलित ज्योतिष का यही आधार है। ज्योतिष वेद का नेत्र कहाजाता है, इसके द्वारा ही विश्व को देखा जा सकता है। इसके फलित भाग द्वारा भूत तथा भविष्य का ज्ञान होता है।
(३) **अमृत**-विश्व का मूल तत्त्व चिरस्थायी है, उसे अमृत कहा जाता है। यह रस रूप है, अर्थात् हर समय, स्थान तथा दिशा में समरूप है। मूल तत्त्व के बारे में इस धारणा को सृष्टि का पूर्णत्व (PCP = Perfect Cosmological Principle) कहा जाता है जो सृष्टि के सभी आधुनिक सिद्धान्तों का आधार है। इस तत्त्व का अनुभव या ज्ञान का आरम्भ सृष्टि के अन्तिम चरण से होता है। यह पदार्थ के स्थूल पिण्ड हैं, जो अन्न के कणों के समान है, अतः इसे अन्न कहते हैं। उसी रूप के कारणों की खोज हमें मूल तत्त्व तक पहुंचाती है। शरीर के भीतर स्थूल शरीर का केन्द्र मूलाधार है, जो सबसे नीचे मल-मूत्र द्वारों के बीच स्थित है। उससे आरम्भ कर मेरुदण्ड के सुषुम्ना मार्ग से क्रमशः ऊपर उठ कर मनुष्य सिर के ऊपर स्थित सहस्रार चक्र तक पहुंचता है, जो मूल ब्रह्म का रूप है। इस क्रम का चित्र विश्व वृक्ष में दिया गया है। मूलाधार (स्थूल शरीर) के ऊपर के चक्र हैं-स्वाधिष्ठान (द्रव या जल), मणिपूर (तेज, अग्नि), हृदय (वायु, गति, सम्पर्क), विशुद्धि (आकाश), आज्ञा (मन, जीव-ईश्वर का द्वैत)। सृष्टि क्रम में स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर का नाम बदल गया है, पर तत्त्वों का क्रम वही है। यह उत्थान-क्रम शङ्कराचार्य के सौन्दर्य-लहरी, ९ में है-
महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्य विहरसि (से)।
आदि शक्ति मूलाधार में पृथ्वी रूप में, मणिपूर में जल रूप में, स्वाधिष्ठान में अग्नि रूप में, हृदय में मरुत्, उसके ऊपर (विशुद्धि में) आकाश, तथा मन भ्रूमध्य (के पीछे आज्ञा चक्र) में है। कुलपथ (सुषुम्ना मार्ग) से ऊपर उठ कर वह सहस्रार पद्म में पहुंचती है तथा पति (ब्रह्म, महेश्वर) के साथ विहार करती है।

(४) **आत्म-गति**-विश्व के विभिन्न स्तरों के अनुसार आत्मा के कई स्तरों का वर्णन किया गया है। हर स्तर मृत्यु के बाद अपने मूल स्रोत में मिल जाता है। स्थूल शरीर पृथवी का भाग है, अतः मृत्यु के बाद इसे पार्थिव शरीर कहा जाता है। यह पृथ्वी के ४ स्थूल तत्त्वों में ४ प्रकार से मिल जाता है-मिट्टी (मृत् या मृदा), जल, वायु या अग्नि के माध्यम से-

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वास्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे। (अथर्व १८/२/३४)

चान्द्र मण्डल का शरीर १० दिन में बनता है, इसे दश गात्र कहते हैं। पार्थिव शरीर चन्द्र की १० परिक्रमा (२७३ दिन) में बनता है, अतः प्रेत शरीर (चान्द्र) पृथ्वी का १० परिक्रमा या १० दिन में बनता है।

अथ यद्दशमेऽहन्प्रसूतो भवति तस्माद्दशपेयोऽथो यद्दश दशैकैकं चमसमनु प्रसृप्ता भवन्ति तस्माद्वेव दशपेयः। (शतपथ ब्राह्मण ५/४/५/३)
प्रतिष्ठा दशममहः। (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् २७/२, २९/५)
अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/६/१)

यह चन्द्रमा की १३ परिक्रमा या १२ चान्द्र-मास में क्रमशः ऊपर उठ कर चान्द्रमण्डल के बाहरी भाग में पहुंचता है। इसकी बीच की स्थितियों के लिये मासिक श्राद्ध किया जाता है। चन्द्र के ऊर्ध्व भाग में पहुंचने पर यह पृथ्वी-चन्द्र के साथ सूर्य की वार्षिक परिक्रमा करता है। उसके लिये वार्षिक श्राद्ध होता है। उसका एक भाग सूर्य किरणों के दबाव (radiation pressure) या गाय की पूंछ (गो = किरण) से सौर-मण्डल में ऊपर (बाहर) की तरफ क्रमशः बढ़ता है। वह अन्ततः शनि (यम= अन्धकार भाग, या धर्म =प्रकाशित भाग) तक जाता है। मार्ग में शनि का वलय मिलता है जिसे पुराणों में वैतरणी नदी कहा गया है। वेद में इसके ३ खण्डों को पीलुमती, उदन्वती, प्रद्यौ (paradise) कहा गया है।

सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा (अथर्व १८/१/३५)
सूर्य ज्योति से धारण द्वारा यह आकाश में चलता है।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत।
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। (अथर्व १८/१/४९)

मनुष्य रूप में वैवस्वत यम भारत के पश्चिम यमन के राजा थे, जिनका श्राद्ध के लिये उपदेश कठोपनिषद् में है। आकाश में यम सहस्राक्ष की सीमा पर शनि ग्रह है। वहां



गव्यूति (गो या किरण) द्वारा आत्मा पहुंचती है।
सूर्य चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। (अथर्व १८/२/७)
सूर्य की चक्षु से (सहस्राक्ष) तक आकाश में वात (सौर वायु से) जाओ।
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा। (अथर्व १८/२/१२)
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते। (अथर्व १८/२/३८)

इस प्रद्यौ स्वर्ग तक जाने में ६० वर्ष लगते हैं, यह अङ्गिरा (सूर्य से कणों के प्रवाह) के कारण है-

आदित्याश्च ह वा आङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त-वयं पूर्वे एष्यामो वयमिति। ते हाऽऽदित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः, पश्चेवाङ्गिरसः, षष्ट्यां वा वर्षेषु। (ऐतरेय ब्राह्मण १८/३/१७)

सौर मण्डल को गय प्राण पार करता है, अतः उसको गय कहते हैं। इसके लिये गया श्राद्ध किया जाता है, क्योंकि पृथ्वी पर सूर्य गति की सीमा कर्क रेखा है तथा वहां सबसे गर्म स्थान गया है।

आदित्य तथा अङ्गिरा पहले स्वर्ग पहुंचने की स्पर्धा में थे। आदित्य (तेज) पहले पहुंच गये। पीछे अङ्गिरा ६० वर्ष में पहुंचे। अङ्गिरा क्षेत्र का केन्द्र (सबसे बड़ा ग्रह) बृहस्पति है, जिसे उसका पुत्र आङ्गिरस कहते हैं। बृहस्पति की ५ परिक्रमा ६० वर्ष में होती हैं, जो ६० वर्ष के गुरु वर्ष का चक्र है। १२ वर्ष के १ चक्र को १ होता कहा गया है-जिसमें १२ आदित्य (१२ वर्ष) हैं-

आदित्याश्चाङ्गिरसश्च सुवर्गे लोकेऽस्पर्धन। वयं पूर्वे सुवर्गं लोकमियाम वयं पूर्व इति। त आदित्या एतं पञ्च होतारमपश्यन्। सम्वत्सरो वै पञ्चहोता। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/३/५)

स यदाह गयोऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै चन्द्रमा भूत्वा सर्वांल्लोकान्गच्छति तद्यद्गच्छति तस्माद् गयस्य गयत्वम्। (गोपथ ब्राह्मण, पूर्व ५/१४)

दो प्रकार के व्यक्ति सूर्य मण्डल को पार करते हैं-योगयुक्त संन्यासी या सम्मुख युद्ध में मरनेवाला (शुक्रनीति ४/७/३०२, विदुर गीता)-

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डल भेदिनौ। परिव्राड्योगयुक्तो वा रणे चाभिमुखं हतम्।

ब्रह्माण्ड का अंश महानात्मा सौर मण्डल को पार करता है। १ कल्प के बाद वे महर्लोक पहुंचते हैं (विष्णु पुराण.२/७/१२-कुरान के अनुसार सौर-पृथिवी में

कयामत तक रहते हैं)।

(५) **दूर्वा गति**-जो भी वर्तमान स्थान है, वह अन्न है, उससे ऊपर उठा जा सकता है। इसका प्रतीक दूर्वा (दूब, घास) है, जो प्रति गांठ से अंकुरित होकर बढ़ती है, उसी प्रकार मनुष्य भी मेरुदण्ड के गांठ प्रति चक्र के द्वारा ऊपर उठता है। (भौतिक अर्थ) प्रति पर्व (जन्म, विद्या, विवाह, जीविका आदि) से जीवन का नया क्रम आरम्भ होता है। प्रत्येक पर्व से ऊपर उठना है।(ज्योतिषीय अर्थ) सृष्टि क्रम में स्वायम्भुव, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र, पृथिवी-ये ५ पर्व हुये जिनका प्रतिरूप मनुष्य शरीर तथा विश्व है। संहार (लय) क्रम में शरीर के मूल रूप विपरीत क्रम में पृथिवी से १-१ पर्व होकर ऊपर उठते हैं। इस भाव से हम दूर्वा दान करते हैं-

काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ति परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च। (वा. यजु १३/२०)

प्रजापति के प्राणों का अंश धूर्वा है, जिसका प्रतीक दूर्वा है-

स (प्रजापतिः) अब्रवीत्। अयं (प्राणः) वाव मा धूर्वीदिति यदब्रवीदधूर्वीन्मेति तस्माद् धूर्वा। धूर्वा ह वै तां दूर्वेत्याचक्षते परोऽक्षम्। तदेतत् क्षत्रं प्राणो ह्येष रसो (यद् दूर्वा) लोमान्यन्या ओषधयः, एतां (दूर्वां) उपदधत् सर्वा ओषधीरुपदधाति। (शतपथ ब्राह्मण ७/४/२/१२)

दूर्वा के रस से प्राणों की पुष्टि होती है। चावल, गेहूं-सभी अन्न दूर्वा द्वारा ही होते हैं। अतः इसे ओषधियों का धारक कहा गया है। फल (चावल का दाना) के पकने पर यह नष्ट हो जाता है, अतः यह ओषधि है। वनस्पति में हर वर्ष फल होते हैं।

(६) **अमृत-मार्ग**-जीवन यापन करने के लिये कई काम करने पड़ते हैं, जिससे हमारा दैनिक भोजन मिल सके। इससे मनुष्य मृत्यु तक काम चलाता है। किन्तु विद्या (एकत्व दर्शन) या सम्भूति (समाज के लिये स्थायी काम) मरने के बाद भी रहता है। उससे मनुष्य अमृत का उपभोग करता है। सांख्य दर्शन में इसे सञ्चर-प्रति सञ्चर कहा गया है। सञ्चर का अर्थ है गति। प्रति सञ्चर विपरीत गति है। दो प्रकार की विपरीत क्रियाओं से विश्व का कार्य चलता है। इसे २ प्रकार की नियति (परिणाम, नीयत = उद्देश्य) भी कहा गया है। अतः विश्व को द्विनियति (दुनिया) भी कहते हैं। ईशावास्योपनिषद् में इसे सम्भूति-असम्भूति कहा गया है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः।१२।



अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।१३।
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयँ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।१४।

सम्भूति निर्माण की क्रिया है, उसका विपरीत विनाश है। विनाश कार्य से लगता है कि मनुष्य अन्धकार में जाता है। पर आश्चर्य है कि सम्भूति का उपासक और घने अन्धकार में जाता है। कारण है कि कोई नया निर्माण नहीं होता, पुराना ही नये रूप में आता है। पुराने रूप का विनाश भी सन्तुलित रूप में करना पड़ता है। उसका मोह रहने से व्यक्ति अकर्मण्य होकर अधिक अन्धकार में जाता है। विनाश का मर्म समझ कर मृत्यु तक की यात्रा पार होती है। उपयोगी निर्माण करने से मनुष्य अमर हो जाता है, पर उसके लिये दोनों का सन्तुलन जरूरी है।

(७) **विद्या-अविद्या**-यह दोनों विपरीत लगते हैं। समान्यतः विद्या का अर्थ ज्ञान मानते हैं। परन्तु अविद्या का अर्थ ज्ञान का अभाव या अज्ञान नहीं है। विद्या का अर्थ समन्वय या एकीकरण है। अविद्या का अर्थ है अपरा विद्या या वर्गीकरण। आज इसे ही विज्ञान कहते हैं। अमरकोष में भी कहा है-मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः। इसे मुण्डकोपनिषद् (१/१) में और स्पष्ट किया गया है-

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।४।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।५।।

अर्थात् ब्रह्मविद् २ प्रकार की विद्या कहते हैं, परा तथा अपरा। उसमें परा का विभाजन २ वेदों तथा ६ अङ्गों में हुआ। परा वह है जिससे अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) की प्राप्ति हो, अर्थात् सबमें एकत्व का दर्शन हो।

ईशावास्योपनिषद् इन २ प्रकार की धाराओं का समन्वय कहता है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।६।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।७।

जो सभी भूतों को अपने में तथा सभी में अपने को देखता है, उसे सन्देह नहीं होता। सभी भूतों को अपने समान समझने पर कोई मोह या शोक नहीं होता, वह भेद देखने पर भी एकत्व का बाद में अनुभव करता है। पश्यति का अर्थ है देखना-बाहर से अलग अलग दीखता है। उसके बाद तत्त्व रूप में एकत्व का अनुभव होता है। बाद की क्रिया के लिये अनु उपसर्ग है-अनुपश्यतः।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।८।।
मूल तत्त्व अव्यक्त है। उससे निर्माण के लिये कई आवरणों में घेरना (पर्यगात्) पड़ता है। निर्माता को कवि कहा गया है। वह अनन्त फैले पदार्थ को कवल (एक बार में भोजन ग्रहण करने की मात्रा-कौर) में बांट कर पदार्थ बनाता है। भाषा का कवि भी शब्दों को छन्द (वाक्य या काव्य के छन्द-पाद) में बांट कर रचना करता है। निर्माण के कारण ये अन्तर होते हैं-

| **अव्यक्त मूल** | **व्यक्त निर्माण** |
|---|---|
| शुक्र (तेज) | तम (व्यक्त वाणी में कुछ छिप जाता है) |
| अकाय | काया-युक्त (शरीर का आकार प्रकार) |
| अव्रण | व्रण (कम अधिक का भेद, घाव या क्षत) |
| अस्नाविर | स्नाविर (भागों में परस्पर सम्बन्ध-स्नायु सूत्र से) |
| शुद्ध | अशुद्ध (कई प्रकार के तत्त्वों का मिश्रण) |
| अपापविद्ध | पापविद्ध (कई खण्डों में बंटा, विभाजक क्षेत्र पाप है) |

कवि मनीषी होने के कारण परिभू क्रिया द्वारा स्वयम्भू होता है।
अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः।९।
जो केवल एक प्रकार की शाखा (अविद्या) का अध्ययन करता है (तथा उससे अन्य का सम्बन्ध नहीं जानता), वह पूर्ण ज्ञान से वञ्चित अन्धकार में रहता है। उससे भी घने अन्धकार में वह है, जो केवल विद्या में रत है, अर्थात् केवल एकत्व मानता है पर किन अलग-अलग चीजों (अविद्या) का एकत्व है, यह नहीं जानता।
अन्यदेवाहुर्विद्ययादन्यदाहुरविद्यया। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।१०।
विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयँ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।११।
कुछ कहते हैं कि विद्या द्वारा ज्ञान होता है। कुछ अविद्या द्वारा कहते हैं-ऐसा मैंने धीर विचारकों से सुना है। निष्कर्ष यह है कि विद्या-अविद्या दोनों का ही ज्ञान जरूरी है। अविद्या द्वारा जीवन-यापन होता है, अर्थात् मृत्यु को पार करता है। विद्या से अमर होता है।
(८) **विश्वमय पुरुष**-सम्पूर्ण विश्व ही पुरुष का शरीर कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (३/७/३-२३) में इनका विस्तार से उल्लेख है-
यः पृथिव्या तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः

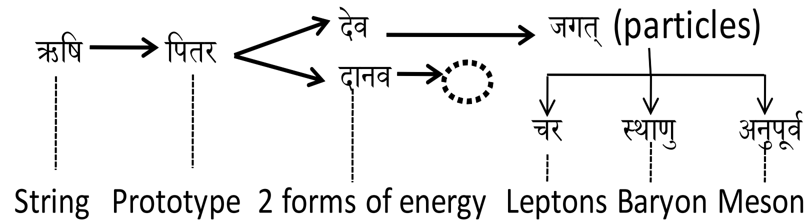


पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यामृतः।३। यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरो यमयति।४। यस्याग्निः शरीरम्।५। यस्यान्तरिक्षं शरीरम्।६। यस्य वायुः शरीरम्।७। यस्य द्यौः शरीरम्।८। यस्यादित्यः शरीरम्।९। यस्य दिशः शरीरम्।१०। यस्य चन्द्रतारकं शरीरम्।११। यस्याकाशः शरीरम्।१२। यस्य तमः शरीरम्।१३। यस्तेजसि तिष्ठंस्तेजोऽन्तरः यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यामृतः।१४। यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्।१५। यस्य प्राणः शरीरम्।१६। यस्य वाक् शरीरम्।१७। यस्य चक्षुः शरीरम्।१८। यस्य श्रोत्रं शरीरम्।१९। यस्य मनः शरीरम्।२०। यस्य त्वक् शरीरम्।२१। यस्य विज्ञानं शरीरम्।२२। यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यं रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं या रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यामृतः।२३।

## (३) सूक्त ३-

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।
सामवेद (पूर्वार्चिक ६/१३/५)-पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।
अथर्व (१९/६/३)-तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।
**अर्थ**-यह सब (भूत-वर्तमान-भविष्य का विश्व) उस (पुरुष) की महिमा है। पूरुष उससे भी बड़ा है। विश्व तथा भूत इसका १ ही पाद है, ३ पाद आकाश में अमृत हैं।
**शब्दार्थ**-(१) एतावान्, तावान्-इतना, यहां तक।
(२) महिमा-महत् + इमनिच् = महिमन्। महत्व, ईश्वर, ऐश्वर्य भेद।
(३) ज्यायान्-अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः = वृद्ध। प्रशस्य का अदिष्ट रूप ज्य (ज्य च सूत्र) + ज्ञा अवबोधने ((९/४०)+ ईयसुन् =ज्यायान्। अधिक विराट्। विराट् जगत् को बनाने के बाद जो अधिक बच गया, वह ३ पाद ज्यायान् है। भोजन करने के बाद जो बच जाता है, उसे भी जियान (भोजपुरी में) कहते हैं। इस भाग का प्रयोग निर्माण में नहीं हुआ-इस कार्य के लिये यह बेकार है।
(४) त्रिपात्-३ पाद। पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः सूत्र से पाद के अ का लोप।
(५) पाद-पद् गतौ (४/५८, १०/३२०)+णिच् + क्विप् + करणे घञ् = पाद। चरण, पाद १/४ भाग,। त्रिपात् = ३/४ भाग।
(६) विश्वा-विश् प्रवेशने (६/१३३) + क्वन् (अशूप्रषिलटि फणिति क्वन्) =विश्व।

सकल, सर्व, समग्र, समस्त, कृत्स्न। विश्वः का वैदिक रूप विश्वा =सम्पूर्ण।
(७) भूतानि-भू सत्तायाम् (१/१)+क्त = भूत। प्रथमा बहुवचन में भूतानि। भूत = पृथ्वी, जल, तेज,वायु, आकाश रूपों में गन्ध आदि विशेष गुण वाले द्रव्य। सत्य, यथार्थ। भूतानि = प्राणी, जीव।
(८) **दिवि**-द्यु अभिगमने (२/३३)। दिव् + क्विप् = दिवि। द्यु लोक में। द्यु का अर्थ आकाश, स्वर्ग है। अग्नि या सूर्य अर्थ मे भी प्रयोग हो सकता है। सौर मण्डल को स्वर्ग कहा गया है जहां तक सूर्य का तेज ब्रह्माण्ड से अधिक है। ब्रह्माण्ड का क्षेत्र वरुण स्वर्ग है। यह जनः लोक या जन्नत (कुरआन्) है। उससे अलग नाम के लिये सौर क्षेत्र इन्द्र स्वर्ग है।
(९) **अमृत**-स्थिर, नष्ट या कम नहीं होने वाला।
**व्याख्या**-(१) **मूल स्रोत**-सृष्टि निर्माण का मूल स्रोत एक समरूप पदार्थ है जिसे रस नाम दिया गया है क्योंकि यह हर स्थान, दिशा तथा समय में एक समान है। इसका केवल १/४ माग ही विश्व बनाने में लगता है। बाकी ३/४ भाग मूल रस रूप में सदा बना रहता है। विश्व का जो भाग नष्ट होता है वह अपने स्रोत या मूल स्रोत रस में मिल जाता है। उतना पुनः रस से निर्माण हो जाता है। अतः १/४ भाग निर्मित विश्व सदा बना रहता है।
(२) **पाद निर्माण**-रस के चतुर्थ भाग से ही क्यों निर्माण होता है? इसका कारण है कि केवल देव प्राण द्वारा सृष्टि होती है, असुर द्वारा नहीं। असुरों की संख्या या मात्रा देवों से ३ गुणा है, अतः १/४ भाग से निर्माण होता है। उसका ३ गुणा ३/४ भाग अनुपयुक्त रह जाता है। सूक्ष्म स्तर पर निर्माण का क्रम है-
ऋषिभ्यः पितरो जाता पितृभ्यो देवदानवाः।
देवेभ्यश्च जगत् सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः।। (मनुस्मृति ३/२०१)






ऋषि ($१०^{-३५}$ मीटर का रस्सी जैसा) से पितर हुये। उनसे २ प्रकार के प्राण हुये-देव तथा दानव। दानवों से कोई सृष्टि नहीं होती। देवों से ३ प्रकार के जगत् (कण) हुये-चर (हलके-Lepton), स्थाणु (भारी-Baryon), अनुपूर्व (आगे-पीछे का जोड़-Meson)। देव ३३ हैं, जो सौर मण्डल के ३३ धामों के प्राण हैं-
इति स्तुतासो असथा रिसादशो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च।
मनोर्देवा यज्ञियासः। (ऋक् ८/३०/२)
अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादश आदित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च। (ऐतरेय ब्राह्मण २/१८, ३/७, ३/२२)
ये ३३ देव मन (ब्रह्माण्ड) में उत्पन्न हुये हैं-८ वसु + ११ रुद्र + १२ आदित्य + प्रजापति, वषट्कार। ये यज्ञ (निर्माण) की प्रवृत्ति वाले हैं। असुरों में यह नहीं है। सौर मण्डल के हर धाम का प्राण १ देव है, किन्तु उनमें ३ प्रकार के असुर हैं-
(१) वृत्र -घुमाना, वृत्तीय गति (Vector calculus-curl, Fluid Mechanics-vortex), (२) बल-सीमा की गोल सतह, (३) नमुचि-अलग रूप, फेन, मिश्रित सतह।
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतिर्नव। (ऋग्वेद १/८४/१३)
= दधीचि की हड्डियों (ठोस कणों का प्रवाह) से इन्द्र ने ९९ वृत्रोंको मारा।
वृत्रो हवा इदं वर्सं वृत्वा शिषश्ये। यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदं सर्वं वृत्रं शिश्ये, तस्माद् वृत्रो नाम। (शतपथ ब्राह्मण १/१/३/४)
= यहां जो भी वृत्त से घिरा है वह वृत्र है। यह पृथ्वी तथा आकाश के सभी चीजों को घेरता है, अतः वृत्र है।
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः, विश्वा यदजयः स्पृधः। (ऋक् ८/१४/१३)
इति पाप्मा वै नमुचिः। (शतपथ ब्राह्मण १२/७/३/१-४)
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋक् १०/१३१/४, वा. यजु १०/३३)
इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रं सुत्रामाणं यजेति(शतपथ ब्राह्मण ५/५/४/२५)
इन्द्र ने पानी के फेन से नमुचि को मारा तथा विश्व को जीत लिया। नमुचि पाप्मा (अवरोध) है। वृत्र तथा बल को भी पाप्मा कहा गया है। यह भी देखें-
वा. यजु (१९/३४), शतपथ ब्राह्मण (१२/८/१/३, १२/७/१/१०, १२/

७/३/४, ५/४/१/९), ताण्ड्य महाब्राह्मण (१२/६/८), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१/७/१/६-७)

इन्द्र ने बल का भी संहार किया-

इन्द्रो बलं बलपतिः। (शतपथ ब्राह्मण ११/४/३/१२, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/५/७/४)= इन्द्र बल है तथा बल को जीतनेवाला है।

बलं वै शवः। (यजु १२/१०६, १८/५१, शतपथ ब्राह्मण ७/४/१/२९, ९/४/४/३)= बल शव है-यह लोगों को सीमा में घेरकर निष्क्रिय कर देता है। इन्द्र इस बन्धन को काट कर उसे पुनः सक्रिय करता है।

बलं वै सहः। (शतपथ ब्राह्मण ६/६/२/१४)

बल सह =२ वस्तुओं के बीच का जोड़ है।

यद् बलभिदा (यजते) बलमेवास्मै भिनत्ति। (ताण्ड्य महाब्राह्मण १९/७/३)।

बल काटने वाले की जो उपासना करता है, वह बल को काट सकता है।

निर्माण के लिये भिन्न पदार्थों का मिश्रण जरूरी है, असुर उनको सीमाओं द्वारा रोक देते हैं। केवल देवता ही निर्माण करते हैं।

(३) **हाइड्रोजन से निर्माण**-ब्रह्माण्ड का अधिकांश पदार्थ हाइड्रोजन अणु है। उसके ४ परमाणु मिलकर हीलियम का १ अणु बनाते है, जिससे तारों में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस क्रिया में भी ४ में १ भाग ऊर्जा में बदलता है।

(५) **कृष्ण जगत्**-सृष्ट जगत् में भी १/४ भाग दृश्य है। बाकी ३/४ भाग दृश्य नहीं है। केवल तारों से प्रकाश निकलता है, अतः वे दीखते हैं। बाकी विरल गैस, कृष्ण विवर आदि से कोई प्रकाश नहीं निकलता।

(६) **चतुष्पाद पुरुष**-दृश्य जगत् का एक बाहरी रूप होता है, जो क्रमशः क्षय होकर अपने समय के बाद नष्ट हो जाता है। इसे क्षर पुरुष-या पुरुष का १ पाद कहा गया है। इसके अतिरिक्त ३ अदृश्य पाद हैं। प्रत्येक वस्तु में क्षरण होने पर भी उसका परिचय तथा काम वही रहता है, यह अक्षर पुरुष है। परिवेश के अंश के रूप में किसी भी वस्तु में कोई परिवर्तन नहीं होता, जो कम होता है वह परिवेश में जुड़ जाता है। यह अव्यय पुरुष है। जिस स्तर पर किसी भी वस्तु में कोई भेद नहीं है, वह परात्पर पुरुष है। ४ पाद में १ ही पाद क्षर पुरुष या सीमाबद्ध विश्व है, अतः निर्मित विश्व को १ पाद कहा गया है।



## (४) सूक्त ४-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रमात् साशनानशने अभि।।

अथर्व (१९/६/२)-त्रिभिः पद्भिर्द्यामारोहत् पादस्येहाभवत्पुनः।
तथा व्यक्रामद् विश्वङशनानशने अभि।

सामवेद, पूर्वार्चिक (१३/४)-तथा विश्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि।

**अर्थ**-पुरुष के ३ पाद विश्व के ऊपर हैं, तथा चतुर्थ पाद विश्व बना है। यह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है जिसमें २ प्रकार के पदार्थ हैं-एक खाता है (अन्नाद, अग्नि, सजीव), दूसरा खाता नहीं है (अन्न, सोम, निर्जीव)।

**शब्दार्थ**-(१) त्रिपाद-३ पाद या ३ पद चलने की दूरी (डग)। ३/४ भाग।

(२) ऊर्ध्व-ऊपर, ऊंचा। आकाश में कोई ऊपर या नीचे की दिशा नहीं है। यह सिर्फ पृथ्वी की सतह पर है, वह भी हर स्थान के लिये भिन्न भिन्न। जहां हम खड़े रहते हैं, पैर या पृथ्वी के केन्द्र की तरफ नीचे की दिशा है। उसका विपरीत सिर की तरफ अर्थात् पृथ्वी केन्द्र से दूर ऊपर है। भारत के लिये जो ऊपर है, वह अमेरिका के लिये नीचे है। आकाश में ऊपर का अर्थ है निर्माण का स्रोत, उससे निर्मित वस्तु नीचे है।-

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहु रव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्। (गीता १५/१)

(३) उदैत्-उठता है, स्थिर होता है, ऊपर स्थित है।

(४) अस्य-इसका। इह-यह, सृष्ट जगत्। निकट में जो दीखता है, वह जगत् है। दूर में जो नहीं दीता वह इसका निर्माता परमेश्वर है। अभवत् = हुआ। पुनः = फिर।

(५) ततः-उसके बाद। विश्वम्=सब, विश्व।

(६) **व्यक्रामत्**-व्याप्त हुआ। पुरुष से विश्व व्याप्त है-

याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठति। (गीता १०/१६)

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः। (गीता ११/२०)

इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणं विष्णोर्विक्रन्तं विष्णोः क्रान्तम्। (शतपथ ब्राह्मण ५/४/२/६)

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सत् च त्यत् च अभवत्। निरुक्तं च अनिरुक्तं च। निलयनं च अनिलयनं च। विज्ञानं च अविज्ञानं च। सत्यं च अनृतं च सत्यमभवत्।

(तैत्तिरीय उपनिषद् २/६/३)
(७) **अशन** = भोजन करना। इस अर्थ में ३ धातु हैं-१. भुज अशने (७/१७), (२) अद भक्षणे (२/१), (३) अश भोजने (९/५४)। तीनों का अर्थ एक दूसरे के द्वारा दिया गया है, पर इनके प्रयोग में अन्तर है। भुज का अर्थ है सामान्य रूप से ग्रहण करना-यह भोजन या किसी भी अन्य सामग्री के उपयोग के लिये है। इसी अर्थ में भोग-विलास शब्द है। अद का अर्थ है भोजन के साथ उसका आनन्द लेना। इस अर्थ में स्वाद शब्द है। अश या अशन का अर्थ है भोजन के लिये व्याकुल होना, भूख। इसमें भविष्य की भी चिन्ता है। भुज तथा अद तक ठीक है, पर भोजन या उपभोग के समय परिणाम की चिन्ता वर्जित है-यह क्रिया अशन है। कर्म के समय उसके फल की चिन्ता को मना किया गया है-
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता २/४७)
अत: अशना का ओड़िया में खराब अर्थ होता है।
(८) **साशन**-भोजन की क्रिया। यह सजीव प्राणियों का लक्षण है। पर इसके साथ जुड़ी वासना अन्ततः मृत्यु की तरफ ले जाती है। अतः आशनाया का अर्थ मृत्यु भी किया जाता है।
नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्। अशनाययाशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति। (बृहदारण्यक उपनिषद् १/२/१)
(९) **अनशन**-भोजन नहीं करना, या उसमें मन लिप्त नहीं होना। जीवन क्रिया में २ प्रकार के नियन्त्रक हैं-एक कर्म तथा उसके फल में लिप्त है, दूसरा केवल देखता है तथा आवश्यक होने पर सुधार करता है। यह सभी स्वचालित व्यवस्थाओं का सिद्धान्त है-त्रुटि सुधार के लिये समान्तर नियन्त्रण होना चाहिये।
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।
(ऋक् १/१६४/२०, अथर्व ९/९/२०, निरुक्त १४/३०, मुण्डक उपनिषद् ३/१/१, श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/६)
अर्थात्, २ पक्षी वृक्ष के समान भाग में मित्रवत् रहते हैं। उनमें एक (जीव, कर्त्ता ब्रह्म, पुरुष) पिप्पल को आनन्द सहित खा रहा है। दूसरा (आत्मा, परात्पर ब्रह्म, पूरुष) केवल देख-भाल करता है।
शरीर में इन पक्षियों को आत्मा-जीव कहा गया है। विश्व में यह परात्पर या साक्षी


(पूरुष) तथा अक्षर, कर्त्ता या पुरुष है। आत्मा-जीव का बाइबिल, कुरान में आदम-इव हो गया है। जो काफी (अधिक या वासना सहित) खाता है, वह काफिर है। जो फाका (काफी का उलटा) करता है अर्थात् भोग में वासना नहीं रखता, वह फकीर है। बिना खाये फकीर भी जीवित नहीं रहेगा, पर उसमें वासना या आसक्ति नहीं है।
(१०) अभि-सब तरफ, उपसर्ग के रूप में प्रयोग।
(१२) विश्वं- सभी प्रकार का, सब ओर।
(१३) वि= विशेष रूप से (उपसर्ग)। अक्रामत्-व्याप्त या प्रविष्ट हुआ।
**व्याख्या**-(१) **निर्माण-क्रम**-यह पिछले सूक्त का ही नकल लगता है-दोनों में २ पाद के पुरुष का वर्णन है। पर दोनों का वर्णन विपरीत दिशाओं से है। पिछला सूक्त दृश्य जगत् से आरम्भ करता है, तथा उसका निर्माण आधार ३ पाद का अमृत रूप कहता है। यह पाद ब्रह्म से आरम्भ करता है। उसके ३ पाद ऊपर या स्रष्टा रूप हैं। पर उसका एक ही रूप सृष्टि में लिप्त है। दूसरा रूप कुछ नहीं कर रहा, केवल द्रष्टा है। प्रथम सूक्त ४ पाद में वर्गीकरण है-यह सूक्त क्रम बताता है। पहले ब्रह्म के कर्त्ता रूप ने विश्व का निर्माण किया, फिर उसमें प्रविष्ट हो गया। यह क्रम है-
निर्विशेष ब्रह्म-कर्त्ता ब्रह्म-क्रिया-प्रविष्ट (शिपिविष्ट-सीपी में प्रविष्ट)।
पशवः शिपिः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/३/८/५)तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत् (तैत्तिरीय उप. २/६/३) एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठा तनूर्य्यच्छिपिविष्टः। (ताण्ड्य महाब्राह्मण १८/६/२६) यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः। (ताण्ड्य महाब्राह्मण ९/७/१०)
(२) **आशनाया**-यह निर्माण का कारण है। इसका सामान्य अर्थ भूख है। भूख की शान्ति के लिये मनुष्य काम करता है। ब्रह्म २ प्रकार से कार्य करता है। मूलरस रूप सर्वतः समान है। उसमें कमी बेशी या भूख नहीं होती। यह अनशन रूप है। ब्रह्म का जो प्रकट रूप है, उसमें कहीं कमी, कहीं अधिकता रहती है। कमी को पूरा करने के लिये काम होता है। हवा का जहां कम घनत्व होगा, वहां बगल से हवा आकर उसे भर देती है। अधिक तापक्रम से कम तापक्रम के पदार्थ में ताप का सञ्चार होता है। पानी ऊपर से नीचे की तरफ बहता है। कोई भी परिवर्तन या निर्माण कमी को पूर्ण करने के लिये है-
नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्। (ऋक् १०/८५/१९, अथर्व ७/८१/२, १४/१/२४, तैत्तिरीय सं. २/३/५/३)
=नवम आयाम (रन्ध्र)से नये का निर्माण होता है। निर्माण क्रिया (ब्रह्मा का दिन-

गीता ८/१८) में यह केतु या शीर्ष है।
(३) द्विविध रूप-ब्रह्म के २ रूप कई प्रकार से वर्णित है-१. साक्षी-भोक्ता, २. द्रष्टा-कर्त्ता, ३. शिपिविष्ट-प्रकाशन, ४. पुरुष-श्री (स्त्री), ५. अग्नि-सोम, ६. विश्व-जगत्, ७. कर्त्ता-कर्म आदि।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च।
नैकरूपो बृहद् रूपो शिपिविष्टः प्रकाशनः। (विष्णु सहस्रनाम, ४२)
भोक्ता च प्रभुरेव च (गीता ९/२४) भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते (गीता १३/२१)
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् (श्वेताश्वतर उप.१/१२)
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/११)
द्वे अक्षरे ब्रह्मपरेत्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ५/१)
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।
द्वे वाव ब्रह्मणी अभिध्येये.. शब्दश्चाशब्दश्च(मैत्रायणी उपनिषद् ६/२२)
द्वे वाव खल्वेते ब्रह्मज्योतिषी रूपके शान्तमेकं समृद्धं चैकम्।(मैत्रायणी उप. ६/३६)
द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च(मैत्रायणी उ. ५/३, बृहदारण्यक उ. २/३/१)

## (५) सूक्त ५-

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।
ऋग्वेद (१०/९०/५)-तस्माद्विराडजायत ....।
अथर्व (१९/६/९)-विराडग्रे समभवद् ...।

**अर्थ**-उसके बाद विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से उसका अधिष्ठाता पूरुष हुआ। वह पूरुष उससे अधिक हुआ, तब भूमि तथा पुर बनाये।

**शब्दार्थ**-(१) ततो (ततः)- उसके बाद।
(२) विराट्-बड़ा रूप , विशेष गुण (राज =राट् =चमकना)-समरूप रस से बड़े बड़े पिण्ड बने जिनके रूप, गुण अलग-अलग थे।
(३) अजायत- उत्पन्न हुये।
(४) विराजो-विराट् से।
(५) अधिपूरुषः- पुरुष के विराट् रूपों का अधिष्ठाता।
(६) स= वह। जातो = उत्पन्न हुआ।



(७) अत्यरिच्यत-अति = अधिक, अरिच्यत-रिच् (रिचिर्) विरेचने (७/४), रिच् वियोजनसंपर्चनयोः (१०/२४०)-अलग अलग करना, फैलाना, जोड़ना, एकत्र करना। पेट साफ करना, मल शुद्धि। अतिरेचन-अतिरिक्त होना, अतिक्रमण करना।
अत्यरिच्यत = (विराट् से भी) अधिक होकर जोड़-तोड़कर निर्माण किया।
(८) पश्चाद्-बाद में।
(९) भूमि-आकाश में ३ प्रकार की भूमि-१. पृथ्वी ग्रह जो सूर्य-चन्द्र दोनों से प्रकाशित है। २. मैत्रेय मण्डल-सूर्य द्वारा प्रकाशित क्षेत्र। ३. ब्रह्माण्ड-सूर्य प्रकाश की अन्तिम सीमा जहां वह विन्दु-मात्र दीखता है।
इनके अतिरिक्त प्रथम सूक्त में सम्पूर्ण दृश्य जगत् को भूमि कहा गया है।
मनुष्य का शरीर, साधना की अवस्थायें भी भूमि हैं।
(१०) अथो-अमरकोष के अनुसार इसके ५ अर्थ हैं-१. शुभ आरम्भ, २. इसके बाद, ३. आरम्भ, ४. प्रश्न, ५. पूर्ण होना। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने ॐ तथा अथ-ये २ शब्द कहे थे, अतः किसी भी काम के आरम्भ में ये शुभ माने जाते हैं-
ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ। (नारद पुराण ५१/१०)
(११) पुर-कोई भी सीमाबद्ध रचना, भूतों के शरीर-सजीव या निर्जीव। मनुष्य का शरीर भी ९ द्वारों का पुर कहा जाता है-
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन्। (गीता ५/१३)
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। (अथर्व १०/२/३१)

**व्याख्या**-(१) **व्यक्त से अव्यक्त का क्रम**-यह सूक्त अव्यक्त से व्यक्त रूपों के निर्माण का क्रम बता रहा है-
१. महेश्वर-माया द्वारा सीमित।
२. षोडशी-१६ कला सहित। यह सूक्त १ में है। सभी ५ पर्वों की ३-३ साहस्री हैं। १ कला अव्यक्त है।
३. सत्य-३ प्रकार के गुणों से आकाश में ३ अमृत पद (सूक्त २ तथा ३)। भूत, वर्तमान, भविष्य में स्थिति। स्थिति या सत्ता ही सत् है-उससे युक्त सत्य है।
४. यज्ञ-स्वयम्भू से पृथिवी तक निर्माण का क्रम। ऊर्ध्व मूल से निम्न शाखाओं का निर्माण क्रम विश्व वृक्ष कहा गया है। निर्माण के लिये मूल पदार्थों में विकार होता है। पुरुष के ४ पादों का निर्देश सूक्त ४ में है-अन्न-अन्नाद, स-अशन, अन-अशन।

५. विराट्-अञ्जन (अलग रूपों के पहचान के चिह्न) सहित।
६. विश्व-आवरण (सीमा) सहित। प्रति वस्तु या पिण्ड एक सीमा में बन्धी है, उसकी माप को छन्द कहा जाता है। सभी सीमाबद्ध चीजें (छन्द) धीरे धीरे नष्ट होती हैं, अत: उन्हें विश्व-वृक्ष के पत्ते कहा गया है। पत्ते झड़ जाते हैं, वृक्ष बना रहता है।
(२) **अधिपूरुष**-विश्व के प्रति पर्व तथा प्रति पिण्ड का एक अधिष्ठाता पुरुष है। ये सभी स्वयम्भू से आरम्भ कर क्रमश: उसकी प्रतिमायें हैं।
स ऐक्षत प्रजापति: (स्वयम्भू:), इमं वा आत्मन: प्रतिमामसृक्षि। आत्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत। ता वा एता: प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त-१. अग्नि: (तद्गर्भितो भूपिण्डश्च), २. इन्द्र: (तद्गर्भित: सूर्यश्च), ३, सोम: (तद्गर्भितश्चन्द्रश्च), ४. परमेष्ठी प्राजापत्य: (स्वायम्भुव:)।-(शतपथ ब्राह्मण ११/६/१/१२-१३)।
इसके अनुसार अधिष्ठाता पूरुषों के नाम विश्व-वृक्ष में दिये गये है- १. स्वयम्भू (सम्पूर्ण जगत्)-ब्रह्मा (सबसे बड़ा, निर्माता), २. परमेष्ठी (ब्रह्माण्ड या आकाशगंगा)-विष्णु (विष्णु = बान्धने वाला, विष्णु सूर्य का परम पद), ३. सौर मण्डल-इन्द्र (विकिरण का केन्द्र), ३. चान्द्र मण्डल-सोम (अपेक्षाकृत ठण्ढा क्षेत्र जहां निर्माण सम्भव है), ५. भू (पृथ्वी ग्रह) जो सबसे सघन रूप है। सामान्यत: सघन तेज को अग्नि कहते हैं। सघन पदार्थ भी इसी प्रकार अग्नि है।
प्रति व्यक्ति या जीव का भी अधिष्ठाता अधिपूरुष है। अधिष्ठान सदा बड़ा होता है, तभी वह आधार हो सकता है। अत: विश्व पर्व या जीव पुरुष हैं, उनका बड़ा अधिष्ठान दीर्घ-स्वर का पूरुष है। व्यक्ति में इसके साक्षी रूप को आत्मा तथा भोक्ता रूप को जीव कहा गया है। जीव की चेतना शरीर तक ही है, आत्मा अधिपूरुष है।
(३) **पर्वों के अधिपूरुष**-सभी ५ पर्वों के अधिष्ठाता पूरुषों का वर्णन शतपथ ब्राह्मण (६/१/१/१-१०, ६/१/२/१-४) में है। इनका संक्षिप्त उल्लेख ऊपर भी है-
१. स्वयम्भू-सोऽयं पुरुषो प्रजापतिरकामयत-भूयान्त्स्यां प्रजायेय, इति। सोऽश्राम्यत्, स तपोऽतप्यत। स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत-त्रयीमेव विद्याम्। (ब्रह्म-नि:श्वसितरूपामपौरुषेयाम्)। सैवास्मै प्रतिष्ठाभवत्। तस्मादाहु:-ब्रह्म (स्वयम्भू:) अस्य सर्वस्य (अण्डामक विश्वस्य) प्रतिष्ठा इति। प्रतिष्ठा ह्येषा, यद् ब्रह्म (स्वयम्भू:)।(शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/८)
२. परमेष्ठी-तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेवास्य साऽसृज्यत। सेदं सर्वमाप्नोत्-यदिदं किञ्च। यदाप्नोत्-तस्मादाप:। यदवृणोत्,



तस्याद्वा: (वारि:)। सोऽकामयत-आभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेय इति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सह अप: प्राविशत्। तत आण्डं समवर्त्तत। तमभ्यमृशत्-अस्तु-इति। भूयोऽस्तु, इत्येव तदब्रवीत्। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/९-१०)
३. सौर-ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या (गायत्रीमात्रिक सौर वेद-विद्या-शतपथ १०/५/२/१-२)। तस्मादाहु:-ब्रह्म (गायत्रीमात्रिक सौर प्रजापति:) अस्य सर्वस्य (रोदसीब्रह्माण्हस्य) प्रथमजम्, इति (हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्-यजु २५/१०)। तस्य तन्मुखमेवासृज्यत। मुखं ह्येतदग्नेर्यद् ब्रह्म। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/१०)
आपो वा इदमग्रे सलिलमेवास (सरित्-इरा-इति सलिलम्-द्रवभावापन्ना:-आप: एव सरिरा:-सलिला:-तेव सलिलम्)। ता अकामयन्त, कथं नु प्रजायेमहीति, ता अश्राम्यन्, तास्तपोऽतप्यन्त। तासु तपस्तप्यमानासु-हिरण्मयाण्डं-सम्बभूव। अजातो ह तर्हि सम्वत्सर आस। तदिंहिरण्मयाण्डं यावत्सम्वत्सरस्य वेला (इदानीम्), तावत् पर्य्यप्लवत्। तत: सम्वत्सरे (दिव्य वर्ष सहस्रावधि-अनन्तरं) पुरुष: (सूर्य्य-पिण्डात्मक:) समभवत्। स: प्रजापति: (सौर हिरण्यगर्भ प्रजापति:) अजायत। (शतपथ ब्राह्मण ११/६/१/१-२)
४. भूपिण्ड-अभूद्वा इयं प्रतिष्ठेति, तद् भूमिरभवत्। सोऽकामयत प्रजापति: (पार्थिव:)-भूय एव स्यात्, प्रजायेय इति। सोऽग्निना मिथुनं समभवत्। तत आण्डं समवर्त्तत। तमभ्यमृशत्-पुष्यतु, इति।भूयोऽस्तु,इत्येव तदब्रवीत्।(शतपथ ब्राह्मण ६/१/२/१)
पृथ्वी महिमा-सोऽकामयत-भूय एव स्यात्, प्रजायेय इति। स: (अग्निमूर्त्तिर्भौम प्रजापति: केन्द्रस्थ:)-वायुना मिथुनं समभवत्। तत आण्डं समवर्त्तत। तदभ्यमृशत्-यशो बिभृहि-इति। ततोऽसावादित्योऽसृज्यत। एष वै यश:। (सैषा अग्नि-वायु-आदित्यरूपा-यशोऽण्डलक्षणा वषट्कारात्मिका)-(शतपथ ब्राह्मण ६/१/२/३)
५. चान्द्र-सोऽकामयत-भूय एव स्यत् प्रजायेय इति। स आदित्येन मिथुनं समभवत्। तत आण्डं समवर्त्तत।तदभ्यमृशत्-रेतो-बिभृहि, इति। ततश्चन्द्रमा असृज्यत। एष वै रेत:।(शतपथ ब्राह्मण ६/१/२/४)
विचक्षणात् (चन्द्रमस:) ऋतवो रेत आभृतम्। (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् १/२)
(४) **मनुष्य**-विश्व की अन्तिम प्रतिमा मनुष्य है। उसके मस्तिष्क में उतने ही कोषिका हैं, जितने ब्रह्माण्ड में तारे हैं, या आकाश में ब्रह्माण्ड हैं। यह विश्व-वृक्ष में कहा गया है।

पुरुषोऽयं लोकसम्मितः इत्युवाच भगवान् पुनर्वसु आत्रेयः। यावन्तो हि लोके मूर्त्तिमन्तो भावविशेषा; तावन्तः पुरुषे, यावन्ताः पुरुषे तावन्तः लोके। (चरक संहिता, शारीर स्थान ५/२)

(५) **पाञ्चरात्र दर्शन**-पाञ्चरात्र का अर्थ है ५ रात्रि या सृष्टि के ५ स्तर। अव्यक्त के बाद के ४ स्तरों का नाम हैं-१. वासुदेव (वास= वस्त्र, स्थान, आकाश का देव), २. सङ्कर्षण-गुरुत्वाकर्षण के कारण पिण्डों का निर्माण, ३. प्रद्युम्न-हिरण्यगर्भ सूर्य से तेज का विकिरण, ४. अनिरुद्ध-असीमित अनन्त प्रकार के भूत सर्ग। इन शब्दों का प्रयोग सूर्य सिद्धान्त के अन्तिम १२वें अध्याय में भी है। ये नाम कृष्ण अवतार से सम्बन्धित हैं-उनके पिता वसुदेव थे, अतः वे स्वयं वासुदेव हुये। उनके पुत्र प्रद्युम्न तथा पौत्र अनिरुद्ध थे। अनिरुद्ध का विवाह प्राग्ज्योतिषपुर (असम) के राजा बाणासुर की पुत्री उषा से हुआ था।

## (६) सूक्त ६-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये।।

**अर्थ**-उस सर्वहुत यज्ञ से पृषद् (दधि, पृथक् ठोस पिण्ड) तथा आज्य (घी, द्रव पिण्ड) हुये। इनसे पशु (जीव, सीमाबद्ध पिण्ड) हुये, जो वायु (चलने वाले, विरल पदार्थ के), अरण्य (वन, एक साथ असम्बद्ध), ग्राम (सम्बद्ध समूह) के थे।

**शब्दार्थ**-(१) **तस्मात्**-उससे। तत् शब्द का प्रयोग दूर की चीज के लिये है। यह ब्रह्म का वाचक है। यत् तत् पदमनुत्तमं-विष्णु सहस्रनाम।

(२) **यज्ञात्**-यज्ञ से। यज्ञ का अर्थ है उपयोगी वस्तु का निर्माण। उपयोगी वस्तु क्या है-जिस वस्तु से यज्ञ चलता रहे, अर्थात् अक्षर पुरुष का जो काम है वह उसके जीवन भर चले। अतः यज्ञ-चक्र को चलाने के लिये कुछ वस्तु का प्रयोग होता है, बाकी का ही उपभोग होता है। सबसे मुख्य यज्ञ कृषि है, जिससे मनुष्य का जीवन चल रहा है, बाकी उस पर आधारित हैं।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्। अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। यज्ञाद् भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः। कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघः पार्थ स जीवति।



(गीता ३/१०, १४-१६)

यज्ञ शिष्टामृत भुजः(गीता ४/२१)-यज्ञ से बचा हुआ खाने से ही सदा (अमृत) भोग कर सकते है। यज्ञ बन्द होने से वह बन्द हो जायेगा।

यज्ञ शिष्टाशिनः मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः (गीता ३/१३)-वह अपने तथा अन्य के निर्वह के लिये कुछ छोड़ देते हैं, नहीं तो प्राणि-नाश का पाप लगेगा।

(३) **सर्वहुत यज्ञ**-जिस यज्ञ या निर्माण में सर्व (पूर्ण विश्व) का प्रयोग होता है। वह सर्वहुत यज्ञ है। यह पूर्ण द्वारा पूर्ण की उत्पत्ति है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। (यजुर्वेदीय उननिषद् का शान्ति पाठ)

व्यक्ति रूप में यह आत्मा का आत्मा में लय है-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (गीता २/५५)
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते। (गीता ३/१७)

आत्मबलि का यही अर्थ है-विषयों को इन्द्रियों में, इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को अहङ्कार में, अहङ्कार को आत्मा में तथा आत्मा को परमात्मा में लीन किया जाता है।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।४०।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशन्।४१।
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि बुद्धियो बुद्धेः परतस्तु सः।४२। (गीता, अध्याय ३)

चतुष्पाद पुरुष को अज या बकर (कुरान में) कहा जाता है, क्योंकि इसके भी ४ पाद हैं। इसमें क्षर पुरुष (शरीर) का अक्षर (बुद्धि, व्यक्तित्व) में, अक्षर का अव्यय (समाज का अंग) में तथा अव्यय का परात्पर में लय किया जाता है। बकरीद में अपनी बलि का यही अर्थ है।

मनुष्य शरीर में अ से ह तक अक्षर हैं, अतः इसको अहम् कहा जाता है। अहम् का बलिदान या अपना अहंकार त्याग करना सर्वहुत यज्ञ है।

विश्व निर्माण में सर्व का उपयोग कर उसकी क्रमशः प्रतिमा रूप नये पर्व बनते हैं, अतः यह सर्वहुत यज्ञ है-

ब्रह्मा वै स्वयम्भु तपोऽतप्यत। तदैक्षत। न वै तपस्यानन्त्यमस्ति। हन्त। अहं भूतेष्वात्मानं जुहवानि। भूतानि चात्मनीति। तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा, भूतानि चात्मनि, सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं, स्वाराज्यम्, आधिपत्यं पर्य्यैत्। तथैवैतत् यजमानः सर्वमेधे सर्वान् मेध्यान् हुत्वा सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं, स्वाराज्यं, आधिपत्यं पर्येति।१।

स वा एष सर्वमेधो दशरात्रो यज्ञक्रतुर्भवति। दशाक्षरा विराट्। विराड् उ कृत्स्नमन्नम्। कृत्स्नस्यैवान्नाद्यस्यावरुद्ध्यै। तस्मिन्नग्निं परार्ध्यं चिनोति। परमो वा एष यज्ञक्रतूनाम्। यत्सर्वमेधः। परमेणैवैनं परमतां गमयति।२।

= ब्रह्मा ही स्वयम्भू है। उसने तप (श्रम) किया। देखा कि इसका अन्त नहीं है। उसने भूतों में अपनी आहुति देने का निश्चय किया। भूतों को भी अपने में लीन किया। भूतों में अपने को तथा अपने में भूतों को अपने में लीन करने से मैं सभी भूतों में श्रेष्ठ तथा सबका अधिपति हुआ। (शतपथ ब्राह्मण १३/७/१)

यह सर्वमेध यज्ञ १० रात्रि की क्रिया (क्रतु) है। (रात्रि का अर्थ है निर्माण के लिये शान्त स्थिति। १० रात्रियों के बीच में उतने ही दिन होंगे, १०-दिन-रात्रि का अर्थ १० चक्र है-१० दिन, मास, वर्ष, मन्वन्तर या कल्प) विराट् छन्द भी १० अक्षर का है (प्रति पाद में)। विराट् सभी अन्न (दाना या कण, पदार्थ) है। सभी अन्न इसके उपयोग के लिये हैं (अवरुद्ध = सीमा बद्ध करना, रोकना)। उसमें सबसे बड़ी अग्नि का चयन (किसी आकार में निर्माण) होता है जिसका आकार (परिधि) परार्ध ($१०^{१७}$ योजन) है-व्यास = ९७००० प्रकाश वर्ष। सभी निर्माण यज्ञों में यह परम (बड़ा, प्रथम) है। यह सर्वमेध है। यह परम द्वारा परम निर्माण है।

दस रात्रि का अर्थ है-१० दिन-मास-वर्ष या १० मन्वन्तर = आकाशगंगा का १० अक्ष-भ्रमण। या १० कल्प = ब्रह्मा द्वारा सृष्टि निर्माण का चक्र।

अथ यद्दशरात्रमुपयन्ति। विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते। ... अथ यद्दाममहरुपयन्ति। संवत्सरमेव देवतां यजन्ते।(शतपथ ब्राह्मण १२/१/३/१७, २०)

मितमेतद्देवकर्म्म यद्दशममहः। (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् २७/१)

मनुष्य के पार्थिव शरीर का निर्माण चन्द्रमा की १० परिक्रमा (२७३ दिन) में होता है। उसका प्रेत शरीर चान्द्र-मण्डल का है, उसका निर्माण पृथ्वी की १० अक्ष-भ्रमण में होता है (दश-गात्र)।

(४) **पशु**-प्रजापति (स्रष्टा) के ३ अंग हैं-आत्मा (चेतन तत्त्व जो चयन या चिति कर सके), प्राण (निर्माण के लिये गति तथा ऊर्जा), तथा पशु (निर्माण की सामग्री)।



इनको सांख्य दर्शन में पुरुष, प्रकृति, विकृति कहा गया है। शैव तन्त्र में यह पशुपति, पाश, तथा पशु हैं। जो कुछ दीखता (पश्य) है, वह पशु है-

(अग्निः) एतान्पञ्चपशूनपश्यत्। पुरुषमश्वं गामविमजं यदपश्यत्तस्मादेते पशवः। (शतपथ ब्राह्मण ६/२/१/२)

अग्नि (अग्रणी= प्रथम उत्पन्न) ने इन ५ पशुओं को देखा-पुरुष, अश्व, गौ, अवि (भेड़), अज (बकरी)। उन्होंने देखा (पश्यत्) अतः वे पशु हुये।

शरीर के ५ भागों को भी पशु कहा गया है-

वयमेतद् बाणमवष्टभ्य विचारयामः। (प्रश्नोपनिषद् २/२-३)

हम (५ प्राण) इस शरीर को धारण करते है।

यहां शरीर को बाण कहा गया है। ५ को बाण कहते है क्योंकि काम के ५ बाण हैं। शरीर में ५ प्राण होने से यह बाण है। बाण गति की दिशा भी दिखाते हैं। सभी भूत अन्त में ५ महाभूतों में मिल जाते हैं, वही उनकी अन्तिम गति है, जिसे पञ्चत्व (मृत्यु) कहते हैं।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

(प्रश्नोपनिषद् १/११, अथर्व ९/१४/१२, ऋग्वेद १/१६४/१२)

पितर (सूर्य) के ५ पाद (ऋतु) तथा १२ आकृति (क्रान्तिवृत्त की राशियां-प्रति राशि में सूर्य १ मास रहता है) हैं। यह दिवः (प्रकाशमान्, स्वर्ग) कहा जाता है तथा परार्ध आकार ($१०^{१७}$ योजन परिधि) के पुर में रहता है।

इन पशुओं के नाम पृथ्वी के समान्य पशुओं के हैं। पर ऊपर की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वे आकाश में ५ प्रकार के पदार्थ हैं जिनका सृष्टि निर्माण में प्रयोग हो रहा है। पदार्थ ५ कारणों से दीखते हैं-छन्द (बाहरी रूप), पोष (वृद्धि), अन्न (पदार्थ), सलिल (रूप में परिवर्तन), अग्नि (परिवेश से सघनता)। सृष्टि के ५ पर्वों के अनुरूप ५ पशु कहे गये हैं-

छन्दांसि पोषा अन्नानि सलिलान्यग्नयः क्रमात्। पञ्चैते पशवो नित्यं प्राणेष्वेते प्रतिष्ठिताः।

= प्राण में प्रतिष्ठित ५ पशु हैं- छन्द, पोष, अन्न, सलिल, अग्नि।

(१) **छन्द**-प्रति वस्तु का निर्माण, पालन, लय-सभी अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित हैं जिसे वयुन (बुनना) कहते हैं। इसके पदार्थ की रचना वय (बुनी वस्तु, आयु) है, क्योंकि यह क्रमशः बिखरता जाता है, तथा अन्त में समाप्त होता है। समाप्त होने तक का काल उसकी आयु है। वस्तु की सीमा वयोनाध है। इस सीमा की माप छन्द

है। वस्तुओं का आकार अनन्त प्रकार के हैं तथा उनकी परिभाषा देना कठिन है। पर उनकी लम्बाई, मात्रा आदि मापी जा सकती है। यान्त्रिकी में माप की ३ मूल इकाइयां हैं-दूरी, मात्रा, समय। ये ३ छन्दों के रूप हैं-मा = पृथिवी (सीमाबद्ध-लम्बाई), प्रमा = अन्तरिक्ष (गति-समय), प्रतिमा = द्यु (मात्रा-आकर्षण द्वारा माप)।

| **छन्द** | **स्वरूप** | **देवता** |
|---|---|---|
| मा (माप) | पृथ्वी | अग्नि |
| प्रमा (बड़ी माप) | अन्तरिक्ष | वायु |
| प्रतिमा (समरूपता) | द्यौ | सूर्य |
| अस्रीवी (बुनने का ढांचा) | दिशा | सोम |
| गायत्री (६X४ अक्षर) | अजा (प्रकृति) | बृहस्पति |
| जगती (१२X४, विश्व) | गौ | प्रजापति |
| अनुष्टुप् (८X४ अक्षर) | आयु | मित्र |
| उष्णिक् ७X४(पगड़ी) | चक्षु | पूषा |
| बृहती ९X४(बड़ा) | कृषि | पर्जन्य (मेघ) |
| विराट् १०X४(महान्) | अश्व | वरुण |
| त्रिष्टुप् ११X४ अक्षर | हिरण्य | इन्द्र |
| पंक्ति १०X४ अक्षर | पुरुष | परमेष्ठी |

मा छन्दः तत् पृथिवी, अग्निर्देवता, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवतया अंगिरस्वद् ध्रुवासीद् । प्रमाछन्दः, तदन्तरिक्षम्, वायुर्देवता । प्रतिमा छन्दः, तद्द्यौः, सूर्यो देवता । अस्रीवीश्छन्दः, तद्हिरण्यम्, इन्द्रो देवता । जगती छन्दः, तद् गौः, प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः, तदायुः, मित्रो देवता । उष्णिक् छन्दः, तच्चक्षुः, पूषा देवता । विराट् छन्दः, तदश्वः, वरुणः देवता । बृहती छन्दः, तत्कृषिः पर्जन्यो देवता । पंक्तिश्छन्दः, तत्पुरुषः परमेष्ठी देवता (मैत्रायणी सं. २/१४/९३-९७) काठक सं ३९/३९-४०)

यहां-गौ =ऊर्जा + गति+ उत्पादन, अश्व= चलाने वाली शक्ति, इंजन, कृषि = पदार्थों को इकट्ठा (कर्षण = खींचना) कर उत्पादन, पर्जन्य =उत्पादन लायक परिवेश (परितः जन्य), इन्द्र = विकिरण, वरुण = आकाशगंगा में फैला विरल पदार्थ, हिरण्य = ऊर्जा का स्रोत।

यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् (अथर्व १०/७/३२)

(ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त-ब्रह्माण्ड) जिसकी भूमि प्रमा (मापदण्ड) है तथा अन्तरिक्ष ऊपरी



सतह (उदर) है।

मा छन्दः तत् पृथिवी, अग्निर्देवता। (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र १६/२८/१)

मा छन्द (माप) है, यह पृथिवी है, उसका देवता अग्नि है।

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।

(ऋक् ८/४२/१, वा. यजु. ४/३०, तैत्तिरीय संहिता १/२/८/१)

द्यु का असुर (वरुण) विश्व को जानता है, उसने पृथिवी (मापदण्ड) द्वारा इसे मापा। विद्युत् चुम्बकीय सिद्धान्त के लिये २ अधिक मूल इकाइयों की जरूरत होती है-विद्युत् आवेश, तथा मुक्त आकाश की सञ्चरण क्षमता। अतः ५ प्रकार की माप के लिये ५ मा छन्द हैं-मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा, समा (ऋक् प्रातिशाख्य)। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/१/१) में अन्तिम २ को असीवि तथा विराट् कहा गया है।

अस्रीवि (बुनाइ का ढांचा) मूल इकाइयों का मेल है, जैसे क्षेत्रफल = लम्बाई X लम्बाई, या गति = लम्बाई /समय। यजुर्वेद (१४/९-१०) में १९ प्रकार के वयः छन्दों का नाम है-

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽअधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दःपुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयो ऽनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिछन्दः षष्ठवाड्वयो बृहती छन्दः उक्षा वयः ककुप् छन्दः ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः।९।

अनड्वान्वयः पंक्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दः त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दस्तूर्यवाड्वयो ऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम्।१०।

शतपथ ब्राह्मण (८/२/३/४) में इनकी व्याख्या १९ पशुओं के रूप में की गयी है-९ अनिरुक्त (अस्पष्ट, अवर्णनीय), तथा १० निरुक्त (स्पष्ट, परिभाषित)। ये अन्तरिक्ष के छन्द हैं अर्थात् मिश्र इकाइयां हैं। शतपथ ब्राह्मण (३/६/५/१६) मे ७ छन्दों को ग्राम्य पशु (सम्बद्ध) तथा ७ को अरण्य पशु (असम्बद्ध समूह) कहा है। दूरी तथा समय की इकाइयां स्पष्टतः छन्दों पर आधारित हैं (देखें नाग प्रकाशन से प्रकाशित लेखक की पुस्तक-सांख्य सिद्धान्त, अध्याय २)। वयः छन्दों के रूप में मिश्र इकाइयां स्पष्ट नहीं हैं।

**२. पोष**-इसका अर्थ पूषण या वृद्धि करना है। यह ३ प्रकार का है-बल (जो कर्म कर सके, या बलन = गति को मोड़ सके), वीर्य (स्रोत शक्ति ३ प्रकार की-ब्रह्म,

क्षत्र, विट् = वैश्य की), द्रविण (धन)।
पशवो वै पूषा = पशु पूषा हैं। (ऐतरेय ब्राह्मण २/२४, ताण्ड्य महाब्राह्मण २३/१६/५, शतपथ ब्राह्मण ५/२/५/८, १३/१/८/६, वा. यजु. २२/२०, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/११/२)
पुष्टिर्वै पूषा = पुष्टि ही पूषा है। (शतपथ ब्राह्मण ३/१/४/२, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/७/२/१)
पूषा विशां विट्पतिः = पूषा विट् (वैश्य, समाज) का अधिपति है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/५/७/४)
बलेन वै लोकास्तिष्ठन्ति..(बल ही लोकों का आधार है)-छान्दोग्य उपनिषद् (७/८/१)
ब्रह्मक्षत्रादिकं सर्वं यस्यास्यादोदनं सदा (पाशुपत् ब्रह्मोपनिषद् ४४)
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः (कठोपनिषद् २/२५)
ब्रह्म तथा क्षत्र-दोनों इसके (विट् के) ओदन (उपयोग की वस्तु) हैं।
यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टन्ति। (शतपथ ब्राह्मण ८/७/३/२१)
यज्ञ ही विश (समाज) है, सभी भूतो का पालन यज्ञ ही करता है।
अन्नं विशः= अन्न (से) ही विट् (समाज) है-(शतपथ ब्राह्मण ४/३/३/१२, ५/१/३/३, ६/७/३/७, २/१/३/८)
अन्न वै क्षत्रियस्य विट् (अन्न ही क्षत्रियों का विट् = शक्ति है)-(शतपथ ब्राह्मण ३/३/२/८)
तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति, तस्माद्राष्ट्री विशं धातुकः = अतः राष्ट्र विश द्वारा खाता है, विश द्वारा निर्मित होता है। (शतपथ ब्राह्मण १३/२/९/६, ८)
दैव्यो वाऽएता विशो यत्पशवः= ये विश दैव पशु हैं-(शतपथ ब्राह्मण ३/७/३/९)
तस्माद् ब्रह्म च क्षत्रं च विशि प्रतिष्ठिते= अतः ब्रह्म तथा क्षत्र विश में प्रतिष्ठित हैं-(शतपथ ब्राह्मण ११/२/७/१६)

**३. अन्न**-७ प्रकार के अन्न हैं-५ अन्न वाक् रूप में हैं, जिसे ओदन (भात, पकाया चावल) कहा जाता है। इसका भोग करने वाला अथर्व (९/५) में ५ ओदन का अज कहा गया है, या अथर्व (१०/९) में १०० ओदन की गौ कही गयी है। १०० ओदन १०० प्रकार की गति या क्रिया हैं जिसके अनुसार यजुर्वेद की १०० (१०१) शाखायें हैं। हृदय से भी १०१ नाड़ियां निकलतीं हैं (कठोपनिषद् २/३/१६)।



अथर्व (११/३) में ज्ञान को बृहस्पति का ओदन कहा गया है। वाक् के ५ ओदन हैं-भोजन (पृथ्वी), जल, वायु, तेज, आकाश-जो ५ महाभूत कहे जाते हैं। बृहस्पति के २ ओदन हैं-ज्ञान (मन के लिये) तथा क्रिया (कर्मेन्द्रियों के लिये)
स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः। (तैत्तिरीय उपनिषद् ३/२)
स एष पुरुषो पञ्चविधः। तस्य यदुष्णं तज्ज्योतिः (तेजः) यानि खानि च आकाशः (शब्दश्च)। यल्लोहितं श्लेष्मा रेतस्ता आपः। यच्छरीरं सा पृथिवी। यः प्राणः (प्राणोदान-समान-व्यानापान भेदेन पञ्चधा विभक्तः-श्वास-प्रश्वास रूपश्च) स वायुः। मनो वाजिति प्राणस्य ह्यन्वपपायमेता अपियन्ति (मध्यपतितप्राणस्यैव कुर्वद् रूपतत्वात्)। (ऐतरेय आरण्यक २/३/३)
= यह पुरुष ५ प्रकार का है। उष्ण भाग ज्योति है, खाली भाग आकाश है। रक्त, कफ, वीर्य (शुक्र) जल हैं। ठोस पदार्थ पृथिवी है। प्राण (५ प्रकार के- प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान) वायु हैं। इनका निर्माण मन, प्राण, वाक् से हुआ। क्रिया मध्य (प्राण) से होती है।

**४. सलिल** (तरंग सहित जल)-यह आन्तरिक गति है, जिसे सरिर कहते हैं। हमारा पिण्ड सदा बदलता रहता है, हर ऋतु में कुछ अलग होता है, अतः इसे शरीर कहते हैं। इरा = जल या रस, सरत = चलना, अतः सरिर = चलता हुआ जल। यह अगला अन्न है जो वस्तुओं को हिला-डुला कर मिलाता है जिससे उनका पाचन या रूपान्तर होता है। इसे ही मातरिश्वा (माता के समान जन्म देने वाला) भी कहा गया है।
वाग्वै सरिरम्। (यजु १३/५३, शतपथ ब्राह्मण ७/५/२/५३)
वाग्वै सरिरं छन्दः (यजु १५/४, शतपथ ब्राह्मण ८/५/२/४)
अथ यत्सर्वमस्मिन्नश्रयन्त तस्माद् शरीरम्। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/४)
= सभी अंग इसमें आश्रय लेते हैं, अतः यह शरीर है।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति। (ईशावास्य उपनिषद् ४)
वह बैठे (आन्तरिक गति) हुये भी दौड़ने वालों से आगे निकलता है, उसके कारण अप् में मातरिश्वा द्वारा क्रिया होती है।

**५. अग्नि**-यह ५ प्रकार के पशु हैं-
(क) **वैश्वानर**-मनुष्य या पुरुष-यह सौर मण्डल के ३ लोकों के पदार्थों का समन्वय है, अतः वैश्व (= सबका मिश्रण) कहा जाता है। इसी अर्थ में बाइबिल, जेनेसिस (उत्पत्ति) १/२७ में मनुष्य को भगवान् की प्रतिमा कहा गया है।

(ख) **अश्व** (घोड़ा)-ये ब्रह्म के अश्रु (आंसू) से बना। ब्रह्माण्ड का जल के समान फैला पदार्थ अश्रु है। यह अन्य पदार्थो को गति देता है, अतः घोड़ा, समुद्री वायु या भौतिक विज्ञान में शक्ति की इकाई को भी अश्व कहा जाता है।

प्रजापतेरक्ष्यश्वयत्। तत्परापतत्ततोऽश्वः समभवद्यदश्वयत्तदश्वस्याश्वत्वम्। (शतपथ बाह्मण १३/३/१/१) प्रजापतेरक्ष्यश्वयत्। तत्परापतत् तदश्वोऽभवत् तदश्वस्याश्वत्वम् ।(तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/५/४)।

शतपथ ७/५/२/६, ४/२/१/११, ६/१/१/११, ६/३/१/२८, ताण्ड्य महाब्राह्मण २१/४/२ आदि में भी।

अद्भ्यो ह वाऽअग्रेऽश्वः सम्बभूव सोऽद्भ्यः सम्भवन्नसर्वः समभवदसर्वो हि वै समभवत्तस्मान्न सर्वैः पद्भिः प्रतितिष्ठत्येकैकमेव पादमुदच्य तिष्ठति। (शतपथ बाह्मण ५/१/४/५)

तान् (असुरान्) अश्वा भूत्वा (देवाः) पद्भिरपाघ्नत यदश्वा भूत्वा पद्भिरपाघ्नत तदश्वानामश्वत्वमश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद। (ऐतरेय ब्राह्मण ५/१)

अप्सुजा उ वा ऽअश्वः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/१८, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/४/३, ३/८/१९/२, ३/८/२०/४)

अत्योऽसीत्याह। तस्मादश्वः सर्वान् पशून् अत्येति।(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/९/१)

तस्मादश्वः पशूनां जविष्ठः। (ऐतरेय ब्राह्मण ५/१)

आशुः सप्तिरित्याह। अश्व एवं जवं दधाति। तस्मात्पुराशुरश्वो ऽजायत। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/१३/२)

वीर्यं वा अश्वः(शतपथ बाह्मण २/१/४/२३, २४)

क्षत्रं वा ऽअन्वश्वः (शतपथ बाह्मण ६/४/४/१२)

वज्रो वा ऽअश्वः। (शतपथ बाह्मण ४/३/४/२७, ६/३/३/१२)

वज्री वा एषः। यदश्वः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/५/५)

इन्द्रो वा अश्वः (कौषीतकि ब्राह्मण १५/४)

अग्निर्वा अश्वः श्वेतः (शतपथ बाह्मण ३/६/२/५)-श्वेताश्वतर= अग्नि का भी स्रोत या उससे ऊंचा-यह ब्रह्म व्याख्या का उपनिषद् है।

सौर्यो वा अश्वः (गोपथ ब्राह्मण, उत्तर ३/१९) वारुणो ह्यश्वः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/१८, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/५/३, ३/८/२०/३, ३/९/१६/१)

अश्वो (भूत्वा) मनुष्यान् (अवहत्) (शतपथ बाह्मण १०/६/४/१)



**(ग) गौ**-गौ उत्पादन या यज्ञ का साधन तथा स्थान है। इसमें ३ चीजे हैं-स्थान, गति (क्रिया) तथा सृष्टि (पदार्थ का सङ्कलन, रूपान्तर)। सूर्य की किरणे गौ हैं, इनके पृथवी पर आने के कारण ही सृष्टि होती है। पृथ्वी पर ही सभी यज्ञ होते हैं, अतः यह गौ है। मनुष्य की इन्द्रिय भी गौ हैं, इनसे ही कार्य होता है। सृष्टि के लिये प्राण या ऊर्जा, या उत्पादित पदार्थ (अन्न) भी गौ है। शब्द भी गौ हैं क्योंकि इनसे वाङ्मय का सृजन होता है।

विराड् (यजु १३/४३) वै गौः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/१९)

साहस्रो वाऽ एष शतधार उत्सः (यजु १३/४९) यद् गौः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/३४)

गौर्वा इदं सर्वं विभर्ति।(शतपथ बाह्मण ३/१/२/१४)

प्राणापानौ वै गोआयुषी। द्यावापृथिवी वै गोआयुषी। अहोरात्रे वै गोआयुषी। यदेवेदं द्वितीयमहर्यच्च तृतीयमेते वा उ गो-आयुषी। (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् २६/२) = उत्पादन गो है, उसका खर्च आयु है।

यज्ञो वै गौः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/६, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/८/३)

प्राणौ हि गौः। (शतपथ बाह्मण ४/३/४/२५)

इन्द्रियं वै वीर्यं गावः। (शतपथ बाह्मण ५/४/३/१०)

अन्नं वै गौः। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/१९, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/८/३)

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते ऽदिति सरस्वति महि विश्रुति। एता ते अघ्न्ये (देवत्रा) नामानि। (शतपथ बाह्मण ४/५/८/१०)= गौ तथा यज्ञ अपने जीवन के लिये सदा चलना चाहिये, अतः यह अघ्न्या = नहीं मारने योग्य है।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्रनु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट। (ऋक् ८/१०१/१५, तैत्तिरीय आरण्यक ६/१२/१)

**(घ) अवि**-(भेड़)-यह प्रकाश की किरण है जो सरल रेखा में चलती है। भेड़ के बारे में भी प्रसिद्ध है कि वह सदा सीधा ही चलता है। अतः प्रकाश की ऊर्जा को अवि कहा जाता है। यह पृथ्वी की रक्षा करती है तथा वृक्ष के पत्तो का हरा रंग इसी से बनता है (पर्ण हरित, Photosynthesis, chlorophyl)

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परिवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः। (अथर्व १०/८/३१)

इयं(पृथिवी) वाऽअविरियं हीमाःसर्वाः प्रजा अवति।(शतपथ बाह्मण ६/१/२/३३)

(प्रजापतिः) श्रोत्रादविम् (निरमिमीत। (शतपथ बाह्मण ७/५/२/६)
नासिकाभ्यामेवास्य वीर्यमस्रवत्। सोऽविः पशुरभवन्मेषः। (शतपथ बाह्मण १२/७/१/३)-शब्द सरल रेखा में जाता है, यह दिशा का बोधक है। सरल रेखा में जाने वाला प्राण अवि है।

**(ङ) अज**-अजन्मा। यह अव्यय पुरुष है जो किसी वस्तु के परिवर्तन का क्रम है। परिवर्तन में कुछ नया नहीं बनता, अतः यह अज है-
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा। (गीता ४/६)
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। (गीता १५/१)
पूर्वरूप निर्माण में लग जाता है, यह उसकी बलि हो जाती है। अतः जिस पशु का मांस प्रायः खाया जाता है उसे भी अज कहा गया है, उसका जन्म व्यर्थ है। अज और पुरुष-दोनों के ४-४ पाद हैं।
आजा ह वै नामैषा यदजैतया ह्येनं (सोमं) अन्तत आजति तामेतत्परो ऽक्षमजेत्याचक्षते। (शतपथ बाह्मण ३/३/३/९)
प्रजापतेर्वै शोकादजा(:) समभवन्। (शतपथ बाह्मण ६/५/४/१६) एष एतेषां पशूनां प्रयुक्ततमो यदजः। (ऐतरेय ब्राह्मण २/८)
यह मूल प्रकृति है जो निर्माण का स्रोत है-
अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/५)

**(५) ग्राम-अरण्य पशु**- इसका भौतिक अर्थ पुराणों में है-
गौरजः पुरुषो मेषश्चाश्वाश्वतरगर्दभाः। एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे। श्वापदा द्विखुरा हस्ति वानराः पक्षिपञ्चमाः।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमाश्च सरीसृपाः। (विष्णु पुराण १/५/५१-५२)
ग्राम्य पशु-१. गौ, २. बकरा, ३. पुरुष, ४. भेड़, ५. घोड़ा, ६. अश्वतर (खच्चर), ७. गधा।
आरण्य पशु-१. कुक्कुर, २. दो खुर वाले, ३. हाथी, ४. वानर, ५. पक्षी, ६. औदक जीव (जल जन्तु), ७. सरीसृप (रेंगने वाले सर्प आदि)।
सभी प्रकार के पशु गांव में रहते है, पर ग्राम्य पशुओं का दैनिक जीवन में प्रयोग है। उनसे घर के कार्य हाते हैं। आरण्य पशु का उतना निकट सम्बन्ध नहीं है, विशेष स्थितियों में उनसे काम होता है।



७-७ छन्दों के वर्ग को भी ग्राम्य तथा आरण्य पशु कहा गया है-
छन्दांसि गच्छस्वाहेति सप्त वै छन्दांसि सप्त वै ग्राम्या पशवः सप्तारण्यास्तानेवैतदुभयं प्रजनयति। ((शतपथ बाह्मण ३/६/५/१६)
आकाश में जगती सप्तक (गायत्री से जगती तक- प्रति पाद में ६ से १२ तक अक्षर) द्वारा पृथ्वी को माप दण्ड मान कर ब्रह्माण्ड तक की माप होती है। ये ग्राम्य पशु हैं जिनसे ब्रह्माण्ड के भीतर का निर्माण हो रहा है। यथा-गायत्री (२४ अहर्गण)= बालखिल्य तक सूर्य तुलना में ६० गुणा दूर, उष्णिक् (२७ अहर्गण-१ कम)-मैत्रेय मण्डल, अनुष्टुप् (३३ अहर्गण-१ अधिक)-सौर मण्डल, बृहती (३६ अहर्गण)-निकटतम तारा, पंक्ति (४०)-निकट के तारों का समूह, त्रिष्टुप् (४३ अहर्गण-१ कम)-महर्लोक, जगती (४९ अहर्गण-१ अधिक)-ब्रह्माण्ड

अतिजगती (प्रति पाद १३ से १९ अक्षर तक) द्वारा ब्रह्माण्ड के निर्माण क्षेत्र गोलोक (या कूर्म) से लेकर सत्य लोक तक की माप होती है। ये आरण्य पशु हैं। अतिजगती (५२ अहर्गण)-गोलोक या कूर्म क्षेत्र (nutrino corona), शक्वरी (५६ अहर्गण)-२ ब्रह्माण्डों के बीच का अन्धकार क्षेत्र, अतिशक्वरी (६० अहर्गण)-निकट का ब्रह्माण्ड, अष्टि (६४ अहर्गण)-ब्रह्माण्ड समूह लोक, अत्यष्टि (६८ अहर्गण)-तपः लोक, धृति (७२ अहर्गण)-सत्य लोक , अतिधृति (७६ अहर्गण)-पूरुष।
कृति छन्द का अर्थ निर्माण क्रिया है। इनका आरम्भ अशीति छन्द (८० अक्षर का कृति) से हुआ है जिसका अर्थ है भोजन करना (अशन का उल्लेख सूक्त ४ में है) मनुष्य का वजन (मात्रा = ६० किलोग्राम) यदि १ मानें, तो पृथ्वी की मात्रा $१०^{२३}$ होगी। $१०^{२४} = २^{८०}$ या अशीति छन्द। सूर्य की मात्रा $३ \times १०^{२८}$ होगी, जो $२^{९५}$ अर्थात् संकृति या अर्णव (९६ अक्षर) का छन्द है। हाइड्रोजन परमाणु की तुलना में मनुष्य का वजन प्रायः यही होगा।

**(६) वायव्य पशु**-आरण्य पशु में ही पक्षी की भी गिनती हो गयी, फिर वायव्य पशु कौन हैं? वायु के ७ रूपों को वायव्य पशु कहा जा सकता है, इनसे भी उपयोगी कार्य होते है। वयः छन्दों का उल्लेख किया गया है।
७ क्रियाओं को अग्नि की ७ जिह्वा कहा गया है, उसी से कई प्रकार के ७-७ पदार्थ उत्पन्न होते हैं। ये निकलने वाली जिह्वा अर्चि हैं, ये ही वायव्य पशु हैं-
काली कराली च मनोजवा च, सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः। (मुण्डक उपनिषद् १/२/४)

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।
अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा। (मुण्डक २/१/८-९)

शरीर के भीतर के पशु हैं-७ धातु (ग्राम्य), ७ प्राण (वायव्य), ७ मन की वृत्ति (आरण्य)-इनसे शरीर का यज्ञ चलता है।

**(७) पृषदाज्य**-पृषद् = दही, ठोस पदार्थ। आकाश में मंगल तक के ग्रह ठोस हैं, वहां तक का क्षेत्र भागवत पुराण (स्कन्ध ५) में दधि-समुद्र कहा गया है। सोम द्वारा जीवन देनेवाली २ चीजें तैयार होती हैं-१. ओषधि वे वृक्ष हैं जो फल पकने के बाद नष्ट हो जाते हैं। धान, गेहूं, मक्का आदि ऐसे ही वृक्ष हैं जिनपर मनुष्य का जीवन निर्भर है। २. वनस्पति वे वृक्ष हैं जो प्रति वर्ष फल देते हैं-आम, जामुन आदि। यह पूरक भोजन के रूप में जरूरी हैं। ओषधि में सोम अधिक है, अतः वे वृक्ष अधिक टिक नहीं पाते। वनस्पति में अग्नि अधिक है, अतः वे अपना रूप बनाये रखते हैं। ओषधि में ४ प्रकार के तत्त्व हैं-१. दधि-ठोस पदार्थ है। यह शुक्र के रूप में जीवन का आरम्भ करता है। यह पृथ्वी की वस्तु है। सौर रस मधु है। सब स्थान पर व्याप्त सार तत्त्व घृत है। अमृत परमेष्ठी का मूल तत्त्व या रस है।

दधि हैवास्य लोकस्य रूपम्, मध्वमुष्य (स्वर्गस्य लोकस्य रूपम्), घृतमन्तरिक्षस्य (रूपम्)-(शतपथ बाह्मण ७/५/१/३)

यदब्रवीद्धिनोति मेति तस्माद्दधि। (शतपथ बाह्मण १/६/४/८)

इसने कहा (वाक् = अकाश), मारा (आकाश पूरी तरह घेरा, ठोस में अन्य नहीं रह सकता), माप किया (ठोस वस्तु की तुलना से दूरी का माप)-अतः यह दधि है।

महत्यै वा एतद्देवतायै रूपम्। यन्मधु। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/१४/२)

रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधु। (ऐतरेय ब्राह्मण ८/२०)

अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः। (मन्त्र ब्राह्मण २/६/१५)

अमृतमापः (गोपथ ब्राह्मण उत्तर १/३, कौषीतकि ब्राह्मण १२/१)

आप (ब्रह्माण्ड का पदार्थ) अमृत है।

प्रजापतिर्वाऽअमृतस्तस्य विश्वेदेवाः पुत्राः (शतपथ ब्राह्मण ६/३/१/१७)

**व्याख्या**-(१) **सर्वहुत यज्ञ**-सब पदार्थों को मिलाकर उपयोगी वस्तु निकालना।

(२) **समुद्र मन्थन**-समुद्र फैला हुआ पदार्थ है। उसके मन्थन द्वारा उपयोगी रत्न



खोजना। यह कूर्म द्वारा होती है।

आकाश में कूर्म चक्र ब्रह्माण्ड से १० गुणा बड़ा है। उसमें ब्रह्माण्ड का विराट् बालक के रूप में निर्माण होता है, जो महाविष्णु कहलाता है। (ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, प्रकृति खण्ड, अध्याय ३)

पृथ्वी के रत्न उसी स्थान पर इकट्ठे होते हैं जहां कूर्म आकार की कठोर चट्टान है। उनके मुड़ने के कारण उसमें उपयोगी धातुयें इकट्ठा हो जाती हैं। पेट्रोलियम पदार्थ भी पानी से हलका होने के कारण मिट्टी के छिद्रों से रिस कर कूर्म आकार की चट्टान के नीचे जमा हो जाते हैं। उनका पता लगा कर देव-असुरों के सहयोग से जिसने खनिजों का उत्पादन कराया, वह कूर्म अवतार है।

पृथ्वी पर मुख्य कार्य कृषि है, जिसके द्वारा मिट्टी, वायु के तत्त्वों को अन्न में एकत्र किया जाता है। यह कार्य करने वाले भी कुर्मी कहे जाते हैं। कम्बोडिया में ख्मेर हैं।

शरीर के भीतर का योग यज्ञ भी स्थिर आसन में बैठने से होता है, स्थिरता के लिये कूर्म नाड़ी पर संयम किया जाता है।

(३) **निर्माण धारा**-माया का एक रूप धारा कहा गया था। पुरानी सभी वस्तुओं को मिलाकर नया बनता है। जैसा पहले बना था, उसी प्रकार नया भी बनता है। यह भी सर्वहुत यज्ञ का रूप है। ऐसा निर्माण कर्त्ता वृषाकपि कहलाता है। वह क =जल का पान कर पूर्व जैसा निर्माण करता है, अतः अनुकरण करने वाले पशु को कपि (copy) कहा गया है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः। (ऋक् १०/१९०/३)

तद्यत् कम्पायमानो रेतो वर्षति, तस्माद् वृषाकपिः, तद् वृषाकपेः वृषाकपित्वम्। ....
आदित्यो वै वृषाकपिः। (गोपथ ब्राह्मण उत्तर ६/१२)

## (७) सूक्त ७-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्युस्तस्मादजायत।।७।

अथर्व (१९/६/१३)-छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।

**अर्थ**- उस सर्वहुत यज्ञ से ऋक् तथा साम हुये। उससे छन्दस् (अथर्व, वाक्-आकाश

की माप) हुये, फिर यजु हुआ।

**शब्दार्थ**-(१) ऋचः-ऋच स्तुतौ (६/१९)= प्रशंसा या स्तुति करना, आच्छादित करना, चमकना। ऋच् + क्विप् = ऋचः (प्रथमा, बहुवचन)

(२) सामानि-षो अन्तकर्मणि (४/३८)-नष्ट या विध्वंस करना, नष्ट या भग्न होना। स्यति = विरोध करना। सतिभ्यां मनिन्मक्षिनो, सो +मनिन् = साम =विरोध शान्त करना। सान्त्व सामप्रयोगे (१०/३७) या साम सान्त्व प्रयोगे (१०/३०४) इन २ समानार्थक धातुओं से भी साम सिद्ध होता है। शान्त करना, शत्रु को वश में करना आदि। सामानि (बहुवचन) = सामवेद।

(३) जज्ञिरे-जनी प्रादुर्भावे (४/४०), ज्ञा अवबोधने (९/४०)। जज्ञिरे =उत्पन्न हुये।

(४) छन्दांसि-छन्द का अर्थ आच्छादन करना, माप, गति आदि। विस्तृत अर्थ व्याख्या भें।

**व्याख्या**-(१) **वेद उत्पत्ति**-यह सूक्त सर्वहुत यज्ञ से वेद की उत्पत्ति बता रहा है। यहां वेद का अर्थ विश्व निर्माण के सभी स्तर तथा उनका शब्दों में वर्णन है। सृष्टि वेद में ज्ञान प्राप्ति के ४ प्रकार हैं, इनका वेद शब्द के ४ अर्थों से सम्बन्ध अध्याय २ में बताया गया है। त्रयी वेद के रूप में प्रायः ५० प्रकार के विभाजन हैं, जिनकी उत्पत्ति की इस सूक्त में चर्चा है। ३ भागों के बाद भी मूल अथर्व रह जाता है, अतः त्रयी का अर्थ सदा ४ वेद होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है क पहले ऋक्, यजुः, साम वेद हुये तथा बाद में अथर्व वेद बना । ऋग्वेद के एक ही सूक्त में अथर्व का नाम २ बार है, इससे यह स्पष्ट है कि ऋक् के पहले यह विद्यमान था-

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः। १३।

तमुत्वादध्यङ् ऋषि पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्।१४। (ऋक् ६/१६)

हे अग्नि! (अग्रि = प्रथम उत्पन्न), आप विश्व के शीर्ष पर हो, जिसका निर्माण जल जैसे समरूप पदार्थ के अथर्वा (ऋषि, स्थिर भूमि) द्वारा मन्थन से पुष्कर (= जल से, कमल) रूप में हुआ। अथर्वा का पुत्र दध्यङ् (ऋषि, ठोस ग्रह, जिनका क्षेत्र भागवत पुराण में दधि समुद्र कहा गया है) था जिसने अग्नि प्रज्वलित कर वृत्र (असुर राजा, आवरण के कारण अन्धकार) तथा उसके पुर को नष्ट किया।

(२) **छन्द का अर्थ**-छन्द आधारित दर्शन नासदीय सूक्त (ऋक् १०/१२८) के प्रथम मन्त्र में आवरण वाद का उल्लेख 'किमावरीवः' शब्द से है-



नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।

किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहन गभीरम् ।।

अन्य भी - अपश्य गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचिः स विषूर्चिवसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।

(ऋक् सं. १/१६४/३१, १०/१७७/३ वाज. यजु. ३७/१७ अथर्व ९/१०/११)

सृष्टि की उत्पत्ति समरूप अविच्छिन्न रस के आवरणों द्वारा विभाजन से हुयी है । आवरण ही छन्द है जिसके तीन तत्त्व हैं -

वय-वस्तु का उपादान या सामग्री वय है । यह प्राण के रूपान्तर हैं । वयोनाध-वस्तु की परिच्छेद सीमा है । यही छन्द है । यह भी प्राण है । वयुन-वस्तु के अस्तित्व का विज्ञान वयुन है - इसकी सामग्री का परस्पर सम्बन्ध तथा सीमा के बाहर के पदार्थ से विभेद है । छन्द के मूल धातु - (१) चदि (चन्द) आह्लादने, दीप्तौ च (पाणिनि धातु १/५६)

(२) छद संवरणे (१०/२४८) आच्छादित करना ।

(३) छद अपवारणे (१०/२६०) स्वरित, १०/३६२ अदन्त)-हटाना, छिपाना

(४) छदि (छन्द) संवरणे (१०/४६)

पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने छदि (छन्द) को ही मूल धातु माना है (वैदिक छन्दो मीमांसा- रामलाल कपूर ट्रष्ट-अध्याय १)

छन्द के वैदिक निर्वचन - वस्तु का सीमा द्वारा अवच्छेदन ही छन्द है । सीमा से आवृत होने के कारण वस्तु उसके बाहर नहीं जाती है । पं. मधुसूदन ओझा ने छादन के ११ विषयों का वर्णन छन्दः समीक्षा में किया है (ब्रह्म समन्वय का अव्यय अध्याय)-

यतो वस्तु व्यवच्छित्ति श्छन्द आयतनं च तत् ।

देश आयाम विस्तरौ दिक्कालौ छन्दसि स्फुटाः ।३८३।

अक्षरोपाधि वशतोऽवच्छिन्नं भवदव्ययम् ।

प्रत्यक्षं भवतिच्छन्दश्छन्दोभिश्छन्दनं च तत् ।

प्राणानाममृतानां तत् छन्दनं प्राणतोऽन्यतः ।३८५।

१. उपसंव्यान (भीतरी आवरण या वस्त्र), २, पर्याधान (बाहरी आवरण या वस्त्र) ३. चर्चितक (बाहरी लेप, विचारण), ४. अवरोध (बाधा), ५. व्याप्ति (विस्तार या माप), ६. दूषितकरण, ७. स्वरूप करण ८. ऊर्जन (गति या शक्ति देना), ९. विविता

(क्षेत्र का कुछ भाग अलग करना), १०. गोपन (छिपाना), ११. अन्तर्धान (लोप, अदर्शन)।

छन्द के पर्यायों की व्युत्पत्ति -

१. आवृति, संवृति-आ, सम् उपसर्ग + वृञ् वरणे+ क्तिन् । आवरण, संवरण से रूप, भाव होता है, करण अर्थ भी है ।

२. तन्त्रण - तत्रि कुटुम्बधारणे (धातु १०/१३५ सायण) या तत्रि धारणे (चन्द्र १०/६५) धारण या टिकाये रखना ।

३. अवच्छिति - अवपूर्वक छेदने से क्तिन् प्रत्यय । अखण्ड या असीम को खण्ड या सीमा बद्ध करना ।

४. चन्दन - चदि ह्लादने दीप्तौ च (१/५६) पद्यबद्धता या वस्तु के स्वरूप की आह्लादकता । उणादि में चन्देरादेश्च छः से छन्द हुआ है । चदि कान्तिकर्मा (यास्क) है, कान्ति, इच्छा, गति आदि अर्थ में भी है अतः छन्दों से वस्तु की गति है । ओझा जी के देवता निवित् तथा युधिष्ठिर मीमांसक के वैदिक छन्दो मीमांसा में चदि धातु का ग्रहण नहीं है । चदि का सम्भवतः निपातन से छदि होगया है (चड्ढी-कच्छा)।

५. हरिदान - इन्द्र के अश्व हरि हैं । इन दो हरियों से मास के दो पक्ष होते हैं । यह ऋक् साम भी हैं - ऋक् सामे वै हरि (शतपथ ब्रा. ४/४/३/६)। इन्द्र वय है उसके दो सीमाविन्दु हरि हैं, उनके दान (काटने या देने से) सीमा बद्ध छन्द या वयोनाध हरिदान होता है। हरिज (horizon) का अर्थ क्षितिज भी होता है

**वेद में छन्दों के प्रयोग**-छन्दों को वेद में पशु, व्रज, गोस्थान, सूर्य रश्मि, अश्व, प्रजापति का रथ, अग्नि के सात धाम, या अग्नि का तनू (शरीर), या वेद भी कहा गया है । **अर्थों का समन्वय** -जो दीखता है वह पशु है, छन्द या आवरण में सीमित रूप दीखता है । निर्माण या भोजन सामग्री अन्न है, वह भी कई टुकड़ों में बंटा है । माप के लिये गति की आवश्यकता है, मापदण्ड लेकर क्रमशः १,२,३... माप के साथ आगे बढ़ा जाता है, अतः छन्द गति है तथा गति का स्थान ब्रज है । सूर्य रश्मि से भी गति की माप है, अतः रश्मि या गो तथा उसका स्थान गति है । जैसे १ त्रुटि (सेकण्ड का ३३,७५० भाग) में प्रकाश जितनी दूर जाता है वह योजन है । सभी लोक, धाम, या शरीर विस्तृत सोम के सधन रूप अग्नि हैं, उनका शरीर छन्द या आकार प्रकार वाला है । सम्पूर्ण विश्व में पिण्ड की माप, गति, महिमा ही वेद त्रयी है, ये तीनों तथा उनका मूल अनन्त छन्द रूपी अथर्व भी छन्द है । अतः छन्द वेद हैं ।



गति कारक रूप में छन्द अश्व भी हैं ।

**छन्दों का वेदार्थ में प्रयोगः -**

(१) वाक् या अक्षरों का परिमाण छन्द हैं । यह गायन और काव्य में उपयोगी होने के अतिरिक्त वाक्य खण्डों का भी निर्देश करता है । वाक्य एक छन्द होता है, पूर्ण अर्थ के वाक्यांश छन्द के पद हैं । बड़े छन्दों में एक पद में भी एक या दो यति देकर विभक्त किया जाता है । छन्द, पद और यति के बाद ही शब्दों का अन्वय कर उनका अर्थ निर्देश होता है ।

(२) देश और काल की सीमा का निर्देश- पिण्डों का आकार छन्दों से निर्दिष्ट होता है । उनका परिवर्तन काल सापेक्ष है अतः वह भी छन्दों पर आधारित है । वस्तु के अवयवों की संख्या, माप संख्या आदि की माप भी छन्दों से होती है ।

**वैदिक उदाहरण**-

(१) यश्छन्दोभिश्छन्नः तस्मात् छन्दांसी व्याचक्षते। (दैवत ब्रा. ३/१९)
यत् छन्दोभिश्छन्नः तस्माच्छन्दांसि इत्याचक्षते ।(ऐतरेय आ. २/१/६)
विश्व इनसे छाना गया है, अत: इन्हें छन्द कहते हैं।

(२) छन्दांसि छन्दयन्तीति वा। (दैवत ब्रा. ३/३०)
तानि अस्मा (अस्मै = प्रजापतये) अच्छदयँ स्तानि यद् अस्मा अच्छदयन् तस्मात् छन्दांसि। (शतपथ ब्राह्मण ८/५/२/१) ते छन्दोभिः आत्मानं छादयित्वा उपयान् तत् छन्दसां छन्दस्त्वम्। (तैत्तिरीय संहिता ५/६/६/१)
उनने विश्व, आत्मा या प्रजापति को छादित (ढंका) किया अत: वे छन्द हुये।

(३) देवाः असुरान् हत्वा मृत्योः अबिभयुः, ते छन्दांसि अपश्यन्, तानि प्राविशन्, तेभ्यः यद् यद् अच्छदय तेन आत्मानम् अच्छादयन्त तत् छन्दसां छन्दस्त्वम् (मैत्रायणी ब्राह्मण ३/४/७)
तद् यद् एनान् छन्दांसि मृत्योः पाप्मनोऽछादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्, एनान् = देवान्। (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १/२८४)
उन्होंने छादन (ढंकना) किया तथा उससे देवताओं तथा असुरों की पाप्मा (विभाजन, खण्डन रूपी पाप) तथा मृत्यु से रक्षा की, अत: वे छन्द हुये।

**पौराणिक उदाहरण**-केवल भागवत पुराण के कुछ वाक्य दिये जाते हैं-

(१) छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति। (२/१/३१)
= छन्द अनन्त के सिरों को अलग करते हैं।

(२) वाचां बह्वे मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः। (२/७/११)
छन्द ७ धातु हैं जो विश्व की माप हैं ( ७ प्रकार के युग तथा योजन)
(३) छन्दांसि साक्षात् तत्र सप्त धातवः त्रयीमयात्मन्। (८/७/२८)
= छन्दों के ७ धातु ३ प्रकार के हैं।
(४) छन्दः सुपर्णैः ऋषयो विविक्ते। (३/५/४०)
= ऋषियों ने छन्द का विवेचन सुपर्ण (पक्षी, जिसके दोनों पक्ष में अंग हैं) के रूप में किया है।
(५). छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि रोम। (३/१३/३५)
= छन्द इस विश्व की त्वचा तथा रोम हैं।
(६) ताक्ष्र्येण स्तोत्र वाजिना। (४/७/१९)
= छन्द ताक्ष्र्य (३ तारा, गरुड पक्षी) के घोड़े हैं।
(७) गरुडो भगवान् स्तोत्र-स्तोमश्छन्दोमयः। (६/८/२९)
= भगवान् गरुड स्तोत्र (वर्णन), स्तोम (आयतन) तथा छन्द (आवरण, माप) रूपों में है (३ प्रकार के ७ छन्द)
(८) यत्र हयाः छन्दोनामानः सप्त। (८/३/३१)
= जिसके घोड़े ७ नामों के छन्द हैं।
(९) छन्दोमयं यदजयार्पित षोडशारं संसार चक्रम् ।(७/९/२१-२२)
= संसार चक्र के १६ अरे छन्द मय हैं।
(१०) खेभ्यमयं छन्दांसि ऋषयः। (८/३/३९)
= छन्द तथा ऋषि आकाश में व्याप्त हैं।
(११) छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः। (८/७/३०)
(पुराण = पुर में गतिशील प्राण) देव, ऋषि, पुराण-सभी छन्दोमय हैं।
(१२) यस्य छन्दोमयो ब्रह्मदेहः आवपनं विभो ।(१०/८०/४५)
= ब्रह्म का शरीर तथा उसका बीज छन्दोमय है।
(१३) यद्यसौ छन्दसां लोकम् आरोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् ।(११/१७/३१)
= छन्द इन लोकों तथा ब्रह्म-विटप की माप हैं।
वायु पुराण (अध्याय ५२), ब्रह्माण्ड पुराण (पूर्वार्ध, अध्याय २२), विष्णु पुराण (२/८-१०), मत्स्य पुराण आदि भी द्रष्टव्य हैं।
**(३) छन्दांसि**-छन्दश्च+छन्दश्च+छन्दश्च=छन्दांसि। तीन छन्द हैं-



प्रथम छन्द = अथर्व वेद,
द्वितीय छन्द-ब्राह्मण (ब्राह्मण + आरण्यक + उपनिषद्)
तृतीय छन्द-शब्द तथा विश्व की माप। (विश्व =काल +आकाश + दिशा +मिश्रण)
व्याकरण सूत्र-चार्थे द्वन्द्वः(पाणिनि अष्टाध्यायी २/२/२९)-द्वन्द्व समास। सरूपाणामेकशेष विभक्तौ (१/२/६४)-समान शब्देषु एकोऽवशिष्यति। जश्शसोः शिः(७/१/२०)-तत् शि कथ्यते। शि सर्वनामस्थानम्(१/१/४२)-शि सर्वनामो भवति। नपुंसकस्य झलचः(१/१/७२)-तस्माद् नुम् विभक्ति। सान्तमहतः संयोगस्य (६/४/१०)-दीर्घ-छन्दांसि। चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि(१/३/६२) सूत्रे वार्तिक :- षष्ठ्यर्थे चतुर्थीतिवाच्यम् तस्मिन् महाभाष्ये ब्राह्मण भागस्योदाहरणः-या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः।
गायत्री प्रमुखं छन्दः।(अमरकोष २/७/२२)
(४) **विश्व वेद के तत्त्व**-तत्त्वों की संख्या का निर्देश इस सूक्त में है-
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।
(ऋक्.१/१६४/४१, अथर्व.९/१०/२१,१३/१/४२; तैत्तिरीय ब्रा.२/४/६/११, तै.आ.१/९/४, निरुक्त ११/४०)
अविभक्त वाक् को गौरी (श्वेत, वर्णहीन) कहा गया है-यह मुक्त आकाश या मन में है। सृष्ट जगत् या व्यक्त शब्दों में यह कृष्ण हो जाता है। कहे या लिखे शब्द सभी भावों को व्यक्त नहीं कर पाते-भाषा में, उसके ज्ञान में या व्यक्त करने के तरीके में कमी रह जाती है। सृष्ट जगत् भी प्रकाश का शोषण तथा अवरोध करता है अतः कृष्ण है। गौरी वाक् सलिल (तरंग मय जल जैसा विश्व) को १, २, ४, ८, ९, १००० भागों में बांट देती है। इसी विभाजन द्वारा ६ प्रकार की दर्श-वाक् (दृश्य लिपि) की अक्षर संख्या या ६ दर्शनों की तत्त्व-संख्या निर्धारित करते हैं।
सांख्य -$(१+ ४)^२$ = २५ अक्षर की रोमन लिपि। सांख्य अत्रि उत्तर पश्चिम दिशा में गये थे, उसी क्षेत्र में यह प्रचलित है (महाभारत, शान्ति पर्व (२०८/२८-३४) ऋग्वेद १/११७/३)
शैव- $(२ +४)^२$= ३६ अक्षर की लैटिन, अरबी, रूसी, गुरुमुखी।
मरुत् - $(१+२=४)^२$ = ४९ अक्षर की देवनागरी लिपि।
कला - ८ × ८ = ६४ अक्षर की ब्राह्मी लिपि।

विज्ञान वाक् (वेद में)- $(८+९)^{२}$ = २८९, ३६ × ३ स्वर, ३६ × ५ = व्यञ्जन, तथा १ अविभक्त ॐ।

साहस्री वाक्-$१०^{३}$ से $१०^{४}$ अक्षरों की लिपि व्योम (त्रिविष्टप = तिब्बत) से परे चीन में है।

अगले सूक्त के अनुसार इससे विश्व निर्माण चक्र की आयु निकलती है-

तस्याः समुद्राः अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।

ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति। ((ऋक् १/१६४/४२)

इन विभागों के अनुसार विश्व का उप-जीवन है-

(१+२=३) × ४ × ८ × ९ × १००० × १०००० = ८, ६४, ००, ००, ०००। यह ब्रह्मा के कल्प (सृष्टि-प्रलय का चक्र) की वर्ष संख्या है। इतने वर्ष में प्रकाश जितनी दूर जाता है, वह तपः लोक की सीमा है। इसका आधा १ कल्प या ब्रह्मा का दिन है, उसमें १००० युग हैं। युग का १/१० भाग कलियुग की वर्ष संख्या या ऋग्वेद की शब्द संख्या है। १८ पुराणों में इतने ही श्लोक हैं।

(५) **मूल वेद**-अव्यक्त ब्रह्म को अनन्त वेद कहा गया है। उससे ५ पर्वों के अनुरूप ५ सृष्टि वेद हैं-

०-अनन्त वेद-(भरद्वाज के-तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१०/११)

१-स्वयम्भू ब्रह्म का अग्नि वेद-यह ब्रह्म का निःश्वास या विश्व के विस्तार-संकोच का चक्र है।

२. परमेष्ठी मण्डल (दिक् सोम) का स्वेद वेद (गोपथ ब्राह्मण १/१)-भृगु -अंगिरा।

३. सौर मण्डल का गायत्री मात्रिक वेद-दैव या आकाश यज्ञ।

४. चान्द्र मण्डल के भास्वर सोम (सूर्य से प्रकाशित) का स्वेद-वेद।

५. पृथ्वी-अन्नाद अग्नि द्वारा पार्थिव यज्ञ वेद।

लोकों के ३ × ३ विभाजन के अनुसार वेद-

१. संयती-(ब्रह्म निःश्वसित)

   १. स्वयम्भू-ब्रह्म-अक्षर-द्यु (स्वः)-ऋक्

   २. मध्य-इन्द्र-विष्णु अक्षर-अन्तरिक्ष (भुवर्)- यजु।

   ३. परमेष्ठी तथा इसका क्षेत्र-अग्नि-सोम-भू लोक-साम ।

२. क्रन्दसी-गायत्री मात्रिक -विष्णु का

   १. परमेष्ठी-ब्रह्म-अक्षर-द्यु (स्वः)-ऋक्



   २. मध्य-इन्द्र-विष्णु अक्षर-अन्तरिक्ष (भुवर्)- यजु।

   ३. सौर मण्डल तथा इसका क्षेत्र-अग्नि-सोम-भू लोक-साम ।

३. रोदसी-यज्ञ वेद -शिव का।

   १. सौर मण्डल-ब्रह्म-अक्षर-द्यु (स्वः)-ऋक्

   २. मध्य-इन्द्र-विष्णु अक्षर-अन्तरिक्ष (भुवर्)- यजु।

   ३. पृथ्वी तथा इसका क्षेत्र-अग्नि-सोम-भू लोक-साम ।

पृथ्वी से दृष्ट ३×३ वेद-

१. दिव्य अग्नि- संयती

   १. स्वयम्भू ४८ स्तोम तक-ऋक्

   २. सौर मण्डल ३३ अहर्गण तक-यजु

   ३. सूर्य रथ का चक्र २१ अर्गण तक- साम

२. अन्तरिक्ष अग्नि-क्रन्दसी-

   १. सौर मण्डल- ३३ अहर्गण तक- ऋक्

   २. सूर्य का चक्र २१ अहर्गण-यजु

   ३. पृथवी ३ अहर्गण तक-साम

३. यज्ञ वेद-रोदसी-

   १. सूर्य का चक्र-आदित्य २१ अहर्गण तक-ऋक्।

   २. वराह-वायु-१५ अहर्गण तक-यजु

   ३. पृथ्वी का क्षेत्र-९ अहर्गण तक-साम।

त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः, वेदाश्च तिस्रो वा इमा पृथिव्याः। इयमहैका, द्वेऽस्याः परे। (शतपथ ब्राह्मण ५/१/५/२१) = लोक ३ या ३×३ हैं। वेद ३ हैं, पृथ्वी भी ३ हैं। यह प्रथम है, २ इसके परे हैं।

**(६) त्रयी विभाग**-सभी त्रयी वेद रूप हैं जिनकी मूर्त्ति श्री जगन्नाथ-बलभद्र-सुभद्रा के रूप में है। कुरान के आरम्भ में इनको अलिफ्-लाम्-मीम् कहा गया है। ग्रन्थ साहब में यही सत्-श्री-अकाल है। सामान्यतः ईश्वर को सत्-चित्-आनन्द कहते है। गीता में भी कहा है-ॐ तत् सत् इति निर्देशः ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। (१७/२३)। गतिशील प्राण रं हो जाता है, व्यक्ति रूप तत् का निर्देश नाम द्वारा होता है, अतः प्रेत के लिये कहते हैं-राम-नाम-सत्। प्रायः अन्य ५० त्रयी की सूची नीचे दी जा रही है-

१. ऋक् तत्त्व अग्नि रूप में (ऋक् १/३६/११)
२. ऋक्-साम अग्नि (ऋक् ५/४४/११४, १५)
३. सर्वहुत यज्ञ तथा वेद-(पुरुष सूक्त -ऋक् १०/९०/९)
४. पाञ्चजन्य (पञ्चपर्वा सृष्टि) अग्नि-यजु (१८/६७)
५. मन-प्राण-वाक् (यजु ३६/१)
६. मन रूपी सभी इन्द्रियां (शिव-सङ्कल्प सूक्त-यजु ३५/५)
७. मन = गन्धर्व, ऋक्-साम = अप्सरा (यजु १८/४३, शतपथ ब्रा ९/४/१/१२)
८. गरुत्मान् सुपर्ण-यजु (१२/४)
९. नवाह (१७-२५ अहर्गण) यज्ञ-अथर्व (१०/७/१४)
१०. स्कम्भ (आधार स्तम्भ)-अथर्व (१०/७/२०)
११. संस्कार (शोधक-उन्नति क्रियायें)-अथर्व (११/८/२३)
१२. त्रिलोकी के ८ प्रकार-अथर्व (१४/२/७१)
१३. सम्वत्सर-इसके प्राय: ८ अर्थ हैं-यह सूर्य के चारों तरफ पृथ्वी की कक्षा, उसका क्षेत्र तथा उसका कालमान है। इस काल में सूर्य से प्रकाश जितनी दूर जाता है, वह भी सम्वत्सर क्षेत्र है जिसके ६ भाग वषट्कार हैं। मनुष्यों का कार्य प्राय: इसी चक्र में चलता है-व्यावहारिक वर्षमान रूप में इसके ५ रूप हैं। (शतपथ ब्राह्मण १०/४/२/२१-२६)
१४. स्वयम्भू की वाक् (शतपथ ब्राह्मण १०/५/१/१-५)
१५. सौर मण्डल (शतपथ ब्राह्मण १०/५/१/१-२)
१६. कृष्ण मृग-कृष्ण मृग का चमड़ा विश्व का आधार (पृथवी की सतह सभी प्रकाश को सोख लेती है) यह अथर्व है। इस के ३ मूल रंग चर्म पर ३ प्रकार केश हैं जो त्रयी वेद हैं। (शतपथ ब्राह्मण १०/१/४/१-३). ब्रह्म कृष्ण चर्म या वस्त्र है (कौषीतकि ब्राह्मण ४/११, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/७/१/४, २/७/३/३, (शतपथ ब्राह्मण ६/४/१/६, ६/४/२/६, ३/२/१/२८)। अग्नि के ३ रूप हैं-पृथ्वी के भीतर मूषिक (आखु), सतह पर पिप्पल, तथा उस पर चलने वाला लाल अश्व है-तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/३/३, ९) शतपथ ब्राह्मण (६/६/३/४)। सौर ऊर्जा से यज्ञ कई स्थानों पर वर्णित है, यथा शतपथ ब्राह्मण १/१/२/२१, २/१/४/१९, ७/१/३४/१, १०/४/५/२, ११/२/७/१), जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (२/२/१) आदित्य प्रकाश है, अंगिरा उसकी अर्चि तथा ताप है-(साम पूर्वार्चिक १/१०/२,



ऐतरेय ब्राह्मण १८/३/१७, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/३/५-६)। आदित्य प्रकाश की गति से जाता है (ऋक् ३/५३/८, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १/४४/९)
१७. आत्मा के ३ समुद्र-(शतपथ ब्राह्मण ९/४/३/१२)
१८. सा + अम =साम का युग्म (ऐतरेय ब्राह्मण १२/१२/२,३)
१९. धर्म वेद-(ऐतरेय ब्राह्मण ४/६/२२)
२०. ब्रह्म +क्षत्र -(ऐतरेय ब्राह्मण ४०/५/२७)
२१. इन्द्र के २ हरि (ऋक्+ साम)-(ऐतरेय ब्राह्मण ८/६/२४)
२२. वेदों की ४ दिशायें-(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/९/१)
२३. दिन के ४ भाग तथा वेद-(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/९/२)
२४. मूर्त्ति-गति-महिमा-आधार-(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/९/३)
२५. ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/९/४)
२६. पृथ्वी- द्यौ= ऋक्-साम- (ताण्ड्य महा ब्राह्मण ४/३/५, ६)
२७. चार अहर्गणों (९, १५, २१, ३३) के स्तोम अग्नि-वायु-आदित्य-अप् रूपों में ४ वेद हैं-(गोपथ ब्राह्मण, पूर्व १/२९)
२८. प्रजापति के वेद- (कौषीतकि ब्राह्मण ६/१०)
२९. तीन लोकों का रस-(जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १/१/१-५)
३०. पितर रूप-(दैवत ब्राह्मण २/२३-२४)
३१. भैषज्य (निदान, चिकित्सा, पुष्टि, आरोग्य)-षड्विंश ब्राह्मण १/५)
३२. व्याहृति-रस से पदार्थ लेकर (आहृति) उससे ३ लोकों का निर्माण-(ऐतरेय आरण्यक १/२/१०)
३३. अजपृश्नि ऋषियों द्वारा स्वयम्भू वेद (अज = अव्यय, पृश्नि = विविध रंग)-तैत्तिरीय आरण्यक (२/९)
३४. आत्मा के महाव्रत-शांख्यायन आरण्यक (१/१)
३५. साम के ४ पाद रूप-नृसिंह पूर्वतापिनी उपनिषद् (१/४)
३६. उद्गीथ (ध्वनि निकलना) रूप वेद- छान्दोग्य उपनिषद् (१/३/७)
३७. देव मधु रूपी वेद-छान्दोग्य उपनिषद् (३/१)
३८. रस वेद-छान्दोग्य उपनिषद् (३/५)
३९. आधिदैवत वेद-छान्दोग्य उपनिषद् (१/८)
४०. अध्यात्म वेद-छान्दोग्य उपनिषद् (१/९)

४१. प्रणव (ॐ) वेद-छान्दोग्य उपनिषद् (२/२३/१,२)
४२. अस्वस्थ प्रजापति तथा उसका उपचार (३१ भी)-छान्दोग्य उपनिषद् (४/१७)
४३. अन्न रूपी भूत-बृहदारण्यक उपनिषद् (१/२/५)
४४. ब्रह्म की प्रतिमा रूपी वेद-कौषीतकि उपनिषद् (१/७)
४५. पर्यङ्क रूपी वेद-कौषीतकि उपनिषद् (१/५)
४६. देव-मनुष्य का पिता-पुत्र रूप-मनुस्मृति (४/१२४)
४७. प्रजापति के त्रिवृत (३ × ३ = ९) वेद-मनुस्मृति (११/२६४-२६५)
४८. सावित्र वेद-मनुस्मृति (२/७६-७७)
४९. विश्व की संस्थायें-मनुस्मृति (१/२१)
५०. अग्नि-वायु-रवि रूप वेद-मनुस्मृति (१/२३)
५१. सभी सृष्टि, रूप, काल आदि-मनुस्मृति (१२/९७-९८)
५२. सूर्य का गायत्री वेद-मार्कण्डेय पुराण सूर्य द्वारा सृष्टि का अध्याय, ऋक् (१०/१२९/५) शतपथ ब्राह्मण (१०/५/२/२), तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/१/२/४)।

**(७) वेद शाखा**-विश्व के तत्त्वों का विभाजन ही वेदों की शाखायें हैं। यजु (यत् + जू = प्राण या गति + आकाश) का अर्थ शतपथ ब्राह्मण (१०/३/५/१-१६) में है। इसकी १०० शाखा शतपथ ब्राह्मण (१०/२/४/१-९, १०/२/६/११-१३) में है। प्राण के ५० ईंट तथा आकाश की भी ५० हैं। यह आकाश में चक्रीय गति का प्रवाह है जिससे निर्माण होता है।

इन प्राकृतिक विभागों के आधार पर २८वें व्यास कृष्ण द्वैपायन ने वेदों का शाखा विभाजन किया-ऋक् की २१, यजु की १०१, साम की १००० तथा अथर्व की ९-

अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते अस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत्।
य एकः सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः।(न तु कर्त्ता-द्रष्टा वा)।
पाराशर्य्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः।।
आराध्य देवमीशानं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्।
तत् प्रासादादसौ व्यासो वेदानामभवत् प्रभुः।।
अथ शिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च।।
पैलं तेषां चतुर्थञ्च पञ्चमं मां (सूतम्) महामुनिः।



ऋग्वेद श्रावकं पैलं प्रजग्राह महामुनिः।।
यजुर्वेद प्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।
जैमिनिं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यत।।
तथैवाथर्व्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत्।।
एक आसीद्यजुर्वेदस्तच्चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूद्यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्।।
आध्वर्यं यजुर्भिस्यादृग्भिर्हौत्रं द्विजोत्तमाः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्त्वञ्चाप्यथर्व्वभिः।।
ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदञ्च सामभिः।।
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखानान्तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत्।।
सामवेदं सहस्रेण शाखानाञ्च विभेदतः।
अथर्व्वाणमथो वेदं बिभेद नवकेन तु।
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः।
योऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्व्वं पुरातनात्।।
इत्येतदक्षरं वेद्यमोङ्कारं वेदमव्ययम्।
अत्रेदञ्च विजानाति पाराशर्य्यो महामुनिः। (कूर्म पुराण, अध्याय ४९)

उपलब्धौ यत्नः क्रियताम्। महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः। सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाः, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधा भिन्नाः-एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाह्वृच्यं, नवधाऽऽथर्वणो वेदः। वाकोवाक्यम्, इतिहासः, पुराणं, वैद्यकमित्येतावाञ्छब्स्य प्रयोगविषयः। (पतञ्जलि, व्याकरण महाभाष्य,१/१/१)

ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशति संख्यकाः।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज।१२।।
सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद् भेदतो हरे।।१३।।(मुक्तिकोपनिषद्)
एकविंशति शाखायामृग्वेदः परिकीर्तितः। शतं च नव शाखासु यजुषामेव जन्मनाम्।

साम्नः सहस्रशाखाः स्युः पञ्चशाखा अथर्वणः। (सीतोपनिषत् ५)

अतः अथर्व की ९ शाखा हैं, कुछ स्थानों पर ५० कही गयी हैं। साम शाखायें १००० हैं पर साम-तर्पण-विधि में १३ शाखायें वर्णित हैं। आकाश में पृथ्वी का १००० गुणा आकार का धाम $२^{१०}$ गुणा अर्थात् १० +३ =१३ अहर्गण का है। इसी प्रकार पृथ्वी का ५० गुणा बड़ा आकार $=२^{६}$ (६४), या ६ + ३ = ९ अहर्गण।

**(८) उपलब्ध शाखायें**-वेदव्यास ने ११३१ मन्त्र संहिता, तथा उतने ही ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् बनाये थे। यह विश्व का शब्द में रूपान्तर है। विश्व की स्थिति-क्रिया-प्रभाव वेद-पुरुष है, उनका शब्द रूप त्रयी भगवती हैं-

शब्दात्मिकां सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।
(दुर्गा सप्तशती ४/१०)

कई विविध प्रकार के शास्त्र अब सुने भी नहीं जाते-रहस्य, वाकोवाक्य, नाराशंसी, संस्कार, अन्वाख्यान, स्वर, अनुशासन, अनुमार्जन, इतिहास, गाथा, व्याख्यान, अनुव्याख्यान, श्लोक, विद्या आदि। केवल कुछ मन्त्र संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा प्रायः २४० उपनिषद् उपलब्ध हैं। कुल ११ संहिता उपलब्ध हैं।

१. **ऋक्** की शाकल शाखा में १० मण्डल, २००६ वर्ग, १००० सूक्त, ८५ अनुवाक् तथा १०,४४० मन्त्र हैं। १००० सूक्तों के प्रतीक विष्णु सहस्रनाम (महाभारत, अनुशासन पर्व) के १००० नाम हैं। मध्व सम्प्रदाय के रघुनाथ तीर्थ ने ऐतरेय आरण्यक के आधार पर यह व्याख्या की है। शाकल शाखा के यही सूक्त वाष्कल शाखा में ८ अष्टक तथा ६४ अध्यायों में विभाजित हैं। शांख्यायन शाखा में परिशिष्ट तथा बालखिल्य सूक्त अलग नहीं हैं, संहिता के ही भाग हैं-किन्तु यह उपलब्ध नहीं है।

२. **यजु**- शुक्ल की १५ शाखाओं में २ उपलब्ध हैं-काण्व तथा माध्यन्दिन (या वाजसनेयी)। कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं में ४ हैं-तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, कपिष्ठल।

३. **सामवेद** की ३ शाखायें हैं-राणायन, कौथुमी, जैमिनि।

४. **अथर्ववेद** की शौनक तथा पिप्पलाद शाखा हैं। पिप्पलाद (या पैप्पलाद) शाखा की कश्मीर की प्रति को नष्ट कर उसे रोमन लिपि में बर्लिन विश्वविद्यालय में रखा गया था। उसके आधार पर प्रो. रघुवीर ने उसका प्रकाशन किया था। मयूरभंज जिले के खीचिंग में उपलब्ध प्रति ओड़िशा म्यूजियम में थी जिसके आधार पर विश्वभारती



के प्रो. दीपक भट्टाचार्य ने इसका प्रकाशन किया है।

**ब्राह्मण**-१. ऋक्-ऐतरेय, शांख्यायन (कौषीतकि)

२. यजु-शतपथ (काण्व, तथा माध्यन्दिन)। कृष्ण यजुर्वेद में तैत्तिरीय बाह्मण, तथा अंशतः काठक ब्राह्मण उपलब्ध है।

३. साम-प्रौढ (ताण्ड्य), षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, छान्दोग्य उपनिषद्, संहितोपनिषद्, वंश।

४. अथर्व-पैप्पलाद शाखा का गोपथ ब्राह्मण।

**आरण्यक**-१. ऋक्-ऐतरेय, शांख्यायन।

यजु-शुक्ल-बृहदारण्यक उपनिषद्, कृष्ण-तैत्तिरीय ।

साम-तवल्कार (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण)

अथर्व- कोई नहीं।

मुक्तिकोपनिषद् में ४ वेदों के १०८ उपनिषदों का उल्लेख किया है।

(९) **सृष्टि वेद**-सृष्टि रूप में वेदों के कई अर्थ हैं-अनन्त विज्ञान जिससे सृष्टि का आरम्भ हुआ। (२) यज्ञ या निर्माण क्रिया, (३) ज्ञान पाने की प्रक्रिया तथा इसके क्रम, (४) विश्व (वेद-पुरुष) की रचना। रचना पुर है तथा इसका निवासी पुरुष। (५) आकाश के विभिन्न क्षेत्र-अग्नि, वायु, रवि। (६) सृष्टि-प्रलय का चक्र, (७) तत्त्व तथा उनके गुण, आदि। इनके कुछ उदाहरण हैं-

(१) एष वेदो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
(श्वेताश्वतर उप.४/१७)

(२) स्वयम्भूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा। (भागवत पुराण.)

(३) वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुमः। (विष्णु स्मृति)

(४) आद्यं यत्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयो यस्मिन् प्रतिष्ठिता।
स गुह्योऽन्यस्त्रिविद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् (मनुस्मृति, १२/२६५)

(५) ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतेनान्येति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं च
(प्रश्नोपनिषत्.५/७)

(६) चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भवच्चैव सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।। (मनुस्मृति १२/९७)

(७) शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च पञ्चमः।

वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूति गुणकर्मतः। (मनुस्मृति १२/९८)
(८) अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं निरञ्जनम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः(वाक्यपदीय)
(९) अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
(मुण्डकोपनिषद् , २/१/४)(१०)
अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।। (मनुस्मृति १/२३)
(११) तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचःसामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। (वा.यजु.३१)
(१२) एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैवैतानि निःश्वसितानि। (बृहदारण्यक उपनिषद्.२/४/१०)
(१३) वाचा वै वेदाः सन्धीयन्ते, वाचा छन्दांसि, वाचा मित्राणि सन्दधति, वाचा सर्वाणि भूतानि। अथो वागेवेदं सर्वम्। (ऐतरेय आरण्यक.१/५/६)
(१४) ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः, सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजं सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/८/१)
(१०) **शब्द वेद**-शब्द वेद सृष्टि वेद का ही शब्द रूप है। इसके कुछ उदाहण-
(१) द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द-ब्रह्म परं च यत्।
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।। (मैत्रायणी उप. ६/२२)
(२) शब्दात्मिकां सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथ रम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्व जगतां परमार्तिहन्त्री।।
(दुर्गा सप्तशती ४/१०)
(३) द्वे विद्ये वेदितव्ये-.. परा चैव, अपरा च। तत्र अपरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति। अथ परा-यया तदक्षरमधिगम्यते। (मुण्डक उप.१/१/४,५)
(४) अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।(ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य १/३/२८)
(११) **मनुष्य कृत वेद**-वेद को अपौरुषेय कहते हैं, पर इसके मन्त्रों की रचना मनुष्य



द्वारा ही हुयी है। यह कई स्थानों पर कहा गया है-
(१) आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः।४।
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः स चा यमस्य जातममृतं यजामहे।५।
(ऋग्वेद १/८३/४,५)
(२) ब्रह्मा देवानां प्रथमं सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भरद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्।
(मुण्डकोपनिषद् १/१/१,२)
(३) अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भू अभ्यानर्षत्। तद् ऋषयोऽभवन्। त एवं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्। (तैत्तिरीय आरण्यक. २/९/१)
(४) ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः, साक्षात्कृतकर्माण ऋषयो बभूवुः। (निरुक्त .१/२०)
(५) तद्वा ऋषयः प्रतिबुबुधिरे, य उ तर्हि ऋषय आसुः(शतपथ ब्रा.२/२/१/१४)
(६) आप्तोपदेशः शब्दः। (न्याय सूत्र १/१/७)
(७) नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो।
मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्राहु (दु) दैवीं वाचमुद्यासम्।।
(वरदापूर्वतापिनी उपनिषद्, तैत्तिरीय आ. ४/१/१, मैत्रायणी सं. ४/९/२)
(८) यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण।
तां दैवी वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके।।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण.२/८/८/१४)
(९) ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयत् गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः(ऋक्.९/११४/२)
(११) **प्रति युग में अलग वेद**-कई बार वैदिक सभ्यता नष्ट हुयी है या की गयी है। हर युग में ऋषि इसका पुनः निर्माण करते हैं-
(१) युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्। (ऋक्.६/८/५)
(२) युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा।। प्रति मन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते।

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम्।। ऋषीणां तप्यतामुग्रं तपः परमदुश्चरम्।
मन्त्राः प्राहुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह।(वायु पुराण अध्याय ५९)
(३) अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्व रेतसाम्।
प्रजावतां च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव!
ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे।
लोक-सम्भव सन्देहः समुत्पन्नो महात्मनाम्।।२।।
तेऽतिष्ठन् ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थाय निश्चलाः।
त्यक्ताहाराः पवनपा दिव्यं वर्षशतं द्विजाः।।३।।
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागता।
दिव्यासरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात्।।४।।(महाभारत, सभापर्व, अध्याय ११)
एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः, सकल्पाः, सरहस्याः, सब्राह्मणाः, सोपनिषत्काः, सेतिहासाः, सान्वाख्यानाः, सपुराणाः, सस्वराः, ससंस्काराः, सनिरुक्ताः, सानुशासनाः, सानुमार्जनाः, सवाकोवाक्याः। (गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग २/९)
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। (आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २४/१/३१)
मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते। (बौधायन गृह्य सूत्र २/६/२)
आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च। (कौशिक सूत्र १/३)
(१२) **वेद का अपौरुषेयत्व**-वेद तथा उसी प्रकार तोरा, कुरान, बाइबिल को भी ईश्वर की वाणी कहा गया है। ईश्वर निराकार, अव्यक्त है। उसकी वाणी क्या है? यदि वह प्रकट भी हुयी तो उसे कैसे सुना जायगा? अन्ततः किसी मनुष्य द्वारा ही सुना जायगा, जो अपनी भाषा में उसे व्यक्त करेगा जिससे दूसरे भी उसे समझ सकें। भगवान हर स्थान पर तथा सबके भीतर है। अतः अपने अन्तर की वाणी ही ईश्वर की वाणी है-।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः। (ईशावास्योपनिषद्)
पर किस मनुष्य की अन्तः वाणी को ईश्वर का शब्द कहेंगे ? जब हम पूरे विश्व का विचार करते हैं, तो इसके ३ मुख्य रूप दीखते हैं-आकाश की रचनायें (आधिदैविक जगत्), पृथ्वी पर दीखनेवाला (आधिभौतिक) तथा अपने भीतर (आध्यात्मिक)। तीनों की एकता या सम्बन्ध को ईश्वर की वाणी कह सकते हैं। इस सम्बन्ध को जो समझता है, वही ईश्वर की बात सुनता है।
जब कोई मनुष्य बोलता है, तो उसकी सांस निकलती है, तथा एक विराम के बाद


वह फिर सांस लेता है। इसी प्रकार वेद को भी भगवान् का श्वास कहा गया है। (पूर्व अनुच्छेद ९ का क्रम १२)। भगवान् सम्पूर्ण विश्व है, अतः उसकी श्वास विभिन्न स्तरों पर विश्व की चक्रीय क्रियायें हैं। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है, उसके हर विन्दु पर स्पन्दन हो है है। जो गति दीखती है, वह कर्म है। जिस कर्म द्वारा चक्र में उपयोगी उत्पादन होता है, वह यज्ञ कहा गया है, जो गीता के निम्न श्लोकों द्वारा स्पष्ट है।-
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।१०।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।१४।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।१५।
एवं प्रवर्तितं चकं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघः पार्थ स जीवति।१६।(गीता, अध्याय ३)
सृष्टि के आरम्भ में ही प्रजापति ने यज्ञ संस्था बनायी जिससे लोग इच्छित वस्तु का उत्पादन कर सकें। उत्पादन का चक्र है-अक्षर (कर्त्ता रूप), ब्रह्म (निर्माण का पदार्थ, स्थान, साधन), कर्म (क्रिया), यज्ञ (वस्तुओं में परिवर्तन), पर्जन्य (उत्पादक परिवेश), अन्न (भोजन, कोई भी भोग की वस्तु), भूत (प्राणी)-जिनका कर्त्ता रूप पुनः अक्षर है। जो इस चक्र के अनुसार नहीं चलता वह पापी है तथा बेकार ही जीता है। ये सभी क्रियायें वेद हैं-वेद का उद्देश्य यज्ञ कहा गया है।
यज्ञ क्रिया में अक्षर पुरुष के अतिरिक्त कई तत्त्व हैं, अतः वह पूरी तरह पौरुष नहीं है। किन्तु वह प्रायः पुरुष निर्मित है, जो मीमांसा सूत्रों से स्पष्ट है-
वेदांश्चैके संनिकर्षं पुरुषाख्याः।(१/१/२७)-वेद पुरुष के बहुत निकट हैं।
अनित्यदर्शनाच्च।(२८)-अनित्य चीजों के दर्शन से भी यह स्पष्ट है।
उक्तं तु शब्दपूर्वत्त्वम्।(२९)-पहले शब्द का निर्माण होगा (मनुष्य द्वारा) तभी कोई बात कही जा सकती है।
आख्याः प्रवचनात्।(३०)-प्रवचन से ही शिक्षा होती है। (गुरु-शिष्य दोनों मनुष्य हैं)
परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्।(३१)-तात्कालिक घटनाओं को सनातन मानते हैं।
कृते वा विनियोगः स्यात्, कर्मणः सम्बन्धात्।(३२)-निर्जीवों की क्रियायें सजीवों के कर्म से सम्बन्धित हैं।
मनुष्य द्वारा व्यक्त शब्दों में कई त्रुटि होती हैं-९१) उनमें व्यक्तिगत विचार, अहङ्कार अदि होता है। (२) मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं है। (३) मूल विचार पूरी तरह शब्दों

में व्यक्त नहीं हो सकता। (४) देश, काल, पात्र के अनुसार शब्द, भाषा का रूप बदलता रहता है। (५) वक्ता का जो अभिप्राय है, श्रोता उससे कुछ अलग ही अर्थ लगाता है। (६) एक ही बात को कई प्रकार से कहा जा सकता है। क्षेत्र, समय, विषय या श्रोता के स्तर के अनुसार वर्णन हेता है।

व्यक्तिगत भूल सुधारने के लिये कई विधियां हैं-(१) मन्त्र-द्रष्टा को निष्पक्ष दर्शक होना चाहिये। ऐसा कोई संन्यासी ही हो सकता है। (२) संन्यासी या ऋषि होने के लिये उसे पक्षपात, क्रोध, या आसक्ति से दूर रहना होगा तभी उसकी बुद्धि स्थिर हो सकती है-समाधि या स्थितप्रज्ञ अवस्था। (३) श्रोता को भी उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् श्रद्धा होनी चाहिये। (४) शब्दों के अर्थ के लिये उनकी परिभाषा (निरुक्त), व्याख्या (ब्राह्मण) माप (ज्योतिष, छन्द), क्रिया या नमूना द्वारा प्रदर्शन (कल्प) तथा ब्रह्म के लिये प्रयुक्त शब्दों का एकत्व (ब्रह्म सूत्र) जरूरी है। (५) विभिन्न काल तथा स्थान के विचारकों के विचारों के सङ्कलन तथा समन्वय से व्यक्तिगत दोष दूर हो जाता है, तथा वह वाणी अपौरुषेय हो जाती है। यही मनुष्य-कृत वेदों का अपौरुषेयत्व है। इस प्रकार का अन्तिम प्रयत्न गुरु अर्जुन देव जी ने किया था। अपने युग तथा कुछ पूर्व के सन्तों की वाणी का सङ्कलन तथा समन्वय द्वारा ग्रन्थ-साहब बनाया जो गुरु रूप में है। वेद की तरह इसे भी शब्द कहा जाता है।

विश्व रूप में चेतन तत्त्व को पुरुष कहते हैं, जो चिति कर सके। पुरुष विन्दु मात्र चेतना है, उसका कर्म क्षेत्र श्री या स्त्री है। चिति करने वाला पुरुष, किन्तु चिति का विस्तार श्री है-

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै (७८) नमस्तस्यै (७९) नमस्तस्यै नमो नमः (८०)-(दुर्गा सप्तशती, अध्याय ५)

पुरुष रूप में विश्व का वर्णन पूर्ण नहीं है, अतः यह अपौरुषेय (पुरुष से परे है)

(१३) **समन्वय**-पुरुष या ब्रह्म का ज्ञान उसे जानने की इच्छा से होता है। यह ब्रह्म सूत्र का प्रथम सूत्र है-अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।(१/१/१)। ब्रह्म उसे कहते हैं जिससे इस (विश्व) का जन्म आदि (विकास, वृद्धि, क्षय, मरण) होता है-जन्माद्यस्य यतः।(२) ब्रह्म का ज्ञान केवल उसे देखने से नहीं होता, सभी काल तथा स्थान का दर्शन या अनुभव नहीं हो सकता। देखने से भी वह समझ नहीं आयेगा। उसके लिये शास्त्र चाहिये- जो विद्वानों के अनुभव का समन्वय है-शास्त्रयोनित्वात्।(३)

शास्त्रों में एक कठिनाई है कि उसमें कई बातें परस्पर विरोधी लगती हैं-उनमें किसे



मानें या किसे छोड़ें। इसका समाधान है कि समन्वय से ही ज्ञान होता है। जो बातें एक दूसरे का समर्थन करती हैं, उन्हें मानना चाहिये-तत्तु समन्वयात्(४)

इतिहास पुराण के उदाहरणों से यह समन्वय स्पष्ट होता है-

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

(महाभारत आदिपर्व, १/२६७)

## (८) सूक्त ८-

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।

**अर्थ**-उससे (पुरुष से, या उसके बाद) अश्व (घोड़े, चलाने वाली शक्ति) तथा अन्य हुये जिनके दोनों तरफ (ऊपर-नीचे) दांत हैं। उसके बाद गौ (गाय, निर्माण + स्थान + ऊर्जा), अज (अव्यय पुरुष), अवि (भेड़, प्रकाश किरण) उत्पन्न हुये।

**शब्दार्थ**-(१) पशु-इनकी व्याख्या सूक्त ६ में छन्द पशु के रूप में है।

(२) उभयादतः-जिनके ऊपर तथा नीचे दोनों जबड़ों में दांत हैं।

(३) जज्ञिरे-उत्पन्न हुये (यज्ञ का क्रिया रूप)

(४) जातः= उत्पन्न, जन्म हुआ।

**व्याख्या**-(१) **ग्रह तथा पशु**-शतपथ ब्राह्मण (४/४/५) के ग्रह-विज्ञान-ब्राह्मण में नीचे दांत के या दोनों तरफ दांत वाले पशुओं का अर्थ समझाया है। कुल ४० प्रकार के ग्रह हैं-

षट् त्रिंशाश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम्।

यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक् सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति। (ऋक् १०/११४/६)

= ३६ तथा ४ ग्रह (सोम के पात्र) बने (या रखे गये)। ग्रहों के १२ छन्द (माप) भी रखे गये। विद्वान् स्रष्टा इनसे यज्ञ में माप कर रथ को ऋक् (रूप) तथा साम (क्षेत्र, महिमा) से चलाता है। -इस सूक्त से स्पष्ट है कि ऋक् तथा सामवेद एक साथ थे, अलग अलग युगों में नहीं लिखे गये।

४० ग्रह ६ प्रकार के हैं-उपांशु, अन्तर्याम, शुक्रपात्र, ऋतुपात्र, आग्रयण-पात्र, उक्थ्य पात्र। यहां ग्रह का अर्थ बर्तन है, जो सोम (बिखरा पदार्थ) को धारण (ग्रह = ग्रहण = पकड़ना)। पृथवी आदि ग्रह भी आकाश में पदार्थों का धारण करते हैं, अतः ये ग्रह कहे जाते हैं। उपांशुग्रह बाहर से आनेवाले प्राण ग्रहण करता है-उससे अज पैदा होते

हैं जो सिर उठा कर आगे चलते हैं। अन्तर्याम ग्रह से प्राण बाहर निकलते हैं, उससे अवि (भेड़) पैदा होते हैं, जो सिर नीचा रखकर दूसरों का अनुसरण करते हैं। सूर्य से ऊर्जा का प्रवाह शुक्र ग्रह है, सबसे चमकदार ग्रह को भी शुक्र (तेजस्वी) कहते हैं। यह इन्द्र (विकिरण) का भण्डार है जिससे मनुष्य पैदा होता है। अतः मनुष्य अन्य ४ पशुओं का नियन्त्रण करता है। गौ का निर्माण ३ ग्रहों से हुआ-आग्रयण, आदित्य, उक्थ्य। आदित्य सूर्य तेज का क्षेत्र है, उसके भण्डार का स्थान आदित्य ग्रह है। (शतपथ ब्राह्मण ४/३/५) आग्रयण ग्रह (शतपथ ४/२/२) सभी अंगों का नियन्त्रण करता है। उक्थ्य ग्रह (शतपथ ४/२/३) सौर मण्डल का स्रोत पदार्थ है, जो संवत्सर (सौर क्षेत्र) के ६ भागों (वषट्कार) में फैला हुआ है । इसी प्रकार वर्ष रूपी संवत्सर में भी ६ ऋतुयें हैं। शतपथ ब्राह्मण का चतुर्थ काण्ड सभी ४० ग्रहों की व्याख्या करता है। १२ प्रकार के ऋतु ग्रहों से अश्व हुये जिनके दोनों जबड़ों में दांत हैं, पर खुर एक ही है। गौ के केवल नीचे जबड़े में दांत है, पर २ खुर हैं। मनुष्य, गौ, तथा अश्व-ये सभी वर्ष में एक ही बार सन्तान पैदा करते हैं। पर अज तथा अवि वर्ष में ३ बार सन्तान पैदा करते हैं जैसे ३ फसल एक वर्ष में होती है।

(२) **यज्ञ के बाद का क्रम**-यहां पशुओं के उदाहरण से व्यापक प्रक्रिया समझायी गयी है। इसके पहले के सूक्त में विराट् पुरुष के निर्माण का क्रम समझाया गया है। पहले ऋच (मूर्त्ति, पिण्ड) बने, फिर उनका साम या महिमा हुयी-जैसे ताप, प्रकाश, गुरुत्वाकर्षण आदि। उसके बाद इनका समन्वय (छन्दांसि) हुआ जिनसे यजु (यज्ञ या उत्पादन क्रिया) हुयी। यहां यज्ञ के बाद का क्रम है। जो चलाने वाली मूल शक्ति है, उसमें विवेक नहीं होता, वह सिर्फ चलाने की ऊर्जा है, जिसका नियन्त्रण करना पड़ता है। वह सभी तरफ से एक ही बार में खा जायेगा-इञ्जन में कहीं से भी पेट्रोल डालें, वह तुरत एक बार में ही उसे जलाकर उपभोग करेगा-यह उभयादत है, सब तरफ से जलायेगा। उससे कार्य करने के लिये उसे दिशा देनी पड़ती है। उसके बाद गायें हुयीं-जो एक तरफ से खाती हैं, तथा २ बार धीरे धीरे खाती हैं। इनमें कुछ विवेक है। चलने में भी २ खुरों से स्थायित्व है, गति कुछ कम है। उर्जा द्वारा निर्माण प्रक्रिया में कई स्तरों में धीरे धीरे उपभोग होता है, तथा समय से काम होते हैं। मनुष्य, अश्व, गौ-सभी सम्वत्सर क्रम में ही प्रजनन करते हैं। इच्छानुसार उपलब्ध चीजें अवि तथा अज हैं। अवि का अर्थ रक्षा है। जब जरूरत हो एक साथ आगे बढ़कर रक्षा करनी पड़ती है। इसमें सीधा जाना है, अधिक सोचना नहीं है। नेता के पीछे चलना है।



समाज इसी प्रकार चलता है। ईसा के अनुयायियों को भी भेड़ कहा गया है। जरूरत के अनुसार कभी भी उपभोग की वस्तु अज है। इससे दैनिक क्रियायें होती हैं।

## (९) सूक्त ९-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

अथर्व (१९/६/११)-तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये।।

**अर्थ**-पहले उत्पन्न हुये पुरुष को यज्ञ के लिये बर्हिष (अग्नि या कुश-झाड़ू) द्वारा शुद्ध किया गया। तब उससे देव, साध्य तथा ऋषि हुये जिन्होंने निर्माण (यज्ञ) किया।

**शब्दार्थ**-(१) **बर्हिषि**-बर्हिष में। बर्ह प्राधान्ये (१/४२५)= प्रधान होना, चमकना। बृह वृद्धौ (१/४८८) बृहि या बृंह् वृद्धौ शब्दे च (१/४८८, ४८९)। बर्हिष = कुश, यज्ञ, चमक, झाड़ू। धनु राशि का मूल-बर्हणि (बढ़नी =झाड़ू) नक्षत्र आकाश-गंगा के केन्द्र में है-उसी मूल से विश्व का विकास हुआ।

(२) **प्रौक्षन्**-पानी छिड़का, साफ किया, या जल से भर दिया।

(३) जातम्-पैदा हुआ। तेन = उससे।

(४) **साध्य**-१२ देवों का एक वर्ग-

मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान्। चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा। प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे। (वायु पुराण ६६/१५-१६)

१२ साध्य हैं-१. मन, २. अनुमन्ता, ३. प्राण, ४. नर, ५. यान, ६. चित्ति, ७. हय, ९. नय, १०. नारायण, ११. प्रभु, १२. विभु।

प्राण या छन्द को भी साध्य देव कहा गया है-

प्राणा वै साध्या देवास्तऽएतं (प्रजापतिं) अग्रऽएवमसाधयन् (शतपथ ब्राह्मण १०/२/२/३) छन्दांसि वै साध्या देवास्तेऽग्रे ऽग्निमयजन्त ते स्वर्ग लोकमायन्। (ऐतरेय ब्राह्मण १/१६)

साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्व आसंस्त एतत् (शत सम्वत्सरं) सत्रायणमुपायं स्तेनार्ध्नवं स्ते सगवः सपुरुषाः सर्व्व एव सह स्वर्गं लोकमायन्।(ताण्ड्यमहा ब्रा. २५/८/२)

५ ज्ञानेन्द्रियों को भी साध्य कहते हैं क्योंकि इनसे कोई काम साधा जा सकता है-

तमग्रतो जातं यज्ञं यष्टव्यं बर्हिषि प्रकृतौ निधाय साध्याः देवाः प्रौक्षन्। (योग रत्नावली)

(५) **ऋषि**-वायु पुराण ने इसके ४ अर्थो का निर्देश किया है-

ऋषीत्येष गतौ धातुः, श्रुतौ सत्ये तपस्यथ।

एतत्सन्नियतं यस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः। (वायु पुराण ५९/७९)

इसी के अनुसार पं. मधुसूदन ओझा ने ब्रह्म सिद्धान्त में इसके ४ अर्थ बताये हैं। किन्तु ऋषि का प्रयोग ७ अर्थ में होता है, वे ७ मनुष्य रूप भी हैं, तथा ७ प्रकार के हैं-

(१) तारा या नक्षत्र-अमी ह्युत्तरा हि सप्तर्षय उद्यन्ति, पर एताः (शतपथ ब्राह्मण २/२/१/३) जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिय। अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा। (सामवेद १०१)

(२) असत् प्राण-यह सृष्टि का मूल है, तथा सूक्ष्मतम होने के कारण अनुभव नहीं किया जा सकता, अतः असत् है-

असद्वाऽइदमग्रऽआसीत् ।तदाहुः किं तदसदासीदिति। ऋषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्। तदाहुः-के तेऽऋषय इति। प्राणा वाऽऋषयः। ते यत्पुराऽऽस्मात् सर्वस्मात् इदमिच्छन्तः श्रमेण तपसा अरिषन् -तस्मादृषयः।(शतपथ.६/१/१/१)

इनका आकार $१०^{-३५}$ मीटर है। इनसे पितर, देव-दानव, जगत्-कण हुये। मनुष्य से आरम्भ कर छोटे विश्व कोष, परमाणु, नाभि आदि क्रमशः १ लाख भाग छोटे हैं-

वालाग्र शतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः। तस्य भागस्य भागार्द्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्। (ध्यान विन्दु उपनिषद् ५)

मनुष्यसे ७वां छोटा स्तर ऋषि उसका $१०^{-३५}$ भाग होगा।

(३) पिण्डों का सम्बन्ध-बाहर से भीतर आने की क्रिया भृगु तथा बाहर निकलता हुआ विकिरण अंगिरा है-

अर्चिषि भृगुः सम्बभूव, अङ्गारेष्वङ्गिराः सम्बभूव। अथ यदङ्गारा अवशान्ताः पुनरुद्दीप्यन्त, तद् बृहस्पतिरभवत् ।(ऐतरेय ब्रा.३/३४)

(४) बल-युग्म-तीन प्रकार के युग्म बलों को ऋषि नाम दिया गया है। एक मूल ऋषि (अत्रि या पूषा) से ये उत्पन्न हुये है। इसी प्रकार एक मूल ब्रह्म (स्वयम्भू) से ६ अन्य लोक हुये हैं।

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति।

तेषामिष्टानिविहितानिधामशःस्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः(ऋक्१/१६४/१५)

इमामेव गोतम-भरद्वाजौ। अयमेव गोतमः, अयं भरद्वाजः। इमामेव-विश्वामित्र जमदग्नी। अयमेव विश्वामित्रः, अयं जमदग्निः। इमामेव वसिष्ठ कश्यपौ। अयमेव वसिष्ठः, अयं कश्यपः। वागेवात्रिः। वाचा ह्यन्नमद्यते। अत्ति र्ह वै नामैतद्यत्रिरिति। सर्वस्यात्ता भवति, सर्वमस्यान्नं भवति, य एवं वेद।(शतपथ १४/५/२/६, बृहदारण्यक उप.२/२/४)



(५) ७ वां आयाम-१० आयाम के विश्व में यह ७वां आयाम है, जो मूल कणों या पिण्डों के बीच ४ प्रकार के मूलबल हैं, २ समरूपता तथा एक विषमता है।

(६) ब्रह्म तथा विश्व का सम्बन्ध-अधिकांश व्यक्ति ब्रह्म को नहीं समझ पाते। जो लोग समझते हैं, वे अन्य को समझाते हैं। ये ब्रह्म तथा अन्य के बीच रस्सी होने के कारण ऋषि (रस्सी) हैं-

यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः। (शतपथ.४/३/४/१९)

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुः। (यास्क निरुक्त १/२०)

(७) ब्रह्मा के ७ मानस पुत्र जिनसे सृष्टि आरम्भ हुयी।

ये वै तेन ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते कवयः तानेव तदभ्यतिवदति (तैत्तिरीय आर.६/४)

अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।

प्रजावतां च पञ्चाशद् ऋषीणामपि पाण्डव। (महाभारत सभा पर्व ११/५४)

मनुष्य रूपी ऋषि ३ प्रकार के हैं-

गोत्र प्रवर्तक ऋषि-१. भरद्वाज, २. कश्यप, ३. गोतम, ४. अत्रि, ५. विश्वामित्र, ६. जमदग्नि, ७. वसिष्ठ।

ज्ञान या वेद प्रवर्तक-१. वसिष्ठ, २. अगस्त्य, ३. भृगु, ४. अङ्गिरा, ५. अत्रि, ६. पुलह, ७. भरद्वाज।

स्रष्टा ऋषि-१. मरीचि, २. अङ्गिरा, ३. अत्रि, ४. वसिष्ठ, ५. पुलस्त्य, ६ पुलह, ७. क्रतु।

**व्याख्या**-विराट् पुरुष के भौतिक पिण्ड बनने के बाद उनकी क्रिया तथा सृष्टि प्रक्रिया जारी रखने के लिये ३ सृष्टि हुयी-देवता द्वारा ही सृष्टि होती है, असुर प्राण द्वारा नहीं। कुल प्राण में केवल १/४ भाग देव प्राण द्वारा ही कार्य होता है, बाकी प्राण ३ प्रकार के बलों-नमुचि, वृत्र तथा बल द्वारा अवरुद्ध हो जाते हैं। पृथ्वी पर भी जो अपने उपयोग के लिये यज्ञ द्वारा उत्पादन करते हैं, वे देव कहे जाते हैं। असुर स्वयं परिश्रम नहीं कर दूसरों के उत्पादन पर कब्जा करते है। वह कई प्रकार की सीमाओं द्वारा

मनुष्यों को विभाजित करते हैं, ईश्वर को अलग अलग मानकर अपने मत में शामिल करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त साध्य देव हैं। हर कार्य के लिये कुछ विधि होती है तथा कुछ आवश्यक सामग्री यन्त्र आदि होते हैं। इनकी व्यवस्था करने वाले तत्त्व साध्य देव हैं। मनुष्यों में भी साध्य जाति ने वैज्ञानिक उत्पादन विधियों का पूर्वकाल में विकास किया था। अन्त में ऋषि आते हैं। सिद्धान्त तथा व्यावहारिक ज्ञान की परम्परा चलाये रखना, लोगों को शिक्षा तथा प्रेरणा देना, तथा समाज में शान्ति व्यवस्था के लिये परिवेश तैयार करना इनका कार्य है। बाहरी परिवर्तन तथा चेष्टा मनुष्य द्वारा होती है, पर पदार्थों या मनुष्यों में भीतरी परिवर्तन मन या पदार्थ के कणों के परमस्पर सम्बन्ध के कारण है, जो ऋषि तत्त्व है।

## (१०) सूक्त १०-

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते।।

ऋग्वेद (१०/९०/११) मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते।

**अर्थ**-जब पुरुष ने सृष्टि आरम्भ की तो कितने प्रकार के पदार्थों की कल्पना की? उसके मुख, बाहु, जंघा तथा पैर क्या थे?

**शब्दार्थ**-(१) **व्यदधुः**-डुधाञ् धारण पोषणयोः (३/१०) का भूतकाल रूप, वि उपसर्ग के साथ। विशेष रूप से धारण या पोषण किया। या कई विकल्पों का द्योतक।

(२) **व्यकल्पयन्**-कृप अवकल्कने (१०/२१८)-कल्पना करना, विचार करना, मिश्रित करना, चित्रित करना, रंगना। कल्प-सृष्टि तथा नाश का क्रम, ब्रह्मा का दिन १००० युगों का समय। विकल्प = विरुद्धं कल्पनमिति। वि+ कृप् + घञ्= विकल्प। भ्रान्ति- विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः। न मे विकल्पसन्देही निर्विकल्पोऽस्मि सर्वथा-देवी भागवत पुराण (१/१९/३२) कल्पना, संशय, विविध कल्प या विविध रचना, अनेक प्रकार, देवता-

तत्सिषेवे नियोगेन सविकल्पपराङ्मुखः(रघुवंश १७/४९)
तस्य दण्डविकल्पः स्यात्तथेष्टं नृपतेस्तथा (मनुस्मृति ९/२२९)
स्मृतिशास्त्रे विकल्पस्तु आकांक्षापूरणे सति-(भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व १८१/१९)
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनम-(भागवत पुराण १०/८५/११)

व्यकल्पयन् भूतकाल की क्रिया है। इसके अर्थ हैं विकल्प या नाना प्रकार के रूप



बनाये या उनकी कल्पना की। सृष्टि ब्रह्म के सङ्कल्प या विचार मात्र से हुयी-अतः विचार तथा क्रिया दोनों अर्थ संज्ञा था क्रिया रूपों में हैं।

(३) **मुख**-अमरकोष (२/६/८९) के अनुसार इसके अर्थ हैं-मुख, स्रोत, शरीर, बोलने का अंग, चेहरा, खाने का अंग, निगलना। इस प्रसंग में मुख का अर्थ हुआ किसी काम या नाटक का आरम्भ, विधि, प्रधान अंश, स्रोत-

मुखं निस्सरणे वक्त्रं प्रारम्भोपाययोरपि।
सन्ध्यन्तरे नाटकादेः शब्देऽपि च नपुंसकम्। (मेदिनी कोष)

(४) कौ -कौन, किम्= क्या। बाहू- २ भुजा (द्विवचन रूप)।
उरू -२ जंघा , पादौ (पादा)= २ पैर। १/४ भाग, गति। उच्येते- कहे जाते हैं।

**व्याख्या**-यहां विविध प्रकार की सृष्टि का वर्णन है। उनके कितने प्रकार तथा वर्गीकरण हैं इसके बारे में प्रश्न है। विशेष रूप से पुरुष रूप विश्व के ४ भागों के बारे में है-कि उसका मुख (स्रोत), कार्य के साधन (बाहु), भोग (जंघा) पाद (गति या परिणाम)। इसका उत्तर अगले सूक्त में है। धारण का स्थान, निर्माण-दोनों के कई विकल्प हैं, अतः दोनों में वि उपसर्ग लगा है।

## (११) सूक्त ११-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

अथर्व (१९/६/६)-ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

**अर्थ**-इसका (पुरुष का) मुख ब्राह्मण था, क्षत्रिय (राजन्य) बाहु से उत्पन्न हुये। उसकी जंघा वैश्य थे, तथा पादों से शूद्र हुये।

**व्याख्या**-(१) **४ वर्णों के गुण कर्म**-गुण तथा कर्मों के अनुसार भगवान् ने ४ वर्ण बनाये थे-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः (गीता ४/१३)

ब्राह्मण उस व्यक्ति को कहा गया है जिसमें पूर्ण सदाचार, निःस्वार्थ भाव, ज्ञान के प्रति श्रद्धा, लोभ, शत्रुता से मुक्ति आदि हो। सभी गुण एक ही व्यक्ति में नहीं मिलते-
यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जाति-गुण-क्रिया-हीनं षडूर्मि षड्भावेत्यादि सर्व दोष रहितं सत्यज्ञानानन्दानन्त स्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पधारमशेष भूतान्तर्यामित्वेन वर्तमान-

मन्तर्बहिश्चाकाश-वदनुस्यूत-मखण्डानन्द स्वभाव-मप्रमेय-मनुभवैकवेद्यम् अपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया काम-रागादि दोष रहित: शम-दमादि सम्पन्नो भाव मात्सर्य-तृष्णा-आशा-मोहादि रहितो दम्भा-हङ्कारादिभि-रसंस्पृष्ट चेता वर्तत एवमुक्त लक्षणो य: स एव ब्राह्मण इति श्रुति-स्मृति-पुराणे-तिहासाना-मभिप्राय:। अन्यथा हि ब्राह्मणत्व सिद्धिर्नास्त्येव। (वज्रसूचिकोपनिषत् )

शान्त: सन्त: सुशीलाश्च सर्वभूत हिते रता:।
क्रोध कर्तुं न जानन्ति एतद् ब्राह्मण-लक्षणम्।
सन्ध्योपासन-शीलश्च सौम्यचित्तो दृढव्रत:। सम: परेषु च स्वेषु एतद् ब्राह्मण लक्षणम्।
एकाहारश्च सन्तुष्ट: स्वल्पाशी स्वल्पमैथुन:।
ऋतुकालाभिगामी च एतद् ब्राह्मण-लक्षणम्।।
परान्नं परवित्तञ्च पथि वा यदि वा गृहे। अदत्तं नैव गृह्णाति एतद् ब्राह्मण-लक्षणम्।।
योगस्तपो क्षमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम्।
विद्या विज्ञान-मास्तिक्य-मेतद् ब्राह्मण-लक्षणम्।।(आह्निक सूत्र)

जाति रूप में ब्राह्मणों के ६ कर्म कहे गये हैं-अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना तथा देना-

अध्यापन-मध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणाना-मकल्पयत्। (मनुस्मृति १/८८)

क्षत्रिय को राजन्य भी कहा गया है (जैसे इस सूक्त में)। उसके अन्य नाम हैं-मूर्धाभिषिक्त (जिसका राज्याभिषेक हो), बाहुज (बाहु से उत्पन्न), विराट् (विशिष्ट राजा, बड़ा)-मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुज: क्षत्रियो विराट्। (अमरकोष २/८/१)

क्षत्रिय के गुण हैं-वीरता, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध में स्थिरता (पलायन नहीं), दान, ईश्वर भाव (बड़प्पन)। गीता तथा मनुस्मृति में कुछ अन्य गुण भी हैं-लोगों की रक्षा, यज्ञ, अध्ययन, विषयों से दूर रहना।

शौर्यं तेजो धृति-र्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर-भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। (गीता १८/४३)
प्रजानां रक्षणं दानमिज्या-ध्ययनमेव च।
विषयेष्व-प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासत:।(मनुस्मृति १/८९)

वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं-कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य। मनुस्मृति ने दान करना, यज्ञ तथ अध्ययन भी माना है-



कृषि-गौरक्ष्य-वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। (गीता १८/४४)
पशूनां रक्षणं दानमिज्या-ध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। (मनुस्मृति १/९०)

शूद्र आज्ञा के अनुसार काम करता है-

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्। (गीता १८/४४)

(२) **वर्ण का महत्त्व**-लोगों के स्वाभाविक गुण अलग अलग होते हैं। कई व्यक्ति अध्ययन करना पसन्द करते हैं, कई युद्धप्रिय हैं, कई लोगों में प्रबन्ध या व्यवसाय की बुद्धि है। अधिकांश व्यक्ति नौकरी करना चाहते हैं जिसके लिये आरक्षण का झगड़ा चल रहा है। किन्तु निहित स्वार्थों के कारण व्यवसाय वंश परम्परा की चीज हो गया है। पारिवारिक व्यवसाय में स्वाभाकि प्रेरणा, उत्साह तथा गर्व होता है, जिसके द्वारा भारत के अधिकांश शिल्प तथा ज्ञान १००० वर्षों की दासता में भी बचे रहे। किसी परिवार या जाति में जन्म होने से कई गुण जन्म से ही आते हैं तथा उनके विकास का वातावरण भी मिलता है। अत: जन्म अनुसार जाति का कई स्मृतियों में समर्थन है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई जाति अच्छी या बुरी है। सबका अपना अपना दायित्व है तथा सभी समाज के लिये उतने ही जरूरी हैं। हर जाति का नाम उसके गुणों का निर्देश करता है तथा प्रशंसात्मक है-

ब्राह्मण-जो ब्रह्म को जानता है।
क्षत्रिय- जो क्षत (आघात) से त्राण (रक्षा) कर सके।
वैश्य-जो विश सा समाज का पालन करे।
शूद्र-आशु द्रवति =शूद्र-जो दक्षता तथा शीघ्रता से कार्य कर सके।

आज सबसे योग्य छात्र इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा क्षेत्र में जा रहे हैं-ये सभी दक्षता के कार्य शूद्रों के हैं। पर ये कार्य तभी चल सकते हैं जब समाज में व्यवसाय तथा उद्योग वैश्यों द्वारा सुचारु रूप से चलें। इसके लिये क्षत्रिय द्वारा उनकी सुरक्षा जरूरी है। सभी कामों के लिये उचित शिक्षा जरूरी है जो ब्राह्मण का दायित्व है। जब शिक्षक के प्रति श्रद्धा हो तभी ज्ञान का ठीक प्रकार ग्रहण हो सकता है।

ब्राह्मण के मुख कहने का एक और अभिप्राय है। शास्त्रों में जो प्रतिपादित होता है वैसा ही समाज बन जाता है। इसी उद्देश्य से औक्सफोर्ड ने मेकाले नीति के अनुसार वैदिक साहित्य को विकृत करना शुरु किया जिससे भारतीय लोग सिर्फ नाम के भारतीय रह जायें, मन से वे अपने को अलग अलग क्षेत्रों का समझें तथा वेद के प्रति

उनमें घृणा हो जाय। इसके द्वारा वैदिक मार्ग को छोड़ कर इसाई मार्ग को ग्रहण कर इंगलैण्ड के मानसिक दास बने रहेंगें। अधिकांश व्यक्तियों की धारणा बदलने में वे सक्षम हुये हैं, तथा कितनी भी डिग्री वाले लोग भारत के बारे में बच्चों जैसी बातें भी नहीं समझ पाते। अतः ब्राह्मण का काम मूलभूत है जो समाज को दिशा देता है। इस अर्थ में उसे मुख कहा गया है। अंग्रेजों ने इसे समझ कर सबसे अधिक ब्राह्मणों का ही विरोध किया तथा उनसे प्रेरित भारत के कुछ राजनैतिक दलों का एकमात्र आदर्श ब्राह्मण विरोध है, कोई रचनात्मक कार्य नहीं।

(३) **व्यापक विभाजन**-विश्व की हर वस्तु में ४ वर्णों के विभाजन की वेदों में कल्पना की गयी है। यह केवल मनुष्यों के लिये नहीं है। पं. मोतीलाल शर्मा नें गीता विज्ञान भाष्य, भाग २ (ग) ब्रह्म-कर्म-परीक्षा में कई प्रकार के विभागों का सङ्कलन किया है। उनकी सारणी नीचे दी जा रही है-

| **क्रम तत्त्व** | **ब्राह्मण** | **क्षत्रिय** | **वैश्य** | **शूद्र** |
|---|---|---|---|---|
| १. देवता | अग्नि | इन्द्र | विश्वेदेव | पूषा |
| २. पितर | सोमपा | हविर्भुक् | आज्यपा | सुकाली |
| ३. वेद | सामवेद | यजुर् | ऋक् | अथर्व |
| ४. छन्द | गायत्री | त्रिष्टुप् | जगती | अनुष्टुप् |
| ५. सवन | प्रातः | माध्यन्दिन | सायं (तेज) | सायं (तम) |
| ६. दिशा | उत्तर | दक्षिण | पूर्व | पश्चिम |
| ७. काल | वर्तमान | भूत | भविष्य | सभी |
| ८. वर्ण (रंग) | श्वेत | रक्त | पीत | कृष्ण |
| ९. यज्ञ | सोम | पशुबन्ध | इष्टि | दर्वीहोम |
| १०. प्रकृति | सत्त्व | सत्त्व-रज | रज-तम | तम |
| ११. बल | विद्या | ऐश्वर्य | वित्त | शरीर |
| १२. शक्ति | ज्ञान | क्रिया | अर्थ | पशु |
| १३. स्वर | उदात्त | अनुदात्त | स्वरित | विकस्वर |
| १४. शब्द | स्फोट | स्वर | वर्ण | दुष्ट वर्ण |
| १५. ब्रह्म | अव्यय | अक्षर | आत्मक्षर | विकारक्षर |
| १६. अध्यात्म | प्राज्ञ | तैजस | वैश्वानर | भौतिक |
| १७. आधिदैवत | सर्वज्ञ | हिरण्यगर्भ | विराट् | भौतिक |



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १८. प्रकृतात्मा | शान्तात्मा | महानात्मा | विज्ञानात्मा | प्रज्ञानात्मा |
| १९. भूत | आकाश+वायु | अग्नि | जल | पृथ्वी |
| २०. ज्ञान | आत्मा | सदृश | विरुद्ध | अभाव |
| २१. कर्म | आत्मा | सत् | विरुद्ध | अकर्म |
| २२. दृष्टि | परमार्थ | व्यवहार | प्रातिभासिक | अदृष्टि |
| २३. गति | मुक्ति | देवस्वर्ग | पितृस्वर्ग | दुर्गति |
| २४. उपवेद | गान्धर्व | धनु | आयु | स्थापत्य |
| २५. आनन्द | शान्त | प्रमोद | मोद | हर्ष |
| २६. प्रपञ्च | आध्यात्मिक | आधिदैविक | आधिभौतिक | प्रवर्ग्य |
| २७. शरीर | कारण | सूक्ष्म | स्थूल | किट्ट |
| २८. विद्या | ज्ञान | ऐश्वर्य | वैराग्य | धर्म |
| २९. अविद्या | अविद्या | अस्मिता | (आ) सक्ति | अभिनिवेश |
| ३०. प्रमाण | आप्त | अनुमान | प्रत्यक्ष | युक्ति |
| ३१. विवाह | ब्राह्म | स्वयम्वर | गान्धर्व | पैशाचिक |
| ३२. अधिकारी | ज्ञानी | जिज्ञासु | अर्थार्थी | आर्त्त |
| ३३. वृत्ति | मैत्री | करुणा | मुदिता | उपेक्षा |
| ३४. युग | सत्य | त्रेता | द्वापर | कलि |
| ३५. रात्रि | काल | महा | मोह | दारुण |
| ३६. रिपु | काम | क्रोध | लोभ | मोह |
| ३७. अवस्था | कृतकृत्य | कर्म | जाग्रत | सुषुप्ति |
| ३८. वाक् | परा | पश्यन्ती | मध्यमा | वैखरी |
| ३९. शब्द | छन्दांसि | वाक्यानि | पदानि | वर्णाः |
| ४०. हास | कल | मन्द | अति | अत्तात्त |
| ४१. पुरुष-लक्षण | शश | हय | कुरङ्ग | वृषभ |
| ४२. अपरा मुक्ति | सायुज्य | सारूप्य | सामीप्य | सालोक्य |
| ४३. देव | ब्रह्मा | रुद्र | विष्णु | गणपति |
| ४४. सृष्टि | मानसी | गुण | विकार | मैथुनी |
| ४५. प्राणी | जरायुज | अण्डज | स्वेदज | उद्भिज्ज |
| ४६. नीति | धर्म | राज-नीति | समाज | व्यक्ति |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ४७. | अर्थ | परमार्थ | परार्थ | स्वार्थ | परम-स्वार्थ |
| ४८. | पशु | अज | अश्व | गौ | अवि |
| ४९. | सर्प | हिरण्य-पन्नग | भृष्कोपन | पारावत | रूक्षत्वच |
| ५०. | वनस्पति | अश्वत्थ | देवदारु | सभी फल-वृक्ष | बांस |
| | वट | पलाश | बिल्व | श्रीपर्णी-काश्मर्य | तूलिका |
| ५१. | कीट | फूल के कीड़े | सप्तधातु के | सूत्र-निर्माता | भूमि के |
| ५२. | पक्षी | चक्रवाक् | शरभ | हंस | काक |
| | | कपोत | बक | मयूर | गृद्ध |
| ५३. | अङ्ग | सिर | हाथ | पेट | पैर |

(४) **कुछ उदाहरण**-बिना अनुवाद के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत। (यजु ३१/११)

प्रजापतिरकामयत-प्रजायेय इति। स मुखत-स्त्रिवृतं निरमिमीत, तमन्वग्निर्देवता अन्वसृज्यत, गायत्री छन्दः, रथन्तरं साम, ब्राह्मणो मनुष्याणां, अजः पशूनाम्। तस्मात्ते मुख्याः, मुखतो ह्यसृज्यन्त।१।

उरसो, बाहुभ्यां पञ्चदशं निरमिमीत, तमिन्द्रो देवता अन्वसृज्यत, त्रिष्टुप् छन्दः, बृहत्साम, राजन्यो मनुष्याणां, अविः पशूनाम्। तस्मात्ते वीर्य्यवन्तः, वीर्य्याद्ध्यसृज्यन्त।२।

मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत, तं विश्वेदेवा देवता अन्वसृज्यन्त, जगती छन्दः, वैरूपं साम, वैश्यो मनुष्याणां, गावः पशूनां, तस्मात्ते आद्या अन्नधानाद्ध्यसृज्यन्त, तस्माद् भूयांसोऽन्येभ्यः। भूयिष्ठा हि देवता अन्वसृज्यन्त।३।

पत्त एकविंशं निरमिमीत, तमनुष्टुप् छन्दोऽन्वसृज्यत, वैराजं साम, शूद्रो मनुष्याणां, अश्वः पशूनाम्। तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः। न हि देवता अन्वसृज्यत। तस्मात् पादावुपजीवतः। पत्तो ह्यसृज्येताम्।४। (शतपथ ब्राह्मण)

सोऽकामयत-यज्ञं सृजेय इति। स मुखत एव त्रिवृतमसृजत। तं गायत्री छन्दोऽन्वसृजत, अग्निर्देवता, ब्राह्मणो मनुष्यः, वसन्त ऋतुः। तस्मात् त्रिवृत् स्तोमानां मुखं, गायत्री च्छन्दसां,अग्निर्देवतानां, ब्राह्मणो मनुष्याणां, वसन्त ऋतूनाम्। तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्य्यमकरोति। मुखतो हि सृष्टः।६।

स उरस्त एव बाहुभ्यां पञ्चदशमसृजत। तं त्रिष्टुछन्दोऽन्वसृजत, इन्द्रो देवता, राजन्यो मनुष्यः, ग्रीष्म ऋतुः। तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदशस्तोमः, त्रिष्टुप् छन्दः इन्द्रो देवता,



ग्रीष्म ऋतुः। तस्मादु बाहु वीर्य्यः। बाहुभ्यां हि सृष्टः।८।

स मध्यत एव प्रजाननात् सप्तदशमसृजत। तज्जगतीछन्दोऽन्वसृज्यत, विश्वेदेवा देवताः, वैश्यो मनुष्यः, वर्षा ऋतुः। तस्माद्वैश्योऽद्यमानो न क्षीयते। प्रजननाद्धि सृष्टः। तस्मादु बहुपशुः। वैश्यदेवो हि। जागतः, वर्षाह्यस्यर्त्तुः। तस्माद् ब्राह्मणस्य च राजन्यस्य चाद्योऽधरो हि सृष्टः।१०।

स पत्त एव प्रतिष्ठाया एकविंशमसृजत। तमनुष्टुप्छन्दोऽन्वसृज्यत, न काचन देवता, शूद्रो मनुष्यः। तस्माच्छूद्र उत बहु पशुः-अयज्ञियः। विदेवो हि। न हि तं काचन देवताऽन्वसृज्यत। तस्मात् पादावनेज्यन्नाति वर्द्धते। पत्तो हि सृष्टः। तस्मादेकविंशः स्तोमानां प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठाया हि सृष्टः। तस्मादानुष्टुभं छन्दांसि नानु व्यूहन्ति।११। (ताण्ड्य महाब्राह्मण ६/१/६, ८, १०, ११)

अभिषेचनीयानि पात्राणि भवन्ति, यत्रैता आपोऽभिषेचनीयानि भवन्ति। पालाशं भवति, तेन ब्राह्मणोऽभिषिञ्चति। ब्रह्म वै पलाशः। नैय्यग्रोध पादं भवति। तेन मित्र्यो राजन्योऽभिषिञ्चति। पद्भिर्वै न्यग्रोधः प्रतिष्ठितः। मित्रेण वै राजन्यः प्रतिष्ठितः। आश्वत्थं भवति, तेन वैश्योऽभिषिञ्चति। (शतपथ ब्राह्मण ५/३/५/८-१३)

**ब्राह्मण**-(१) ब्रह्म वै ब्राह्मणः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/१४/२)
(२) गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः। (तै.ब्रा.१/१/९/६)
(३) आग्नेयो वै ब्राह्मणः। (तै.ब्रा.६/७/३/१)
(४) दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः। (तै.ब्रा.१/२/६७)
(५) सामो वै ब्राह्मण।ः (ताण्ड्य म.ब्रा.२३/१६/५)
(६) यद् ब्राह्मण एव रोहिणी। (तै.ब्रा.२/७/९/४)
(७) ब्रह्म वा अजः। (शतपथ ब्राह्मण ६/४/४/१५)
(८) ब्रह्मणो वा एतद् रूपं यदहः। (शतपथ ब्राह्मण १३/१/५/४)
(९) गायत्रं वै प्रातःसवनं, ब्रह्म गायत्री, ब्राह्मणेषु ह वै पशवोऽभविष्यन् (शतपथ ब्राह्मण ४/४/१/१८)
(१०) सर्वेषां वा एष वनस्पतीनां योनिर्यत् पलाशः। (ऐतरेय ब्राह्मण २/१)
(११) ब्रह्म हि वसन्तः तस्माद् ब्राह्मणो वसन्ते आदधीत। (शतपथ.२/१/३/५)
(१२) सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः। (तैत्तिरीय ब्रा.३/१२/९/२)

**क्षत्रिय**-(१) क्षत्रस्य वा एतद्रूपं, यद्राजन्यः। (शतपथ.१३/१/५/३)
(२) आदित्यो वै देवं क्षत्रम्। (ऐतरेय ब्रा.७/२०)

(३) क्षत्रं वा इन्द्रः। (कौषीतक ब्राह्मण १२/८)
(४) त्रिष्टुप्छन्दा वै राजन्यः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/९/६)
(५) ऐन्द्रो वै राजन्यः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/२/३/२)
(६) क्षत्रं हि राजन्यः, तस्माद् राजन्यो ग्रीष्मे आदधीत। (शतपथ.२/१/३/५)
(७) ऐन्द्रं माध्यन्दिनं सवनं, क्षत्रमिन्द्रः, क्षत्रियेषु ह वै पशवोऽभविष्यत्। (शतपथ ४/४/१/१८)
(८) क्षत्रं वा अश्वः, विडेतरे पशवः। (तैत्तिरीय ब्रा.३/९/७/१)
(९) क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम्। (शतपथ ब्राह्मण ३/२/२/१७)
(१०) क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां, यद् व्याघ्रः। (ऐतरेय ब्रा. ८/६)
(११) क्षत्रं वै प्रस्तरः, विश इतरं बर्हिः। (शतपथ ब्रा.१/३/४/१०)

**वैश्य**-(१) जगती छन्दा वै वैश्यः। (तैत्तिरीय ब्रा.१/१/९/७)
(२) अन्नं वै विशः। (शतपथ ब्रा.२/१/३/८)
(३) विडेव वर्षाः, तस्माद् वैश्यो वर्षास्वादधीत। (शतपथ ब्रा.२/१/३/५)
(४) वैश्वदेवं वै तृतीय सवनं, सर्वमिदं विश्वेदेवाः, तस्मात् सर्वत्रैव पशवः। (शतपथ. ४/४/१/१८)

**शूद्र**-(१) स शौद्रं वर्णामसृजत पूषणम्। (शतपथ १४/४/२/२५)
(२) असतो वा एषसम्भूतो यच्छूद्रः। (तैत्तिरीय ब्रा.३/२/३/९)
(३) असूर्य्यः शूद्रः। (तैत्तिरीय ब्रा.१/२/६/७)

**चार वर्ण**-
(१) चत्वारो वै वर्णाः-ब्राह्मणः, राजन्यः, वैश्यः,शूद्रः। (शतपथ. ५/५/४/९)
(२) लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुख-बाहू-रु-पादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्। (मनुस्मृति १/३१)
सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूपज्जानां पृथक् कर्म्माण्यमल्पयत्। (मनुस्मृति १/८७)
(३) विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचार लक्षणाः। (भागवत पुराण ११/५७)
(४) वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूतास्तद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागैः।
वैश्यश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः। (वामन पुराण ७९)
(५) ततः कृष्णो महाभाग ! पुनरेव युधिष्ठिर !



ब्राह्मणानां शतं श्रेष्ठं मुखादेवासृजत् प्रभुः।१।
बाहुभ्यां क्षत्रियशतं वैश्यानामूरुतः शतम्।
पद्भ्यां शूद्रशतं चैव केशवो भारतर्षभ।२।
स एवं चतुरो वर्णान् समुत्पाद्य महातपाः।
अध्यक्ष्यं सर्वभूतानां धातारमकरोत् स्वयम्।।३।। (महाभारत, शान्तिपर्व २०७)
(६) मुखतोऽवर्त्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरुद्वह।
यस्तून्मुखत्त्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद् ब्राह्मणो गुरुः।१।
बाहुभ्योऽवर्त्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः।
यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात्।२।
विशोऽवर्त्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः।
वैश्यस्तदुद्भवो वार्त्ता नृणां यः समवर्त्तत।३।
पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्म सिद्धये।
तस्यां जातः पुराः शूद्रो यद् वृत्या तुष्यते हरिः।५। (भागवत पुराण ३/६)
(७) ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै।
प्रजास्ता ध्यायतस्तस्य सत्यभिध्यायिनस्तदा।१।
मिथुनानां सहस्रं तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा।
जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्वोद्रिक्ताः सुचेतसः।२।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानां ससर्ज ह।
ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिणः।३।
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः।४।
पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानां ससर्ज ह।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः।५। (वायु पु.८/३६-४०)
(८) ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः। (गीता १८/४१)

## (१२) सूक्त १२-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।

ऋक्(१०/९०/१३,अथर्व.१९/६/७)-मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।
**अर्थ**-(उस पुरुष के) मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, कान से वायु तथा प्राण, और मुख से अग्नि का जन्म हुआ।
**शब्दार्थ**-(१) मनसो = मन से। जात: = उत्पन्न हुआ।
(२) चक्षो: = चक्षु से । चक्षु =आंख, धुरी।
(३) प्राण-ऊर्जा, जीवन। मुखाद् = मुख से।
(४) अग्नि=आग, सघन पिण्ड या ऊर्जा। अग्नि = अग्रि: = प्रथम उत्पन्न।
**व्याख्या**-(१) **मन से चन्द्र**-मन के तीन रूप हैं-
(क) गणेश रूप-कणों की संहति की गणना की जा सकती है। उनका प्रभाव क्षेत्र गणेश है।
(ख) सरस्वती रूप-कणों का कुल स्थान तथा उनके बीच का भी स्थान मन का प्रभाव क्षेत्र है। यह रस रूप सर्वत्र समान है, अतः इसे रसवती या सरस्वती कहते हैं।
(ग) परमाणु रूप-पदार्थ रूप में परमाणु उनके कण हैं। रस रूप में उनकी लहर या कणों का कम्पन उसकी वृत्ति है। सबसे छोटी वृत्ति ही मन का परमाणु है।

मन का आरम्भ अव्यक्त या शून्य से हुआ था, जिसे श्वोवसीयस (शून्य वासी) मन कहते हैं। इसी मन ने सृष्टि का सङ्कल्प किया था। यह सभी गणेश या सरस्वती रूपों का मूल है। इसे उच्छिष्ट गणपति (सभी रूप बनने के बाद बचा भाग-पुरुष के ३ अमृत पाद) या मूल प्रकृति कह सकते हैं। व्यक्त रूप का आरम्भ स्वायम्भुव मण्डल है जिसके $१०^{११}$ कण आकाशगंगायें है। उसकी प्रतिमा हमारी आकाश-गंगा है जिसमें $१०^{११}$ सूर्य कण रूप में हैं। अन्ततः इनकी प्रतिमा मनुष्य का मस्तिष्क है, जिसमें $१०^{११}$ कण या कोषिका (न्यूरोन) हैं। यह स्थूल रूप हुआ। इनका अव्यक्त या क्षेत्र रूप है, स्वयम्भू का नियति, आकाशगंगा का सरस्वती, सौर मण्डल में गायत्री, तथा मस्तिष्क में कोषिकाओं का क्षेत्र जिसमें द्रव भरा हुआ है-इसे सरस्वती रूप कह सकते हैं। आकाशगंगा के मन का हमारे मन से सम्बन्ध है-यह महानात्मा है। इसमें चन्द्रमा की गति के कारण कम्पन होता है या मस्तिष्क द्रव में तरंगें उठती हैं। अत: चन्द्रमा को विराट् मन से उत्पन्न कहा गया है। रात्रि में जब चन्द्र का प्रकाश मुख्य होता है, तब आकाशगंगा क्षेत्र का अनुमव होता है।

(२) **सूर्य**- सूर्य विश्व के ५ पर्वों के केन्द्र में है-१. स्वायम्भुव (सम्पूर्ण जगत्), २. परमेष्ठी (सबसे बड़ी ईंट) या ब्रह्माण्ड (ब्रह्म का एक अण्ड), ३. सौर मण्डल, ४. चान्द्र मण्डल, तथा ५. भू-मण्डल। आकाशगंगा से सृष्टि आरम्भ हुयी परन्तु उसका केन्द्र कई सूर्य ही हैं जिनके तेज से वह प्रकाशित है। दूसरे छोर पर मनुष्य तथा सभी सूक्ष्म क्रियाओं का भी कारण सूर्य है। अत: यह विराट् तथा सूक्ष्म जीवन की धुरी (अक्ष) है। सभी चीजें इससे दीखने के कारण यह चक्षु है।



(३) **श्रोत्र**-यह सुनने का अंग है। शब्द तरङ्गें वायु के माध्यम से आकर हमारे कान में आती हैं, तथा तरंग ऊर्जा का वहन करती हैं। अत: वायु तथा प्राण (ऊर्जा) दोनों कान से उत्पन्न हुये। वायु का गति रूप मरुत् कहा जाता है। आंखें सिर्फ सामने की तरफ देखती हैं, पर कान में हर दिशा से शब्द आता है। अत: अगले सूक्त में दिशाओं की उत्पत्ति भी श्रोत्र से कही गयी है।

(४) **मुख**- यह शरीर के लिये भोजन ग्रहण का अङ्ग है। बाहरी विश्व के लिये यह शब्द का स्रोत है। अत: मुख सृष्टि का स्रोत कहा गया है।

(५) **इन्द्र**-हर स्थान पर व्याप्त ऊर्जा द्वारा सृष्टि आरम्भ हुयी। विकीर्ण ऊर्जा को इन्द्र कहा जाता है जो शून्य में भी है-
नेन्द्राद् ऋते पवते धाम किञ्चन। (ऋक् ९/९६/६)

यह शून्य में भी है, अत: इसे शुन: कहते है। इस अर्थ का प्रचलित शब्द शुनासीर है। शुन: का अर्थ कुत्ता भी है, क्योंकि यह खाली घर में घुस जाता है। राजा के रूप में इन्द्र शुनासीर है क्योंकि जिस सम्पत्ति का कोई मालिक नहीं होता (शून्य सम्पत्ति) वह राजा की होती है।
शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रम्। (ऋक् ३/३०/२२)
आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार सभी पदार्थ कण भी तरंग रूप हैं जो एक सीमा में बंधे हैं। अर्थात् सभी रूप इन्द्र के ही हैं जो माया (सीमा) में बन्द हैं-
रूपं रूपं मघवा बोभवीति। (ऋक् ३/५३/८)
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव, इन्द्रो मायाभि: पुररूप ईयते। (ऋक् ६/४७/१८)
इन्द्रो रूपाणि करीकृदचरत्। (समावेद, उत्तरार्चिक ९/७/३)

(६) **अग्नि**-यह प्रथम उत्पन्न होने के कारण अग्रि है, जिसे परोक्ष में अग्नि कहते हैं। सृष्टि का आरम्भ पदार्थ तथा ऊर्जा के सघन पिण्डों द्वारा हुआ। आकाश में फैला पदार्थ सोम है। अत: विश्व के ५ पर्व ५ अग्नि हैं। उनमें प्रथम २ का कोई दृश्य प्रभाव नहीं है। अन्तिम ३ पर्व-सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी का हमारे उपर मिला-जुला प्रभाव होता है, अत: इन्हें त्रिणाचिकेत (चिकेत = अलग, स्पष्ट। नाचिकेत = मिला जुला) कहते

हैं-पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः। (कठ उपनिषद् १/३/१)
अन्तिम पर्व पृथ्वी है जो सौर मण्डल में सबसे सघन पिण्ड है, अतः यह विशेष रूप से अग्नि है। पृथ्वी के केन्द्र से आरम्भ कर प्रथम ८ धाम अग्नि हैं। भारतीय गोलार्ध में विषुवत् रेखा से उत्तर प्रथम क्षेत्र भारत है, इसका शासक भी अग्नि कहा जाता था। यह विश्व के भरण पोषण का स्रोत था अतः इसे भरत कहते थे-
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा भराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुराष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः। (वा. यजुर्वेद ११/१६)= अग्नि पृथिवी पर ऊपर स्थित है, वह अङ्गिरा (तेज देने वाल) पूरण करने वाला, भरने वालाहै। हमें ऐसा नेता मिले जो हमारा भरण-पोषण कर सके। हम उसको भरेंगे (कर आदि के द्वारा)।
स यदस्य सर्वस्याग्रमसृजत तस्मादग्रि रग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोक्षम्। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/११)= जो सबसे आगे उत्पन्न हुआ, अतः अग्रि (नेता) कहा गया। परोक्ष में अग्रि ही अग्नि हो गया।
तद्वा एनमेतदग्रे देवानां (प्रजापतिः) अजनयत। तस्मादग्रि रग्रिर्ह वै नामे तद्यग्निरिति (शतपथ ब्राह्मण २/२/४/२) = प्रजापति ने देवों में सबसे पहले इसे उत्पन्न किया। प्रथम होने के कारण यह अग्रि हुआ, जो परोक्ष में अग्नि हुआ।
विश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। (तुलसीदास कृत रामचरितमानस, बालकाण्ड) =जो विश्व का भरण पोषण करे, उसका नाम भरत है।
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणःसमुद्रै र्युष्माँ इच्छन्तः शवसोनपात्। (ऋक् संहिता १/१६१/१४) =देव अपने स्थानों के अधिष्ठाता तथा रक्षक हैं। द्यु में मरुत् चलते हैं, अन्तरिक्ष में वायु, तथा भूमि में अग्नि। जल में वरुण चलता है।
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यं सज्ज्योक् पश्यात् सूर्य्यमुच्चरन्तम्।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्य्याय नृतमाय नृणाम्। (ऋक् संहिता ४/२५/४) इन्द्र लोकों का कल्याण करता है, उनका नेता है तथा सर्वश्रेष्ठ है। भरण करने वाला अग्नि उसे सुख दे तथा हम बहुत काल तक सूर्य का उदय देखें।
अग्निर्वै भरतः। स वै देवेभ्यो हव्यं भरति।(कौषीतकि ब्रा.उप.३/२)
= अग्नि भरत है क्योंकि यह देवताओं को भोजन देता है।
एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्मात् भरतोऽग्निरित्याहुः। (शतपथ ब्राह्मण १/४/२/२, १/५/१/८, १/५/१९/८) = यह अग्नि ही देवताओं को भोजन


देता है, अतः इसे भरत अग्नि कहा गया है।
अग्नेर्महाँ ब्राह्मण भारतेति एष हि देवेभ्य हव्यं भरति। (तैत्तिरीय संहिता २/५/९/१, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/५/३/१, शतपथ ब्राह्मण १/४/१/१)
= ब्रह्मा ने अग्नि को महान् कहा था क्योंकि यह देवताओं के लिये भोजन भरता है।
अग्निर्देवो दैव्यो होता....देवान् यक्षद् विद्वां श्चिकितवान्... मनुष्यवद् भरतवद् इति (शतपथ ब्रह्मण १/५/१/५-७)= अग्नि देवों का होता (नेता) है। यह देवों तथा विद्वानों का पालन करता है। यह मनुष्य जैसा तथा भरत है।
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे। (ऋक् सं.१०/२१/५)
= यह अग्नि अथर्वा ऋषि से उत्पन्न हुआ है। यह सभी काव्यों को जानता है-या सभी रचनाओं को जानता या पाता है। यह विवस्वान् (सूर्य, देव) का दूत है तथा यज्ञकर्त्ता के लिये इच्छित देवों को बुलाता है।
त्वामग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने। (ऋक्.६/१६/१-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः) = अग्नि! तुम सभी यज्ञों के होता तथा विश्व का हित करते हो, अतः मनुष्यों ने तुम्हें देवों में रखा है।
यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु।
तस्मागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् नभन्तामन्यके समे।
(ऋक् ८/३९/८-नाभाकः काण्वः) = अग्नि ७ मनुष्य में स्थित है, सभी लोकों तथा समुद्रों (नदियों) में है। हम उस अग्नि को पायें जो ३ पदों से हमारा धारण करे तथा हमारे शत्रुओं का नाश करे।
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे।(ऋक् ६/१५/८)
= अग्नि! देवों तथा मनुष्यों ने तुम्हें दूत बनाया क्योंकि सदा से तुम अन्न का वहन करते हो। तुम सदा लोगों के कल्याण में लगे हो, अतः हम तुम्हारी प्रशंसा तथा पूजा करते हैं।
विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव। (ऋक् ६/१५/९)
= हे अग्नि! देवों, मनुष्यों का दूत होकर तुम भूमि तथा आकाश में चलते हो। अतः हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं कि हमारे मन, बुद्धि, शरीर की रक्षा करो तथा सुख दो।

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा। (ऋक् ६/१५/१३)
अग्नि होता तथा गृहपति है, वह राजा है, विश्व को जानता है या जातवेदा है। वह देवों तथा मर्त्यों का यज्ञ करानेवाला है। वह यज्ञकर्त्ता को अमृतत्व दे।
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः। (ऋक् ६/१६/१९)
= इस अग्नि ने आकर भारतों की रक्षा की, वृत्र आदि असुरों को मारा तथा पुरु (नगरों, देशों) का चेतन (चिति = रचना, आकार) करने वाला है। यह दिवोदास (वाराणसी का एक राजा) या देव पक्ष वालों का सत्पति है।
उदग्ने भारत द्युमदजस्त्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर।(ऋक् ६/१६/४५)
= हे अग्नि! तुम भरण तथा पोषण करते हो, तथा आग की ऊंची लपट जैसे प्रकाशित हो। तुम्हारी अजस्र शक्ति, तेज है। हमारा शोक हरो।
त्वमीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम्। ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्(ऋक् ६/१६/४)
= हम अग्नि की स्तुति करते हैं जो दो प्रकार का (मानसिक, भौतिक) सुख देता है, अतः यज्ञों में पूजनीय है। भरत ने इसकी यज्ञ द्वारा पूजा की।
भरणात्प्रजनाच्चैष मनुर्भरत उच्यते। एतन्निरुक्त वचनाद् वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।
यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्य्यग्याम: प्रकीर्तितः। य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः। (मत्स्य पुराण ११४/५, ६, १५, वायु पुराण ४५/७६, ८६)
भारत के राजा मनु ने प्रजा का पालन तथा भरण किया अतः उसे भरत कहा गया। निरुक्त वचन से भी इस देश को भारत कहते हैं। मनु का यह प्रसिद्ध देश दक्षिण में तिरछा (त्रिकोण) है। इसको पूर्ण रूप से जीतने वाला सम्राट् कहा जाता है।
**स्वस्तिवाचन**-दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति।
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचिताश्च न सन्तु मा न याचिष्म कञ्चन।
= दाताओं की अभिवृद्धि हो, वेद तथा सन्तति का विकासहो। हमारी श्रद्धा कम न हो तथा दान के लिये पर्याप्त धन हो। हमारे पास प्रचुर अन्न हो तथा अनेक अतिथि आयें। दूसरे हमसे लें, उनसे लेने की जरूरत नहीं हो।
भरण पोषण के लिये भी भारत मुख्य है अर्थात् पुरुष के मुख से उत्पन्न है।



## (१३) सूक्त १३-

नाभ्या असीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन्।१३।

**अर्थ**-(पुरुष की) नाभि से अन्तरिक्ष (मण्डलों का मध्यवर्त्ती क्षेत्र), तथा शीर्ष से आकाश हुये (या उनका विस्तार हुआ)। पद से भूमि तथा श्रोत्र से दिशायें हुयीं। इस प्रकार (या इसके बाद) लोक बने।

**शब्दार्थ**-(१) नाभि-पेट का केन्द्रविन्दु जो गर्भ में माता के शरीर से जुड़ा रहता है। यह शरीर के भार का केन्द्र भाग है। आसीत् = था।
(२) अन्तरिक्ष-जो अन्तर् में दीखता (ईक्ष) है। विश्व के ५ पर्व या मण्डलों का मध्यवर्त्ती क्षेत्र।
(३) शीर्ष्णौ-शीर्ष (= सिर) से।
(४) द्यौ-प्रकाश क्षेत्र, आकाश। इसे देव तथा दिन शब्द बने हैं। इसका मूल है दिवि क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु (४/१)
(५) पद्भ्याम्= पैरों (पद) से। भूमि= पृथ्वी। दिशः = दिशा।
(६) श्रोत्रात् = श्रोत्र अर्थात् कान से। तथा = और, इस प्रकार।
(७) लोकान्-लोक का बहुवचन। इसके २ अर्थ हैं-विश्व, मनुष्य-गण-
लोकस्तु भुवने जने (अमरकोष ३/३/२)
(८) अकल्पयन्-कल्प का अर्थ है चिन्तन (संज्ञा रूप में कल्पना), निर्माण, क्योंकि यह भगवान् के विचार से उत्पन्न हुआ। मनुष्य के भी सभी कामों का आरम्भ विचार से ही होता है। विचारों का सामान्य प्रवाह कल्पना है, उद्देश्यपूर्ण विचार जिससे कार्य हो सके, सङ्कल्प है। काम के लिये योजना प्रकल्प, वास्तविक काम कल्प है
संकल्पमूलः काम्यो वै यज्ञाः संकल्प सम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पदाः स्मृताः। (मनुस्मृति २/३)
संकल्प सभी कामों का मूल है तथा इसी से यज्ञ हो सकते है। व्रत (नियम, बाहरी आचरण), यम (निषेध), धर्म (स्वाभाविक गुण, वे नियम जिससे समाज चल सके)-सभी संकल्प पर आधारित हैं।
अकल्पयन् का अर्थ है निर्माण किया, यथा-
सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो सुवः। (नारायण उपनिषद् १४, ऋक् १०/१९०/३)
धाता (स्रष्टा, धारण करने वाला) ने पहले के समान सूर्य-चन्द्रमा का निर्माण किया। उसके बाद पृथ्वी, आकाश तथा अन्तरिक्ष बनाये।

## (१४) सूक्त १४-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽ स्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।

**अर्थ**-पुरुष के यज्ञ का जब देवों ने हवि द्वारा विस्तार किया, तब ३ तत्त्वों के रूप में ऋतुयें हुयी-वसन्त =आज्य (घी), ग्रीष्म = इध्म (ईन्धन), शरद् = हवि (भोजन, पुरोडाश = परोठा, भोजन के लिये पुरः या सामने रखा जाता है।)

**शब्दार्थ**-(१) यत् =जो, जब।
(२) पुरुषेण= पुरुष के द्वारा।
(३) हविषा- हवि द्वारा। हु दानादानयोः आदाने च (३/१)-१. देना, यज्ञ करना, २. खाना, भक्षण करना, ३. लेना, ग्रहण करना। वेद में-तृप्त करना-जुहोति चास्त्येव प्रक्षेपणे वर्तते, अस्तिप्रीणात्यर्थे वर्तते .... यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति-अग्निं प्रीणाति। (महाभाष्य (२/३/३)। भोजन, ग्रहण के लिये कोई खाद्य पदार्थ या अन्य वस्तु हवि है। हवि लेने की इच्छा हवस है (हिब्रू भाषा, पुरानी अरबी-अरामायिक)। आदम-इव (आत्मा-जीव) की कहानी में, केवल इव ने फल खाया था, हवि लेने के कारण उसे हव्वा कहा गया। पकाया हुआ भोजन पुरोडाश (पुरः =सामने, डाश = रखा जाय) कहा जाता है जो घी लगायी हुयी रोटी है। यह हिन्दी में परोठा हो गया है।
(४) अतन्वत-तनु विस्तारे (८/१)-विस्तार किया, फैलाया।
(५)वसन्त-वसन्त वह समय है जब अग्नि कण पदार्थों में बस जाते हैं-
यस्मिन् कालेऽग्निकणाः पदार्थेषु वसन्तो भवन्ति स कालो वसन्तः।
(६) अस्य-इसका। आज्य -घी।
(७) ग्रीष्म-जब अग्नि कण ज्यादा होकर पदार्थों को ग्रस लेते हैं या ग्रहण करते हैं, वह समय ग्रीष्म है-
यस्मिन् कालेऽग्निरतिशयेन पदार्थान् ग्रसति, गृह्णाति स कालो ग्रीष्मः।
(८) इध्म-इन्धी दीप्तौ (७/११)-जलना, प्रदीप्त होना, २. प्रकाशित होना, चमकना। इध्म = इन्ध + मक्। इन्धन = जलावन की लकड़ी या अन्य पदार्थ। इसके पर्याय हैं-



एध, इध्म, इन्धन, इधस, समित (समिधा)-अमरकोष (२/४/१३)
(९) शरत्-जब अग्नि कण शीर्ण (क्षय, घिस) जाते हैं, वह समय शिशिर है-
पुनः पुनरतिशयेन शीर्णा भवन्ति यस्मिन् कालेऽग्निकणाः स कालो शिशिरः।

**व्याख्या**-(१) **ऋतु**-यह सूक्त ऋतुओं का वर्गीकरण है। ऋत का अर्थ है फैला पदार्थ। सत्य एक पिण्ड या शरीर में है जिसका एक केन्द्र होता है। ऋत का प्रसार ऋतु है। पृथ्वी पर एक जैसा ताप-वर्षा आदि की स्थिति ऋतु है-उनका चक्र सम्वत्सर है। इस काल में पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य के चारों तरफ १ चक्र लगाती है। आकाश में सौर मण्डल के क्षेत्र भी ऋतु हैं, पूरा क्षेत्र सम्वत्सर है। इसके ६ क्षेत्र वषट्कार हैं-
नामरूपे सत्यम्। (शतपत ब्राह्मण १४/४/४/३)
ऋतमित्येष (सूर्यः) वै सत्यम् (ऐतरेय ब्राह्मण ४/२०)
वाग्वै वषट्कारो, वाग्रेतो रेत एवैतत्सिञ्चति षडित्यृतवो वै षट् तदृतुष्वेवहतद्रेतः सिच्यते तदृतवो रेतः सिक्तमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति तस्मादेवं वषट्करोति। (शतपत ब्राह्मण १/७/२/२१)
(२) **ऋतु विभाजन**-वर्ष का विभाजन ३, ५, ६, ७ ऋतुओं में हुआ है-
त्रयो वा ऋतवः संवत्सरस्य। (शतपथ ब्रा.३/४/४/१७)
षड् वा ऋतवः सम्वत्सरस्य। (शतपथ ब्रा.१/२/५/१२)
विंशति शतं (१२०) वा ऋतोरहानि। (कौषीतकि ब्रा.११/७)
पञ्च वाऽऋतवः सम्वतत्सरस्य। (शतपथ ब्रा.३/१/४/५)
सप्तर्त्तवः सम्वत्सरस्य। (शतपथ ब्रा.६/६/१/१४)
(३) **तीन ऋतु**-केवल ताप के आधार पर ३ ऋतु हैं-वसन्त, ग्रीष्म, शरत्। इनकी परिभाषा दी जा चुकी है। किन्तु ताप बढ़ने से समुद्र आदि का जल वाष्प बनता है, तथा कुछ कम ताप होने पर वह वर्षा के रूप में जमीन पर गिरता है-
यस्मिन् कालेऽग्निरतिशयेनोरू इति स कालो वर्षाः।
अथवा-अग्निभिः प्रत्याहता अग्नयः प्रतिमूर्च्छिता आपो भूत्वा पृथिवीमभिवर्षन्ति सिञ्चन्ति इति तदुपलक्षितः कालो वर्षाः।
वर्षा का अन्त शरत् से होता है। यह वर्ष के मध्य में आने के कारण वर्षा ही सभी ऋतु या वर्ष भी कहा जाता है, क्योंकि इसी ऋतु में अन्न का उत्पादन होता है। देश को भी वर्ष कहा जाता है-जो वर्षा या मानसून वायु का क्षेत्र हो। किसी काल में वर्षा से भी ऋतुका आरम्भ होता था। वर्ष या वर्षा आरम्भ का उत्सव पुरी में रथ यात्रा है,

जो दक्षिणायन में वर्षा के आरम्भ से आषाढ शुक्ल द्वितीया को होता है।
यदा वै वर्षाः पिन्वन्तेऽथैनाः सर्वे देवा सर्वाणि भूतान्युपजीवन्ति (शतपथ ब्राह्मण १४/३/२/२२) षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) (शतपथ ब्रा. १३/५/४/२८) वर्षा वै सर्वऽऋतवः(शतपथ ब्रा.२/२/३/७)
वर्षा को केन्द्र मानने से तीन ऋतुयें हैं-ग्रीष्म (कारण), वर्षा तथा शीत (परिणाम)। ये सभी ४-४ मास के होंगे। वर्षा के ४ मासों में आवागमन कठिन हो जाता है, अतः सदा चलने वाले संन्यासी भी इन ४ मासों में एक स्थान पर विश्राम करते हैं। राजा भी कर वसूली, विजय अभियान तथा अन्य यात्रायें बन्द करते हैं। लोगों की शारीरिक गतिविधि केवल अखाड़े में व्यायाम तक ही सीमित हो जाती है। अतः इसका प्रथम मास आषाढ़ (अखाड़ा) कहा जाता है। रथ यात्रा भी वार्षिक खेल का आरम्भ है। संयोग से लास एंजेल्स ओलम्पिक भी १९९६ में रथयात्रा के दिन ही आरम्भ हुआ था।
(४) **पांच ऋतु**-हेमन्त, शिशिर को मिलाने से ५ ऋतुयें हैं-
पञ्चर्त्तवो हेमन्तशिशिरयो समासेन (ऐतरेय ब्राह्मण १/१)
जिस काल में अग्निकण हीन हो जाते हैं, वह हेमन्त है-.
यस्मिन् कालेऽग्निकणा हीनतां गता भवन्ति स कालो हेमन्तः।
जिस समय अग्नि कण अत्यन्त शीर्ण हो जाते हैं, वह शिशिर है-
यस्मिन् कालेऽग्निकणाः पुनः पुनरतिशयेन शीर्णा भवन्ति स कालः शिशिरः।
(५) **ऋतु पितर**-ऋतु के समरूप वातावरण के कारण ही खेती तथा अन्य उत्पादन होता है, अतः ऋतु को पितर (जन्मदाता) कहा गया है। सभी ३ अवस्थायें जरूरी हैं-ताप में क्रमशः वृद्धि तथा ह्रास। सिंचाई के लिये मध्य में वर्षा, पूर्व में गर्मी तथा बाद में शीत। जिस समय स्त्री भी जन्म देने की अवस्था मेंहोती है, वह ऋतु-काल कहा जाता है। यज्ञ चक्र में पर्जन्य से अन्न की उत्पत्ति कही गयी है-अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। यज्ञात् भवति पर्जन्यः.. (गीता ३/१४)। यहां स्पष्टतः कृषि को ही यज्ञ कहा गया है जिससे अन्न पैदा होता है। उसके लिये वर्षा सबसे मुख्य चीज है। अन्य यज्ञों के लिये पर्जन्य का अर्थ है उत्पादन लायक परिवेश। यह परिवेश ही ऋतु-पितर है-
वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः-ते देवा ऋतवः। शरद्धेमन्तः शिशिरः-ते पितरः। य एवापूर्य्यतेऽर्द्धमासः, स देवाः। योऽपक्षीयन्ते, स पितरः। अहरेव देवाः, रात्रिः पितरः। पुनरह्नः पूर्वाह्णे देवाः, अपराह्णः पितरः। यत्रोदगावर्त्तते देवेषु तर्हि भवति। अथ यत्र दक्षिणावर्त्तते, पितृषु तर्हि



भवति।... अमृता देवाः अपहत पाप्मानो देवाः। मर्त्याः पितरः, अनपहत पाप्मानः पितरः-इति। (शतपथ ब्राह्मण २/३/१/२-४)
तस्मात् पितृयज्ञो नाम। तद् वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः, एते ते ये व्यजन्त। शरद्धेमन्त शिशिरः, एत उ ते यत् समैरयन्त।(शतपथ ब्राह्मण २/६/१/१)
षड्वा ऋतवः पितरः। (शतपथ ब्राह्मण १३/८/१/२०)
ऋतवः खलु देवाः पितरः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/३/१०/५)
विचक्षणाद् रेतो ऋतव आभृतं, पञ्चदशात् प्रसूतात् पित्र्यवतस्तन्मा पुंसि कर्त्तर्येरध्वम्।...तन्म ऋतवो अमर्त्यव आभरध्वम्।.. ऋतुरास्मि, आर्त्तवोऽस्मि-इति। (कौषीतकि उपनिषद् १/३)
(६) **विभाजन तालिका**-

| **३ ऋतु पितर** | **६ ऋतु पितर** | **सौर मास** |
|---|---|---|
| १. ग्रीष्म-पिता | १. वसन्त-पुत्र (सोमपा) | मधु-माधव |
| (अग्निष्वात्त) | २. ग्रीष्म-पिता (आज्यपा) | शुक्र-शुचि |
| २. वर्षा-पितामह | ३. वर्षा-पितामह (हविर्भुज) | नभ-नभस्य |
| (बर्हिषद) | ४. शरत्-प्रपितामह (सोमसद) | ईष-ऊर्ज |
| ३. शरत्-प्रपितामह | ५. हेमन्त-वृद्धप्रपितामह(बर्हिषद्) | सह-सहस्य |
| (सोमसद) | ६. शिशिर-अतिवृद्धप्रपितामह (अग्निष्वात्त) | तप-तपस्य |

(७) **काल का अनुभव**-ऋतु के पूर्व में काल अव्यक्त था जिसे भागवत पुराण (३/११) में परात्पर काल कहा गया है। ऋतु में परिवर्तन से ही पता चलता है कि समय बीत रहा है। ऋतु या वस्तुओं में ३ प्रकार के परिवर्तन होते हैं जिसके अनुरूप ३ प्रकार के व्यक्त काल हैं। विश्व में किसी भी पदार्थ या संस्था में परिवर्तन एक ही दिशा में होता है। जो स्थिति एक बार बदल जाती है, वह फिर कभी नहीं आती। मनुष्य बालक से युवक तथा बूढ़ा हो जाता है, किन्तु इसके विपरीत बूढ़ा कभी युवक तथा बालक नहीं हो सकता। आग से धुंआ वायु में फैल जाता है, वह वापस नहीं आ सकता। लकड़ी जल कर कोयला हो जाती है, कोयला से लकड़ी नहीं बनाया जा सकता। किसी भी वस्तु की जो अवस्था चली गयी वह वापस नहीं आयेगी। स्थूल रूप में जो परिवर्तन है, वह क्षरण या क्षय है। काल का यह रूप जगत् का क्षरण करता है। संसार का यह रूप क्षर पुरुष है, तथा यह काल नित्य काल है जो सदा लोकों का क्षरण करता है। कुछ चीजें चक्रीय क्रम में होती हैं, जैसे दिन-रात, मास (शुक्ल-कृष्ण

पक्ष), वर्ष (ऋतु चक्र) आदि। इस के अनुसार उत्पादन या यज्ञ होता है, अतः इसे जन्य काल कहते है। कर्त्ता को अक्षर पुरुष कहते हैं। इस चक्र के अनुसार काल की माप तथा गणना होती है, अतः यह कलनात्मक काल है। नित्य काल की गणना नहीं हो सकती। किन्तु जन्य काल में भी २ प्रकार है, यान्त्रिकी में दर्शक की तुलना में गति का अनुभव होता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंग (जैसे प्रकाश) की गति हर दर्शक के लिये समान है। गति का अर्थ समान काल में गमन है-अतः इन स्थितियों में काल अलग अलग प्रकार के होने चाहिये। पर हम एक ही मान कर उनकी गणना करते हैं। अतः गणना में यह सबसे कठिन है, और भगवान् ने गीता में अपने को गणनाओं में काल कहा है। किसी सीमित स्थान के वस्तुओं में कई चीजों का कुल योग हर प्रकार के परिवर्तन में समान होता है-जैसे मात्रा, ऊर्जा, आवेग, कोणीय आवेग, या कणों का विद्युत् आवेश। पूर्ण संहति को देखने पर कोई परिवर्तन नहीं होता-यह अक्षय काल है, तथा विश्व का यह रूप अव्यय पुरुष है।

| **काल** | **गुण** | **पुरुष** | **रूप** | **आधुनिक नाम** |
|---|---|---|---|---|
| १. नित्य- | सदा क्षरण | क्षर- | मृत्यु, एक दिशा में ही | Thermodynamic arrow |
| २. जन्य- | चक्र में यज्ञ | अक्षर- | कर्त्ता रूप - | Measurable time |
| ३. अक्षय- | पूर्ण रूप स्थिर | अव्यय- | परिवेश का अंश | Conservation laws |

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो (गीता ११/३२)-(जो काल लोकों के क्षय की दिशा में बढ़ता है) कालः कलयतामहम् (गीता १०/३०)-कलनात्मक काल।

अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः। (गीता १०/३३) जो विश्वतोमुख या पूर्ण संहति का काल है, वह अक्षय है।

(८) **यज्ञ या साम के खण्ड**-छान्दोग्य उपनिषद् में साम के ३, ५, या ७ भाग कहे गये हैं। यहां साम का अर्थ संगीत की लय, या कोई कार्य या यज्ञ भी है। साम उसका परिवेश रूप में ऋतु भी है। गीता में भी यज्ञ के ७ खण्ड कहे गये हैं जो सप्तविध साम है-(१) अक्षर (कर्त्ता), २. ब्रह्म (स्थूल विश्व या पदार्थ), ३. कर्म (दृश्य गति), ४. यज्ञ-(इच्छित वस्तु का उत्पादन), ५. पर्जन्य (उत्पादक परिवेश), ६. अन्न (गोजन या कोइ भी भोग्य पदार्थ), (७) भूत-जीव या वस्तु- इसका सक्रिय रूप पुनः (१) अक्षर है।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। यज्ञात् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्म समुद्भवः।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।



एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघः पार्थ स जीवति।
(गीता ३/१४-१६)

(९) पण्डित मधुसूदन ओझा ने पितृ-समीक्षा (जोधपुर विश्वविद्यालय) में ऋतु पितर का वर्णन किया है, जो मूल रूप में दिया जा रहा है-

शीतर्त्तु मासाश्चत्वारो द्वौमासौ सन्धिरुत्तरौ।
उष्णर्त्तु मासाश्चत्वारो द्वौमासौ सन्धिरुत्तरौ।।१।।
चतुरश्चतुरो मासान् स्वात्यमासमकालतः।
शीतोष्णवर्षाकालाख्याः सम्भवन्त्यृतवस्त्रयः।।२।।
शीतकालो वत्सरार्द्धं याम्यगोलस्थ सूर्य्यकम्।
उष्ण कालो वत्सरार्द्धं सौम्यगोलस्थ सूर्य्यकम्।।३।।
ज्येष्ठा सन्नात्वमवास्या ज्येष्ठासन्ना च पूर्णिमा।
आभ्यांचन्द्रमसः कालो वत्सरे कल्पते द्विधा।।४।।
एक एव ऋताग्निर्वा सोमतो ह्रासवृद्धितः।
ऋतुराख्यायतेषोढा ऋताः सोमाग्नि वायवः।।५।।
वसन्तः स वसन्तः स्युर्व्ययशेषा यदाग्नयः।
ग्रीष्मः स यत्र गृह्णीयुर्भूतान्यन्तर्बहिर्बलात्।।६।।
वरीयांसोऽग्नयो वर्षा स्त्रय उद्ग्राभलक्षणाः।
उत्तरा अग्नि निग्राभ लक्षण ऋतवस्त्रयः।।७।।
शरत् स आयादधिकं शीर्य्यन्ते तेऽग्नयो यतः।
स हेमन्तो हासिमन्तो वायौ यत्राग्रयो बहिः।।८।।
यत्राग्नयोऽतिशयः शीर्णाः स्युः शिशिर स्तु सः।
इत्थं वायौ सोमतोऽग्निर्वर्द्धतेऽपि स हीयते।।९।।

## (१५) सूक्त १५-

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्।।१५।।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वाः। (अथर्व १/१/१)

**अर्थ**-देवों ने यज्ञ के विस्तार के लिये पुरुष पशु को बांधा। इस यज्ञ में ७ परिधि तथा ३ × ७ समिधा थीं।

**शब्दार्थ**-(१) सप्त = ७। **स** देवनागरी लिपि में यवर्ग का ७वां वर्ण है।
(२) आसन्- थे।
(३) परिधय:-परिधि का बहुवचन। जो सीमा में धारण करे।
(४) त्रि = ३, त्रि: सप्त = तीन सप्तक, ३ X ७।
(५) समिध:-जो आसानी से जलता है (सम् + इध)-जलावन, इन्धन।
(६) कृत:- किया गया। यद् यज्ञम्-जिस यज्ञ को।
(७) तन्वाना-ताना, फैलाया, और आगे बढ़े।
(८) अबध्नन्-बान्धा।
(९) पुरुषम्-पुरुष का। पशुम्-पशु।

**व्याख्या**-(१) **तीन सप्तक**-विश्व का वर्णन तीन सप्तों से होता है। इन के कई अर्थ हैं-७ लोक आकाश में, पृथ्वी की सतह पर तथा मनुष्य शरीर में हैं। वेद में इन ३ सप्तकों का एक साथ वर्णन है। अत: मूल वेद अथर्व का आरम्भ इसी से होता है-
ये त्रिषप्ता: परियन्ति विश्वा:। (अथर्व १/१/१)
= विश्व ३ प्रकार के ७ द्वारा व्याप्त है।
इसके कई अन्य अर्थ भी हैं-(क) सबसे पहले आकाश में ७ लोक (कुरान का आसमान, बाइबिल का हेवेन) हुये। उसके बाद ८ दिव्य सृष्टि हुयी- ७ प्रकार के लोकों में ७ प्रकार के पदार्थ/ऊर्जा का घनत्व है। एक समरूप रस है। पृथ्वी पर ६ प्रकार की सृष्टि है-विश्व का प्रतिरूप मनुष्य है, उसके विपरीत मिट्टी आदि लुप्त संज्ञक, वृक्ष सुप्त संज्ञक हैं। अन्य ३ प्रकार के प्राणी वायु, जल तथा भूमि के हैं। इस क्रम में निर्माण को कुरान में ७८६ (बिसमिल्लाह = प्राचीन अरबी में इसका संख्यात्मक मान ७८६ है) कहा गया है।
(ख) ३ प्रकार के ७ मनुष्य ऋषि-
गोत्र प्रवर्तक ऋषि-१. भरद्वाज, २. कश्यप, ३. गोतम, ४. अत्रि, ५. विश्वामित्र, ६. जमदग्नि, ७. वसिष्ठ।
ज्ञान या वेद प्रवर्तक-१. वसिष्ठ, २. अगस्त्य, ३. भृगु, ४. अङ्गिरा, ५. अत्रि, ६. पुलह, ७. भरद्वाज।
स्रष्टा ऋषि-१. मरीचि, २. अङ्गिरा, ३. अत्रि, ४. वसिष्ठ, ५. पुलस्त्य, ६ पुलह, ७. क्रतु।
(ग) ३ सप्त सिन्धु-भारत के में सिन्धु से पश्चिम, सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक, तथा



ब्रह्मपुत्र और उससे पूर्व ७-७ नदियां हैं।
(घ) **३ तथा ७ सत्य**-जैन शाब्दिक तर्क में ३ मूल सत्य हैं-अस्ति (है), नास्ति (नहीं है), स्यात् (शायद)। अत: इसे स्याद् वाद् कहा जाता है। इनको मिलाकर ७ प्रकार के सत्य या निर्णय होते हैं-यह सप्तभंगी न्याय है। कुछ अन्य प्रकार के अर्थ में भगवान् कृष्ण की स्तुति में भी उनको त्रिसत्य तथा ७ अन्य सत्य कहा गया है-
सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना:।(भागवत पु.१०/२/२६)
(ङ) **२२ पद**-विश्व के विभाजन २१ प्रकार के हैं। किन्तु मूल स्रष्टा अविभाज्य है। वह २२ वां तत्त्व है-
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। (गीता १३/१६)
अत: जगन्नाथ मन्दिर में २२वीं सीढ़ी पर जगन्नाथ स्थित हैं। तिरुपति में भी गरुड स्तम्भ पर १६ + ६ = २२ वलय हैं।
(२) **विविध त्रिक**-वैदिक छन्दों में ५ मा छन्दों के बाद ७-७ छन्दों के ३ समूह आते है-(१) जगती सप्तक-गायत्री (६X४ अक्षर) से जगती (१२ ४) तक। (२) अतिछन्द-अतिजगती (१३ X४) से अतिधृति (१९X४ )तक, (३) कृति छन्द-कृति (२०X४) से उत्कृति (२६X४) तक। इन २६ छन्दों के कारण रोमन लिपि में २६ अक्षर हैं। २५ अक्षर सांख्य दर्शन के तत्त्वों के अनुसार हैं, X अधिक अक्षर है।
(३) **कुछ सप्तक**-कुछ प्रमुख सप्तक हैं-७ लोक जो गायत्री मन्त्र में व्याहृति केरूप में हैं-भू, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप:, सत्य।
पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु तथा ४ दिशायें।
मित्र, पूषा, अर्यमा, त्वष्टा, भग, इन्द्र, तार्क्ष्य,-७ मरुद् गण।
अग्नि की ७ जिह्वा से ७-७ प्राण, लोक आदि होते हैं-
काली कराली च मनोजवा च, सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी, लेलायमाना इति सप्त जिह्वा:(१/२/४)
सप्त प्राणा: प्रभवन्ति तस्मात्, सप्तार्चिष: समिध: सप्त होमा:।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा, गुहाशया निहिता: सप्त सप्त।८।
अत: समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव: सर्वरूपा:।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च, येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।९।
(मुण्डक उपनिषद् २/१)

यहां अग्नि की ७ जिह्वा कही गयी हैं, पर शान्ति पाठ में १४ कही जाती हैं-
अग्नि जिह्वा मनवः (ऋक् १/८९/७, वा.यजु २५/२०)
यहां ७ जिह्वा निगलने के लिये हैं, जैसे गीता (११/३०) में कहा है-लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात्। जिह्वा से कुछ बाहर भी निकलता है, उसके लिये बहिः शब्द का प्रयोग है-
नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३/१८)
मन की प्रवृत्तियां २ प्रकार की हैं, भीतर आने वाले प्रभाव ७ प्रकार के हैं, बाहर निकलने वाली अर्चि भी ७ प्रकार की है। अतः १४ प्रकार की वृत्तियों को अग्नि की जिह्वा कहा गया है (मनवः = मनु या मन का, १४)
सूर्य की ७ रश्मियों को घोड़ा भी कहा गया है-
यस्सप्तरश्मिरिति। सप्त ह्येत आदित्यस्य रश्मयः। (सप्तरश्मिः=इन्द्रः=आदित्यः)- जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (१/२९/८)
स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्। (जैमिनीय उप.ब्रा.१/२८/२)
(हे अश्व ! त्वं) सप्तिरसि। (ताण्ड्य महा ब्रा.१/७/१)
आशुः सप्तिरित्याह। अश्व एव जवं दधाति। तस्मात्पुराशुरश्वोऽजायत। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/१३/२)
वायु, इन्द्र आदि को भी ७ होता कहा गया है-
वायुः सप्तिः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/३/६/४)
इन्द्रः सप्त होता। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/३/१/१)
इन्द्रः सप्त होत्रा। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/८/५)
इन्द्रियं वै सप्त होता। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/८/२)
तस्मै (ब्रह्मणे) सप्तमं हूतः प्रत्यशृणोत्। स सप्तहूतो ऽभवत्। सप्तहूतो ह वै नामैषः। तं वा एतं सप्तहूतं सन्तम्। सप्तहोतेत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/३/११/२)
सौम्योऽध्वरः सप्तहोतुः (निदानम्)। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/११/६)
अर्यमा सप्तहोतॄणां होता। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/३/५/६)
मरुत् भी ७×७ समूह में हैं-
सप्त सप्त (७ × ७ = ४९) हि मारुता गणाः (वा.यजु. १७/८०-८५, ३९/७)- शतपथ ब्राह्मण (९/३/१/२५)।



(४) **सप्त प्राण**-पिछले उद्धरण मुण्डक (२/१/८) के अनुसार सभी ४ गुहाशयों में ७-७ प्राण हैं। इनकी सूची है-

**ब्रह्म रन्ध्र (सभी प्राण)**

शिरो गुहा- १. कान २-प्रजापति का सोम (३३ अहर्गण)
(विज्ञानात्मा) २. ओठ २-द्यु का आदित्य (२१ अहर्गण)
३. नाक २ -अन्तरिक्ष का वायु (१५ अहर्गण)
४. मुख -१ पृथिवी की अग्नि (९ अहर्गण)

**ग्रीवा -प्राण-मन**

उरोगुहा १. हाथ २-सोम
(प्राणात्मा) २. छाती २ -आदित्य
३. फेफड़ा २-वायु
४. हृदय १- अग्नि

**हृदय-व्यान-मन**

उदर गुहा- १. यकृत-प्लीहा २-सोम
(व्यानात्मा) २. क्लोम २-आदित्य
३. वृक्क २-वायु
४. नाभि १-अग्नि

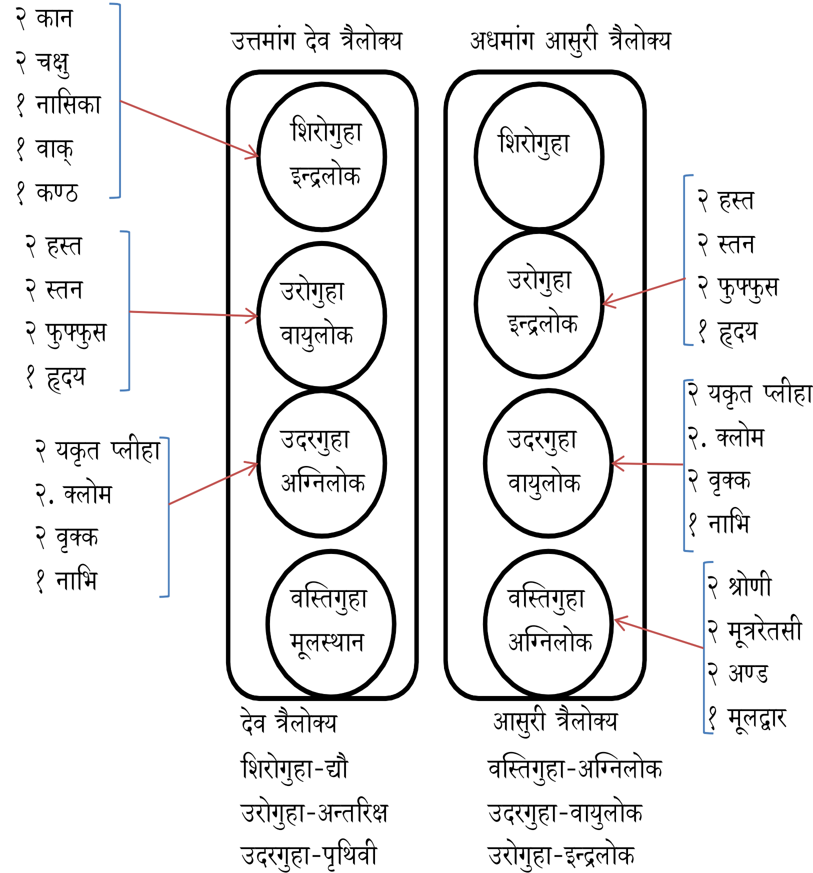
**नाभि-अपान वायु**

उपस्थ गुहा १. उपस्थ २-सोम
(अपानात्मा) २. मल-मूत्र के द्वार २-आदित्य
३. अण्डकोष २-वायु
४. नीचे का रन्ध्र १- पृथिवी

**मूलरन्ध्र**

७ ऋषि प्राणों के पक्षी रूप का शतपथ ब्राह्मण (६/१/१) में वर्णन है। ४ गुहाओं में उपर की ३ गुहा देव त्रिलोकी तथा नीचे की ३ गुहा असुर त्रिलोकी में आती है। इनका वर्णन पं. मधुसूदन ओझा ने इन्द्रविजय (जोधपुर विश्वविद्यालय), अध्याय १, तथा ब्रह्म सिद्धान्त (राजस्थान पत्रिका) अध्याय २ में किया है। इनका चित्र रूप में वर्णन अगले पृष्ठ पर दिया जाता है।

**शारीरिक त्रैलोक्य**




(४) **सात पुरुष तक सम्बन्ध**-मनुष्य का अपने पूर्व या भविष्य की पीढ़ियों के साथ ३ प्रकार का सम्बन्ध रहता है-

पिण्ड (ठोस पदार्थ)-सप्त पुरुष तक।



उदक् (जल, द्रव)-१४ पुरुष तक

ऋषि (रस्सी, आनुवंशिक तत्त्व या ज्ञान)-२१वीं पीढ़ी तक।

आनुवंशिक सम्बन्धों में यह ३X७ परिधियां हैं।

सप्त पुरुष तक सम्बन्ध वेद में कई स्थानों पर है-

वत्से बष्कयेधि सप्ततन्तून् वितत्निरेकवय श्रोतवा उ। (ऋक् १/१६४/५)

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम्। (ऋक् १०/१३/५)

विस्तार के लिये पं. मधुसूदन ओझा की पितृ-समीक्षा (जोधपुर विश्वविद्यालय) या पं. मोतीलाल शर्मा का श्राद्ध-विज्ञान (राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर) देखें।

आधुनिक जीव विज्ञान के अनुसार माता-पिता से मनुष्य को २३ जोड़े क्रोमोजोम मिलते हैं। स्वयं के पूर्व जन्म के संसकारों से १० गुण मिलते हैं क्योंकि मनुष्य का निर्माण १० रात्रियों (चन्द्रमा की १० परिक्रमा) में होता है-

विराड् वा एषा समृद्धा यद्दशाहानि। (ताण्ड्य महाब्राह्मण ४/८/६)

अथ यद्दशमेऽहन् प्रसूतो भवति तस्माद्दशपेयो। अथो यद्दश दशैकैकं चमसमनु प्रसृप्ता भवन्ति तस्माद्देव दशपेयः। (शतपथ ब्राह्मण ५/४/५/३)

अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/६/१)

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये। (वा. यजु १९/४८)-प्राणा वै दश वीराः। (शतपथ ब्राह्मण १२/८/१/२२)

गर्भ काल की स्थितियों के द्वारा चन्द्रमा मे २८ नक्षत्रों द्वारा २८ गुण मिलते हैं। इन गुणों को सह कहते हैं-

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे। (ऋक् ५/३/९)

सहोभिर्विश्वं परिचक्रमूरजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः। (ऋक् १०/५६/५)

अतः कुल ८४ सह हैं-पूर्व संस्कार १० + आनुवंशिक ४६ + गर्भकाल २८ इनमें आनुवंशिक या अपने पूर्व जन्म मिलाकर जो सह हैं, वे ७वीं पीढ़ी तक जाते हैं-

४६-२३-१२-६-३-२-१ (आनुवंशिक)

या ५६-२८-१४-७-४-२-१ (संस्कार सहित)

### (१६) सूक्त १६-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

**अर्थ**-देवों ने यज्ञ द्वारा ही यज्ञ का यजन (उपासना) किया। वे प्रथम धर्म थे। इसके द्वारा वे महान् लोग शीर्ष (नाक = सौर मण्डल के गोले का ऊपरी विन्दु) तक पहुंच गये। पृथ्वी के नाक (भारत का उत्तरी भाग) में साध्य रहते थे जो देवों के पूर्व युग में थे।

**शब्दार्थ**-(१) **यज्ञेन**- यज्ञ द्वारा। यज्ञम्-यज्ञ का।
अयजन्त = यज्ञ किया, या उसके द्वारा उपासना की। एक यज्ञ द्वारा अन्य यज्ञ पूर्ण किया। मूल धातु-यज देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु (१/७२८)-१. यज्ञ करना, हवन करना, २. देवपूजा करना, ३. अर्पण करना, देना, ४. संगति करना, संयोग करना।
(२) **देवा:**-प्राचीन काल की एक सभ्य जाति। जो अभ्युदय की कामना करते हैं-दिव: अर्थात् प्रकाश मार्ग पर चलते हैं। देव यज्ञ या उत्पादन कर उपभोग करते हैं, असुर स्वयं यज्ञ नहीं कर दूसरों का हड़पना चाहते हैं।
यज्ञ शिष्टामृतभुज: यान्ति ब्रह्म सनातनम् (गीता ४/३१)
यज्ञशिष्टाशिन: सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै:। (गीता ३/१३)
(३) तानि-वे। धर्माणि-धर्मों को। धर्म = समाज का धारण करने के नियम, वस्तुओं के स्वाभाविक गुण।
(४) प्रथमानि- प्रथम या आरम्भ करने के लिये। आसन् = थे। ते-वे लोग। ह = ही, निश्चित रूप से।
(५) **नाक**-वैकुण्ठ (विष्णु का स्थान) या सूर्य रूपी विष्णु का विशाल खूंटा-सौर मण्डल का अक्ष, धुरी। गणित की भाषा में यह सौर गोले का ऊपरी विन्दु है। पृथ्वी के गोले के लिये ध्रुव शब्द कहा जाता है। सौर मण्डल का उत्तरी (ऊपरी) ध्रुव कदल्ब तथा नीचे का ध्रुव कलम्ब कहा जाता है। इसी प्रकार जहाज का लंगर भी कलम्ब (column) कहा जाता है क्योंकि वह नीचे की दिशा में जाता है। जहाज जहां किनारे लगता है, वहां लंगर का पतन होता है, अत: वह पत्तन है। पत्तन का नगर भी कलम्ब है, जैसे श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो। समुद्री यात्रा करने वाले कलंज हैं तथा उनका देश कलिंग। इस क्षेत्र के शासक (शीर्ष) कदम्ब हैं। कलिंग तथा मंगलोर तट-दोनों के राजाओं को कदम्ब कहते थे।
(६) महिमान:-महिमा या महानता पाने वाले व्यक्ति।
सचन्त: = सञ्चित करने वाले, पाने वाले।
यत्र = जहां। पूर्वे =पहले, पूर्व काल में।



(७) **साध्या:**-साधना-उपकरण, काम या यज्ञ की पूर्णता।
साध्य-जो व्यक्ति काम या यज्ञ पूरा करने में समर्थ है। उसका साधन कर सकता है। (सूक्त ९ का शब्दार्थ भी देखें)
देवों का युग २९१०२ ई.पू. में स्वायम्भुव मनु या ब्रह्मा (आदम) से शुरु हुआ। उसके १ मन्वन्तर (मानुषी) = २६, ००० वर्ष के बाद द्वापर का अन्त ३१०२ ई.पू. में हुआ-
स वै स्वयम्भुव: पूर्व पुरुष: मनुरुच्यते (३६)
तस्य एकसप्तति युगं मन्वन्तरमिहोच्यते(३७)-(ब्रह्माण्ड पुराण १/२/९)
षड्विंशति सहस्राणि वर्षाणि मानुषानि तु।
वर्षाणां युगं ज्ञेयं .... (ब्रह्माण्ड पुराण १/२/२९/१९)
अष्टाविंशति समाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे (७६)
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव भवितास्ते महात्मन:।
अवशिष्टं युगाख्याते ततो वैवस्वतो ह्ययम्। (७७)-मत्स्य पुराण अध्याय २७३)
आदमो (स्वायम्भुव) नाम पुरुष: पत्नी हव्यवती तथा।१८।
षोडशाब्द सहस्रे च तदा द्वापरे युगे।२६। (भविष्य पुराण ३/४/१८, २६)
२६००० वर्ष में नाक के चारों तरफ पृथ्वी का अक्ष घूमता है। वह इन्द्राग्नी (कृत्तिका नक्षत्र) से आरम्भ होकर विशाखा में पूर्ण होता है जो पूर्णमासी जैसा है। पुन: कृत्तिका में चक्र पूर्ण होता है (मनु तथा द्वापर अन्त में)। यह देव-यज्ञ या महारास है-
तन्नो देवासो अनुजानन्तु कामम् ... दूरमस्मच्छत्रवो यन्तु भीता:।
तदिन्द्राग्नी कृणुतां तद्विशाखे,तन्नो देवा अनुमदन्तु यज्ञम्।
नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे, श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ।११।
पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तात्, उन्मध्यत: पौर्णमासी जिगाय।
तस्यां देवा ऽधिसंवसन्त:, उत्तमे नाक इह मादयन्ताम्।१२।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१/१)
वायु पुराण (३१/३-५, २९) के अनुसार उसके पूर्व याम देवों ने यज्ञ की पद्धति आरम्भ की। उनमें ३ कुल थे-तृप्तिमन्त, त्विषिमन्त, ब्रजकुल। तृप्तिमन्तों के ३ भाग थे-अजित, जित-अजि, जित। जित कुल में १२ प्रकार की कला की साधना करने वाले समूह थे। त्विषिमन्त शासक थे। आज के वैश्य (कृषि वाणिज्य कर्म के) तथा शूद्र (कुशल कर्त्ता इंजीनियर आदि) को ब्रजकुल कहते थे। इसी का बाद में मणिजा सभ्यता के रूप में विकास हुआ, जिनके ४ मुख्य भाग थे-१२ साध्य (ब्राह्मणों जैसे),

१२० महाराजिक (राजा, क्षत्रिय), ६४ आभास्वर (वैश्य) तथा ३६ तुषित गण (कलाकार) जो २ प्रकार के थे-अपूर्व, प्रतिरूप। इनको गणदेव कहा गया है। मणिजा सभ्यता मुख्यत: चीन में थी। ब्रह्मा (आदम) ने हर वस्तु के नाम दिये थे, तथा हर शब्द के लिये बृहस्पति ने व्याकरण बनाया था, वह चीन में अभी भी चल रहा है-
सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे। (मनुस्मृति १/२१)
बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत् नामधेयं दधाना:।
यदेषां श्रेष्ठं यदरि प्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:।। (ऋक् १०/७१/१)
बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यवर्ष सहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दपारायणं प्रोवाच। (पतञ्जलि-व्याकरण महाभाष्य १/१/१)
(८) सन्ति = थे। पूर्वे-पूर्व काल में, आरम्भ में।
**व्याख्या**-(१) **यज्ञ**-गीता (३/१०-१६) में इसकी परिभाषा है चक्रीय क्रम में उपयोगी वस्तु का निर्माण (सूक्त ६ का शब्दार्थ २)। ४ पाद का अज ४ यज्ञों का क्रम है-हर यज्ञ अगले यज्ञ का आधार है। चेतन पुरुष द्वारा इसका नियन्त्रण शिरो-यज्ञ ५वां स्तर है। सबसे मूल यज्ञ है कृषि जिसपर हमारा जीवन निर्भर है। यह संवत्सर (सौर वर्ष) के चक्र में होता है, अत: संवत्सर को यज्ञ कहा गया है (शतपथ ब्राह्मण १/२/५/१२, २/२/२/४, ११/१/१/१ आदि)। सूर्य का संवत्सर क्षेत्र (जहां तक १ संवत्सर मे प्रकाश पहुंचता है, १ प्रकाश-वर्ष त्रिज्या का गोला) भी सूर्य तेज पर आधारित यज्ञ का क्षेत्र है। कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न खाकर ही मनुष्य अन्य दैनिक, मासिक, वार्षिक कार्य या यज्ञ करता है। व्यक्तियों के उत्पादन का कारखानों, संस्थाओं, समाज के अन्य क्षेत्रों में व्यवहार होता है। अन्तत: सभी का उपयोग समाज था देश को चलाने में होता है। यज्ञ द्वारा यज्ञ की उपासना का यही अर्थ है।
(२) **पांक्त यज्ञ**-आकाश का यज्ञ ५ पर्वों मे विश्व का निर्माण है-(१) स्वायम्भुव (स्वत: निर्मित विश्व), (२) परमेष्ठी (सबसे बड़ी ईंट, आकाशगंगा), (३) सौर मण्डल, (४) चान्द्र मण्डल (चन्द्र कक्षा का गोला), तथा (५) भूमण्डल (पृथ्वी)। इस निर्माण क्रम को अविनाशी अश्वत्थ कहा गया है। सीमाबद्ध कोई भी रचना धीरे धीरे क्षय होकर नष्ट हो जाती है, पर इसका क्रम स्थायी है।
आकाश के ५ पर्वों के समान मनुष्यों के भी ५ दैनिक कर्म हैं। ब्रह्म के कर्त्ता रूप (करतार) के सिख धर्म में प्रतीक रूप ५ ककार हैं। रुद्र यामल में ५ दैनिक उपासना


का वर्णन है, जो इसलाम के ५ नमाज की तरह हैं। दिन-रात के ४ सन्धि हैं, सूर्य का उदय-अस्त, मध्याह्न, मध्य रात्रि। एक यज्ञ अविभक्त ब्रह्म के लिये मिला कर ५ होते हैं। गृहस्थों के लिये त्रिकाल सन्ध्या है, मध्य रात्रि में सभी सोये रहते हैं, उसे छोड़कर। मनुस्मृति (३/७०) में दैनिक ५ महायज्ञ कहे गये हैं-
१. ब्रह्म यज्ञ= अध्ययन।
२. पितृयज्ञ= पितर अर्थात् अपनी उत्पत्ति के स्रोतों का ऋण लौटाना।
३. दैव यज्ञ= बाह्य तथा आन्तरिक प्राणों को सशक्त करना।
४. भूत यज्ञ-निकट के प्राणी-मनुष्य तथा पशु की देखभाल जो हमारे सहायक हैं।
५. नृ यज्ञ = अतिथि सत्कार।
**तैत्तिरीय उपनिषद्** (१/७/१) में ५-५ यज्ञ कहे गये हैं। बह्म सूत्र में इसे पञ्चीकरण कहा गया है। ३ आधिभौतिक वर्गों पर ३ आध्यात्मिक वर्ग निर्भर हैं।
**अधिभूत**-१. पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्यौ, दिशा, अवान्तर दिशा।
२. अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र।
३. आप्, ओषधि, वनस्पति, आकाश, आत्मा।
**अध्यात्म**-४. प्राण, व्यान, अपान, उदान, समान।
५. चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक्, प्राण।
६. चर्म, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा।
**ऐतरेय ब्राह्मण** (१/५) में अन्य प्रकार से ५×५ यज्ञ कहे गये हैं-
**अन्न पंक्ति**-१. पाक यज्ञ (गुह्य)- पदार्थों का आन्तरिक परिवर्तन दीखता नहीं है। २. इष्टि (तात्कालिक इच्छापूर्त्ति के लिये), ३. पशु (साधन रूप प्राणी या वस्तु), ४ सोम =फैला पदार्थ। २ से ४ तक वितान (= विस्तार या प्रसार) यज्ञ कहे गये हैं। इन्हें सुत्या-एक के बाद एक का क्रम कहा जाता है। ५. अग्नि-चयन-पिण्डों को अपने उचित स्थान पर रखना। इसे चित्या (चिति, प्रारूप करने वाला) कहा गया है।
**हवि पंक्ति**-१. धन, २. करम्भ, ३. परिवाप, ४. पुरोडाश, ५. पयस्य।
**अक्षर पंक्ति**-१. सु= आनन्द, २. मत् = मन, ३. पत् = विज्ञान, ४. वक् = वाक्, ५. दे = प्राज्ञ।
**नराशंस पंक्ति** (उच्छिष्ट पदार्थ का उपयोग)-(१) प्रात: सवन-२ नराशंस, (२) माध्यन्दिन सवन -२ नराशंस, (३) सायं सवन-१ नराशंस = कुल ५ नराशंस।
**सवन पंक्ति**-१. उपवसथ पशु (अग्नि सोमीय पशु), २. प्रात: सवन, ३. माध्यन्दिन

सवन, ४. सायं सवन, ५. अनुबन्ध्य पशु (मैत्रावरुण द्वारा नियन्त्रित)

इन वर्गों का आधार है-१. उपलब्ध वस्तु, २. उपभोग की विधि, ३. इच्छा की पूर्त्ति, ४. निर्माण का उपभोग या उपयोग, ५. मनुष्य तथा साधनों के उपयोग का समय।

(३) **प्राकृतिक यज्ञ**-प्रकृति के निरन्तर चलने वाले यज्ञ ५ प्रकार के हैं-

१. पाक यज्ञ, २. हविर्यज्ञ, ३. महायज्ञ, ४. अतियज्ञ, ५. शिरोयज्ञ।

१. पाक यज्ञ ७ प्रकार के हैं-१. अष्टका, अन्वष्टका, ३. पार्वण-श्राद्ध, ४. श्रावणी, ५. आग्रहायणी, ६. चैत्री, ७. आश्वयुजी।

२. **हविर्यज्ञ** १३ प्रकार के हैं-

| **१. इष्टि यज्ञ-७** | **२. पशु-बन्ध-४** | **३. पित्र्य यज्ञ -२** |
|---|---|---|
| १. अग्न्याधान | १. निगूढ | १. पित्र्य यज्ञ |
| २. अग्निहोत्र | २. अग्निषोमीय | २. महा पित्र यज्ञ |
| ३. दर्शपूर्णमास | ३. सौत्रामणि | ......... |
| ४. चातुर्मास | ४. चयनीय | |
| ५. आग्रयण | ......... | |
| ६. इष्ट्यायन | | |
| ७. काम्येष्टि। | | |

३. **महा यज्ञ**-१. सोमयज्ञ २. सुरायज्ञ

| १. एकाह | २. अहीन | ४. अयन सत्र | ३. रात्रिसत्र | ५.महासत्र | १. कोकिल |
|---|---|---|---|---|---|
| १-अग्निष्टोम | द्व्यह(५) | ज्योतिषामयन | ३२ रात्रिसत्र | १.भूतयज्ञ | सौत्रामणि |
| २-अत्यग्निष्टोम | त्र्यह(१५) | मुख्य (१०) | ३२ | २.मनुष्ययज्ञ | २. चरक |
| ३-उक्थ्यस्तोम | चतुरह(२) | ज्योतिषामयन | | ३.देवयज्ञ | सौत्रामणि |
| ४-षोडशीस्तोम | पञ्चाह (४) | गौण (४) | | ४. पितृयज्ञ | २ |
| ५-अतिरात्रस्तोम | षडह (२) | वैकारिक(३) | | ५.ब्रह्मयज्ञ | |
| ६-वाजपेयस्तोम | दशाह(२) | तापश्चित्त(३) | | ५ महासत्र | |
| ७-आप्तोर्यामस्तोम | द्वादशाह(२) | बहुसांवत्सरिक(८) | | ५ | |
| प्राकृतिक-७ | सप्ताह(१) | सारस्वत (३) | | | |
| वैकारिक-५८ | अष्टाह(१) | द्वार्षद्वत (१) | | | |
| एकाहयज्ञ-६५ | नवाह(१) | ३५ अयनसत्र | | | |
| ६५ | एकादशाह(१) | ३५ | | | |
| | ३६ अहीनयज्ञ | | | | |
| | ३६ | | | | |



४. **अतियज्ञ**-

१. मेधयज्ञ (राजर्षि के लिये)-१. अश्वमेध, २. गोमेध, ३. पुरुषमेध, ४. सर्वमेध।

२. राजसूय (राजा के लिये)

३. वाजपेव (ब्राह्मण का)

४. अग्निचयन (बअह्मर्षि के लिये)

५. **शिरोयज्ञ**-

१. धर्मयाग, २. प्रवर्ग्य याग, ३. सम्राड् याग, ४. महावीरोपासन।

(४) **१८ यज्ञ**-मुण्डकोपनिषद् में इनको १८ कमजोर नाव कहा गयाहै-

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। (मुण्डक उपनिषद् १/२/७)

१७ यज्ञों का निर्देश ४, ४, ५, २, २ अक्षरों के शब्दों से किया गया है। १८वां यज्ञ सर्व यज्ञ है-

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः॥

| ओश्रावय | अस्तुश्रौषट् | येयजामहे | यज, | वौषट्। |
|---|---|---|---|---|
| १,२,३,४ | ५,६,७,८ | ९,१०,११,१२,१३ | १४,१५ | १६,१७ |

ओश्रावय-इति वै देवाः पुरो वातं ससृजिरे। अस्तु श्रौषट्-इति अभ्राणि समप्लावयन्। यज-इति विद्युतम्। ये यजामहे-इति स्तनयित्नु। वषट्कारेणैव प्रावर्षन्। (शतपथ ब्राह्मण १/५/२/१८)

देवताओं ने पुरवा हवा को उत्पन्न करने के लिये -ओश्रावय-कहा। बादलों को लाने के लिये कहा-अस्तु श्रौषट्। बिजली की चमक के लिये कहा-यज। उसकी गड़गड़ाहट के लिये कहा-ये यजामहे। वर्षा बून्दों के गिरने के लिये कहा-वौषट्।

इसमें प्रथम तथा अन्तिम का प्रचलन है। काशी क्षेत्र में पुरवा हवा बहने पर ओसाते हैं (ओसाव= ओश्रावय)। ६ ऋतुयें होती हैं, पृथ्वी की जलवायु के ६ रूप या सूर्य की वाक् (प्रभाव क्षेत्र) के ६ भाग। अतः वर्षा भी ६ ऋतुओं (वौषट् = वाक् वौषट् आदि-शतपथ ब्राह्मण १/७/२/२१) में एक है। यज्ञ के ५ भागों के समान मन्त्र के ५ भाग हैं, जो वर्षा के ५ आकाशीय लक्षणों को बताते हैं।

ये यज्ञ आकाश के १७ क्षेत्रों के यज्ञों के प्रतिरूप हैं। आकाश के स्तोम (आयतन, क्षेत्र) उनकी त्रिज्या (अहर्गण) माप के अनुसार हैं-

७ पृष्ठ्य (सतह) स्तोम-३, १५, १७, २१, २७, ३३.

७ ज्योति स्तोम-अग्नि, अत्यग्नि, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, वाजपेय, आप्तोर्याम।
३ छन्दोमा स्तोम-२४ (गायत्र), ४४ (त्रिष्टुप्), ४८ (जागत)।
महाव्रत-२५ स्तोम।
सर्व-यज्ञ स्तोम।

(५) **गीता के यज्ञ**-गीता (४/२४-३२) में कई प्रकार के यज्ञों का वर्णन है।

(१) **ब्रह्मयज्ञ**-प्राय: भोजन के समय यह गीता मन्त्र कहा जाता है-
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।(४/२४)

प्राय: इसी आशय के प्रश्न उत्तर वेद में हैं-इन्हें जोड़ने के लिये संहिता-ब्राह्मण दोनों को वेद मानना जरूरी है।

किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद् यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।(ऋक्.१०/८१/४)
ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।(तैत्तिरीय ब्रा.२/८/९)

भोजन में अर्पण-क्रिया, हवि, अग्नि, हवन-क्रिया, परिणति तथा कर्म-सभी ब्रह्म हैं। व्यापक रूप में सभी यज्ञों में हवि, यज्ञ आदि ब्रह्म ही हैं। सृष्टि यज्ञ में वृक्ष (निर्माण क्रम), वन (क्रमों का समूह), पदार्थ, आधार-सभी ब्रह्म हैं। मूल ब्रह्म रस रूप है, उसकी सृष्टि विशेष है, अत: ब्रह्मको निर्विशेष कहा है-उसकी सृष्टि ब्रह्म से स्तम्ब पर्यन्त (सांख्य दर्शन) विशेष हैं। इन दो प्रकार के वर्णनों को शङ्कर तथा रामानुज दर्शन कहा गया है-

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिधाभिमानाः। (भागवत पुराण में गजेन्द्र मोक्ष)

सभी में अभेद ब्रह्म दृष्टि रखने से समाधि तथा ब्रह्म स्थिति प्राप्त होती है।

(२) **दैवयज्ञ**-दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।(४/२५)

योग के ८ अंग द्वारा क्रमश: एक यज्ञ का दूसरे यज्ञ में हवन होता है। अन्त में ब्रह्माग्नि में स्वयं का हवन होता है। चेतन तत्त्व की ब्रह्म-सायुज्यता के अतिरिक्त शिव पुराण में सती द्वारा अपना स्थूल शरीर योगाग्नि में हवन करनेका वर्णन है। समाधि की



प्रकिया में स्थूल शरीर का कर्मेन्द्रिय में , उनका ज्ञानेन्द्रिय में, उनका मन में, मन का बुद्धि में, उसका अहमार में, तथा सबका आत्मा में लय होता है। यही पुरुष सूक्त की अन्तिम ऋचा का आध्यात्मिक अर्थ है-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्या सन्ति देवाः।(ऋक्.१०/९६/१६)

(३) **संयम-इन्द्रिय यज्ञ**-विषयो का नियन्त्रण इन्द्रियों से तथा इन्द्रियों का नियन्त्रण संयम से होता है-
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति(४/२६)

(४) **प्राणकर्म यज्ञ**-ज्ञान द्वारा आत्मसंयम रूपी अग्नि में इन्द्रिय तथा प्राण कर्मों की आहुति-
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते(२/२७)

(५) **द्रव्य, तप, योग, ज्ञान यज्ञ**-इन ४ यज्ञों का उल्लेख एक ही श्लोक में है-
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा यागयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः(२/२८)

(६) **प्राण यज्ञ**-प्राण का अपान में, अपान का प्राण में, तथा नियत आहार द्वारा प्राण का प्राण में हवन-
अपानेजुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।(२/२९-३०)

शरीर में भोजन का ग्रहण प्राण का ग्रहण है जिसका अपान में हवन होता है। काम में उसका खर्च होना अपान का प्राण में हवन है। बृहदारण्यक उपनिषद् (१/५/१) के अनुसार हम ७ प्रकार का भोजन लेते हैं-१. मन या ज्ञान, २. प्राण, ३. पृथिवी (अन्न-ठोस), ४. जल, ५. तेज (प्रकाश), ६. वायु (श्वास), ७. आकाश। वैशेषिक दर्शन में काल (यज्ञ-चक्र की माप) तथा आत्मा ( यज्ञकर्त्ता) को मिला कर ९ द्रव्य कहे गये हैं। ७ प्रकार के अन्नों से ७ प्रकार के यज्ञ होंगे। आयुर्वेद में प्रत्येक स्तर पर अन्न के पाचन की क्रिया बतायी गयी है। उसका रस अगले स्तर पर तीन भागों में विभक्त होता है-अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्टो धातुस्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यस्तन्मांसं योऽणिष्टस्तन्मनः(छान्दोग्य उप.६/५/१)। आयुर्वेद के

अनुसार स्थूल भोजन ७ स्तरों में पचता है-

१. रस (द्रव)-पुष्टि करता है। इसका मल भोजन का अवशेष है जो शरीर से बाहर निकलता है।

२. असृक् (द्रव में ठोस कण)-रक्त। यह जीवन (वाजीकरण या शक्ति) देता है। इसका मल पित्त है।

३. मांस-इसमें मांसपेशी तथा चर्म भी है। यह शरीर का लेपन करता है। इसका मल कान के मल आदि हैं।

४. मेद (चर्बी)-यह स्नेहन (चिकनाई) करता है। इसका मल पसीना है।

५. अस्थि (हड्डी)-यह धारण करता है। इसका मल केश, नख हैं।

६. मज्जा-हड्डी का भीतरी भाग, मस्तिष्क, सुषुम्ना तन्त्र। यह पूरण (भरना) करता है। ग्रन्थियों का स्राव इसका मल है।

७. शुक्र (रज,वीर्य)-यह ओजस् देता है, सन्तति पैदा करता है।

७ प्रकार के लोकों की प्रतिमा रूप शरीर में ७ चक्र हैं। इसका विश्व से सम्बन्ध ८ वां चक्र है-

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरण्यय: कोश: स्वर्गो ज्योतिषावृत: (अथर्व.१०/२/३१)

(६) **पदार्थों का संयोग**-पं मधुसूदन ओझा ने संशय तदुच्छेदवाद के यज्ञैकसत्योपनिषद् (अंग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणी सहित-ब्रह्मविद्या रहस्यम्-ए. एस्. रामनाथन-राजस्थान पत्रिका, जयपुर-खण्ड २, पृष्ठ १५९-१७६) में प्राय: इन्हीं का वर्गीकरण किया है। यज्ञ की परिभाषा दी है एक वस्तु का दूसरे के उदर में लय होना। ४ प्रकार के सम्बन्धों से ४ प्रकार के यज्ञ हैं-१. ब्रह्म-कर्म, २. जीव-ईश्वर, ३. मन-प्राण-वाक्, ४. ज्ञान-क्रिया।

१. ब्रह्म-कर्म यज्ञ-ब्रह्म की कर्म में तथा कर्म की ब्रह्म में आहुति। इन क्रियाओं को ब्रह्मा का दिन और रात्रि कहा गया है।

२. जीव-ईश्वर यज्ञ-तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् (तैत्तिरीय उप.)

३. प्राण यज्ञ-तीन प्रकार के हैं-(क) मन-प्राण, (ख) मन-वाक्, (ग) प्राण-वाक्। शक्ति के अनुसार प्राण ४ स्तर के हैं-परोरजा, आग्नेय, सौम्य,आप्य। क्रिया के अनुसार ७ प्रकार के हैं जो मुण्डकोपनिषद् (१/२/४, २/१/८) के अनुसार अग्नि की ७ निगलने वाली जिह्वा से बने हैं। उगलने (अर्चि) के लिये भी ७ जिह्वा हैं-कुल



१४ (मनु) जिह्वा हैं-अग्नि जिह्वा मनव:(ऋक्.१/८९/७)। क्रियात्मक ७ अंगों के कारण प्राण को सुपर्ण कहा गया है, जो रस रूप ब्रह्म के समुद्र में प्रवेश कर भूमि, जीवों की सृष्टि करता है। सृष्टि क्षेत्र (भूमि) माता है, रचित पदार्थ पुत्र है। दोनों एक दूसरे का पालन करते हैं (गीता ३/११ में-परस्परं भावयन्त:)-प्राण-वाक् यज्ञ-

एक: सुपर्ण: स समुद्रमाविवेश स इदं भुवनं वि चष्टे।

तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ।

(ऋक् १०/११४/४)

मन वाक् यज्ञ का क्रम तैत्तिरीय उप.(२/१) में है- मन-आकाश-वायु-अग्नि-अप्-पृथिवी। लय-क्रम में ये क्रमश: अपने स्रोतों में लीन होते हैं।

मन में कोई कर्म नहीं है, उसकी प्राण में आहुति से कर्म होता है। समाधि में कर्म का मन में लय होता है।

लीन द्रव्य अन्न है तथा जिसमें लय होता है वह अन्नाद है। अन्न-अन्नाद यज्ञ का सामवेद में उल्लेख है-

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि।५९४।

ज्ञान-क्रिया यज्ञ का क्रम उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि में कहा है-

ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिर्भवेत्। कृतिजन्यं भवेत्कर्म तदेतत् कृतमुच्यते।

अर्थ-क्रिया की परस्पर आहुति यज्ञ है। यहां अर्थ सिर्फ पैसा नहीं है, इन्द्रियों का प्रत्येक विषय अर्थ है।

**(७) भौतिक यज्ञों का क्रम**-एक यज्ञ के आधार पर दूसरा यज्ञ चलता है, यही यज्ञ द्वारा यज्ञ का यजन है (पुरुष सूक्त, १६)। शरीर के भीतर यज्ञों का क्रम दिखाया गया है। आधिभौतिक यज्ञों का क्रम प्राय: इस प्रकार है-

कृषि-वितरण-तेल आदि उद्योग-घर में पकाना-भोजन-पाचन।

कृषि वर्षा पर आधारित है, अत: इस क्रम में दैहिक-दैविक-भौतिक सभी यज्ञ आ जाते हैं। परस्पर सम्बन्ध होने के कारण देव-मनुष्यों का परस्पर यजन कहा गया है।(गीता,३/९)

सभी उद्योग कच्चे माल पर आधारित हैं, इनका उत्पादन, परिवहन, विक्रय आदि यज्ञों के क्रम हैं।

गुरु-शिष्य क्रम से शिक्षा का प्रसार-विस्तार ज्ञान यज्ञ का चक्र है। यह भौतिक,

आध्यात्मिक (व्यक्तिगत) दोनों है।

**(७) अश्वमेध यज्ञ के ३ रूप**-अश्व की परिभाषा उसके विभिन्न अर्थों के समन्वय से मिलेगी। मूल अर्थ आकाश सम्बन्धी है। इसकी मूल धातु २ हैं-अश भोजने (पा.धातु पाठ ९/५४), या -अशूङ् (अश्) व्याप्तौ संघाते च (५/१८)। प्राय: इसी उच्चारण की धातु है-अस गति दीप्त्यादानेषु (१/६२५) या, अष् गति दीप्त्यादानेषु (१/६२६)। यह सर्वव्यापी शक्ति है जो गति और दीप्ति देती है। गति या उर्जा देने के लिये इसे भोजन की आवश्यकता होती है। जैसे घोड़ा गाड़ी खींचता है, उसके लिये उसे भोजन की जरूरत है। गाड़ी के इञ्जन में भी पेट्रोल का भोजन मिलने पर वह चलता है। समुद्री वायु भी अश्व है जिसे सूर्य किरणों से शक्ति मिलती है। उस शक्ति से पाल की नाव चलती है। जिस क्षेत्र में शान्त वायु है, वह भद्राश्व-वर्ष है। आधुनिक भूगोल में उसे (Horse-latitude) कहते हैं(जापान-कोरिआ के दक्षिण का समुद्र)-यह भारत से प्राय: ९०° अंश पूर्व है। आकाश में इसकी उत्पत्ति परमेष्ठी मण्डल के पदार्थ से हुयी जिसे जल कहा गया है। सूर्य को इससे शक्ति मिलती है, तथा वह किरणों के रूप में उर्जा निकालता है। इन किरणों को ७ प्रकार का अश्व कहते हैं-इस अर्थ में अश्व शब्द ७ संख्या का वाचक है। इन्द्रधनुष के ७ रंगों को कई लोग ७ घोड़े समझते हैं। पर सूर्य किरणों का तेज प्रत्येक ग्रह कक्षा के पास अलग-अलग है, उन्हें ही ७ किरणें कहते हैं। कूर्म पुराण पूर्व.(४३/२-८) तथा वायु पुराण (५३/४४-५०) में इनके नाम हैं-

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ग्रह- बुध | शुक्र (विश्वव्यचा:) | पृथ्वी-चन्द्र | मंगल | गुरु | शनि | नक्षत्र | |
| नाड़ी-विश्वकर्मा | विश्वश्रवा | सुषुम्ना | संयद्वसु | अर्वाग्वसु | स्वर | हरिकेश | |
| दिशा-दक्षिण | पश्चिम | ---- | उत्तर | ऊपर | --- | पूर्व | |

इनका मूल भी वेदों में ही है-

अयं पुरो हरिकेश: सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ।
पुञ्चिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ।(यजु.१५/१५)

अयं दक्षिणाविश्वकर्मा।(१५/१६) अयं पश्चाद् विश्वव्यचा:(१५/१७), अयमुत्तरात् संयद्वसु:(१८) अयमुपर्यर्वाग्वसु(१९) सूर्यरश्मिर्हरिकेश: पुरस्तात्(१७/५८) सुषुम्ण: सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व: (१८/४०) आदि।

सूर्य रश्मियों से जीवन को गति मिलती है। इनका निर्माण बुध क्षेत्र से आरम्भ है-विश्वकर्मा। ज्यादा तेजस्वी शुक्र का क्षेत्र विश्वश्रवा है। पृथ्वी के पास सम-शीतोष्ण


क्षेत्र है-सुषुम्ना। यह सूर्य से विकीर्ण अंगारों (अङ्गिरा) तथा परमेष्ठी के आकर्षित शीत पदार्थ का सन्तुलन होने से अत्रि है। सूर्य रूपी विराट् पुरुष के चक्षु द्वारा यह उन्पन्न है जैसे माता पिता के संयोग से सन्तान का जन्म होता है-

अथ नयन समुत्थं ज्योतिरत्रेरिवद्यौ: सुरसरिदिव तेजो वह्नि निष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुल भूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी .... (रघुवंश २/७५)।

भौतिक अश्वमेध का उद्देश्य है पृथ्वी पर यातायात और सञ्चार की बाधा दूर करना। अश्वमेध की पारम्परिक कथाओं में यही दिखाया जाता है कि घोड़ा सम्पूर्ण भारत में अबाध गति से घूम सकता है। रामायण में २ स्थानों पर अश्वमेध का वर्णन है। राजा दशरथ के पुत्र कामेष्टि यज्ञ के समय भी अश्वमेध हुआ था। लेकिन इसमें कोई घोड़ा नहीं छोड़ा गया जो भारत परिक्रमा के लिये निकले। जिस समय राम १५ वर्ष के थे उस समय विश्वामित्र राजा दशरथ के पास राम लक्ष्मण को मांगने के लिये गये थे। दशरथ ने अपनी आयु ६०,००० वर्ष (दिन-रात्रि)) अर्थात् प्राय: ८२ सौर वर्ष कही थी। अर्थात् राम जन्म के समय उनकी आयु ६७ वर्ष थी। इस आयु में पुत्र जन्म कराने के लिये शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है। अत: पहले अश्वमेध यज्ञ द्वारा प्राण का शरीर में प्रवाह निर्बाध किया गया अर्थात् नाड़ी-शोधन किया गया। इस नाम का एक प्राणायाम भी है। तब एक ही कोषिका को ४ भागों में बांट कर ४ रानियों का गर्भाधान हुआ। देश के लिये जैसे वाहनों की गति है, उसी प्रकार शरीर में प्राणों का प्रवाह है। अश्व के विभिन्न अर्थों में प्रयोग-

(१) गतिशील अग्नि या विद्वान्-प्र नूनं जातवेदसम् अश्वं हिनोत।
वाजिनम् इदं नो बर्हिरासदे। (ऋक्.१०/१८८/१, निरुक्त ७/२०)

(२) वीर्य-वीर्यं वा अश्व:। (शतपथ.२/१/४/२३)

(३) वज्र-वज्रोऽश्व:। (शतपथ.१३/१/२/९)

(४) इन्द्र-इन्द्रो वा अश्व:। (कौषीतकि ब्रा.१५/४)

(५) आत्माब्रह्मन्नश्वं भन्त्सयामि। (वाज.सं.२२/४, मैत्रायणी सं.३/१२/१, शतपथ ब्रा.१३/१/२/४)

(६) कर्मेन्द्रिय-गोभिरश्वभिर्वसुभिर्न्यृष्ट:। (ऋक्.१०/१०८/७)

(७) सौर शक्ति-सौर्यो वा अश्व:। (गोपथ उत्तर ३/१९)

(८) पशु अश्व-अश्वो मनुष्यान् (अवहत्) शतपथ ब्रा.(१०/६/४/१)

(९) वरुण, जल या प्रजापति के अश्रु से उत्पन्न-प्राजापत्यो वा अश्वः। (शतपथ ६/५/३/९)
वारुणो वा अश्वः(शतपथ.७/५/२/१८)
प्रजापतेः अक्षि अश्वयत्। तत् परापतत् ततोऽश्वः समभवद् यद् अश्वयत् तद् अश्वस्य अश्वत्वम्। (शतपथ.१३/३/१/१)
अश्वमेध यज्ञ से राष्ट्र या व्यक्ति दोनों की शक्ति बढ़ती है-
श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः। (शतपथ १३२/९/२, तैत्तिरीय ब्रा.३/९/७/१)
प्राणापानौ वा एतौ देवानाम्। यदर्काश्वमेधौ। (तैत्तिरीय ब्रा.३/९/२१/३)
एष (अश्वमेधः) वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञः। एष वै तेजस्वी नाम यज्ञः।
एष वै अतिव्याधी नाम यज्ञः।(तै.३/९/१९/३)
इञ्जन की शक्ति की माप की एक इकाई का नाम भी अश्वशक्ति (Horse-power) है। प्राचीन काल में भी हजार घोड़े वाले रथ का वर्णन है (जैसे घटोत्कच का रथ)। किसी गाड़ी में हजार घोड़े लगाना सम्भव नहीं है, यह उसके इञ्जन की शक्ति की ही माप हो सकती है। इसी प्रकार अर्जुन का दिव्य रथ कभी कभी भूमि से ऊपर भी चलता था। सामान्य घोड़े का रथ उपर नहीं उड़ सकता।
**(८) राजसूय यज्ञ**-आकाश में लोकों को रज कहा गया है। उनके निर्माण तथा पालन की क्रिया ही राजसूय यज्ञ है। राज एक प्रकार का सोम है। उस सोम से लोकों का निर्माण होता है तथा उनका रूप बना रहता है-
इमे वै लोका रजांसि। (वाज.यजु.११/६, शतपथ.६/७/३/१०)
सूय का शाब्दिक अर्थ सृष्टि या जनन है। अतः राजसूय का अर्थ राज सोम से लोकों की उत्पत्ति है।
सोमो वैष्णवो राजेत्याह। (शतपथ.१३/४/३/८)
यो राजसूयः स वरुण सवः। (शतपथ.५/३/४/१२, तैत्तिरीय.२/७/६/१)
तस्माद्राजसूयेनेजानः सर्वमायुरेति। (तैत्तिरीय.१/७/७/५)
वरुण के जल समुद्र (ब्रह्माण्ड या आकाशगंगा कापदार्थ) से सौर मण्डल की सृष्टि हुयी। माता के गर्भ में शरीर का विकास जल से घिर कर ही होता है। जन्म के बाद भी जलीय प्रवाह (रक्तसञ्चार, पाचन आदि) द्वारा शरीर का विकास तथा पालन होता है। राज्य का पालन प्रजा से कर लेकर विभिन्न प्रकार से राज्य की रक्षा होती है, जैसे महाभारत में युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ।


**(९) वाजपेय यज्ञ**-वाज भी एक प्रकार का सोम है। वाजी-करण का अर्थ शरीर की शक्ति बढ़ाना है। अतः शरीर का रोग दूर कर विभिन्न प्रकार के व्यायामों से उसकी शक्ति बढ़ाना ही वाजपेय यज्ञ है। राज्य की शक्ति बढ़ाने के लिये लोगों की शिक्षा, सैन्य शक्ति, उत्पादन आदि उपाय हैं।

## उत्तर नारायण अनुवाक्

## (१७) सूक्त १-

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ।१७।
**अर्थ**-विश्वकर्मा ने अप् (जल जैसा समरूप पदार्थ) से पृथ्वी तथा इसके रस का निर्माण किया। त्वष्टा (कारीगर) स्वयं ही विश्वरूप है। वह अपने जन्म समय से ही मर्त्यों में प्रथम देव है।
**शब्दार्थ**-अद्भ्यः = अप् या जल से। सम्भृतः = पदार्थों के संयोग से बना।
पृथिव्यै = पृथिवी के लिये। रसात् च-रस से भी।
विश्वकर्मणः-हे विश्वकर्मा (विश्व को बनाने वाला)
अग्रे = आगे, प्रथम, पहले।
तस्य = उसका। त्वष्टा = विश्व का कारीगर, निर्माता।
विदधात्-धारण किया, रूप बनाया।
रूपम्= बाहरी आकार, रूप।
मर्त्यस्य-मर्त्य (मरणशील, क्षय होने वाले) विश्व या मनुष्य का।
देवत्वम्-देवता का गुण।
आजानम्-जन्म या निर्माण के आरम्भ से ही।
**व्याख्या**-आकाश में सृष्टि का क्रम है-पुरुष के मन से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, ओषधि, अन्न-पुरुष (व्यक्ति) जो अन्न-रस से युक्त है। यहां ओषधि में दोनों की गिनती है-ओषधि = फल पकने पर नष्ट होने वाले, तथा वनस्पति =हर वर्ष फल देने वाले।
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। (तैत्तिरीय उप.२/१/३)

एक अन्य विचार है कि स्रष्टा से उसका निर्मित जगत् भिन्न नहीं है। स्रष्टा ने ही स्वयं को कई रूपों में प्रकट किया है, या सृष्टि के बाद उसी में प्रवेश कर गया-

स तपस्तप्त्वा इदँ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चा (स+त्य) भवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किं च। तत्सत्यमित्याचक्षते। (तैत्तिरीय उप. २/६/३)

वह स्रष्टा पुरुष मर्त्यों (सजीव, निर्जीव क्षरणशील) में देवत्व (अमृत तत्त्व, या कर्त्ता रूप) है। वह सबसे पहले उत्पन्न हुआ।

## (१८) सूक्त २-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय।१८।

**अर्थ**-मैं उस पुरुष को जानता हूँ जो आदित्य वर्ण (तेज) का है तथा उसकी सीमा के परे भी विद्यमान है। (३ आदित्य-अर्यमा, मित्र, वरुण-जो स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर के मूल हैं)। उसको जानने पर ही मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है। वहां (मोक्ष) तक जाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

**शब्दार्थ**-वेद = मैं जानता हूँ। अहम = मैं। एतम् = इसे। पुरुषम् = पुरुष को।
महान्तम् = महान्, सबसे बड़ा।
तमसः -अन्धकार का। परस्तात् = उसके पार।
आदित्य-संसार का आदि रूप, अभी यह मण्डलों के बीच अन्तरिक्ष में दीखता है। मित्र वरुण, अर्यमा क्रमशः सौर, परमेष्ठी, स्वयम्भू के आदित्य हैं-
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु।(ऋक् २/२७/८)
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं नो इन्द्रो बृहस्पति शं नो विष्णुरुरुक्रमः।।
(ऋक्.१/९०/९, अथर्व १९/९/६, वा.यजु.३६/९)
वर्णं = रंग, चमक, तेज।
तम् एव- उसी को। विदित्वा = जान कर।
अतिमृत्युम् = मृत्य के पार। एति = पाता है, पहुंचता है।
न अन्यः = कोई दूसरा नहीं। पन्थाः = रास्ते, मार्ग।



विद्यते = विद्यमान है, है।
अयनाय = चलने के लिये।

## (१९) सूक्त ३-

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।१९।

**अर्थ**-प्रजापति हर गर्भ में चलता है। बिना जन्म के वह कई रूपों में जन्म लेता है। केवल धीर (धैर्य वाले, योगी) ही उसकी योनि (स्रोत) देख सकते हैं। उसी के भीतर सारे विश्व (१३ प्रकार के, जो सीमाबद्ध, पूर्ण, स्वतन्त्र) तथा भुवन (१४ प्रकार की चेतन सृष्टि) स्थित हैं।

**शब्दार्थ**- (१) चरति = चलता है। गर्भे = गर्भ (गर्भों) में। अन्तः = भीतर।
अजायमानो = पैदा नहीं हुआ। बहुधा = कई बार, कई प्रकार।
विजायते = उत्पन्न, पैदा होता है।
योनि = जन्म देने का अंग, जन्म स्थान या स्रोत।
(२) धीराः = धीर (धैर्य वाला) का बहुवचन। धीर की परिभाषा है कि वह विपरीत स्थितियों में सन्तुलित रहता है, मोहित नहीं होता, सुख-दुःख आदि में सम भाव हो-
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।१३।
यं हि नव्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।१५। (गीता, अध्याय २)
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः। (गीता, १४/२४)
(३) तस्मिन् = उसमें। ह = ही, निश्चित रूप से।
तस्थु = स्थित, स्थापित।
(४) **भुवनानि** = सभी भुवन, १४ प्रकार के जीव या भूत।
चतुर्दशविधो भूतसर्गः (सांख्य तत्त्व समास, १८)
सांख्य कारिका ५३ के अनुसार-
अष्टविकल्पो देवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधाभवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिक सर्गः।

अर्थात् १४ भौतिक सृष्टि हैं- ८ देवयोनि+ ५ तिर्यक् + १ मनुष्य।
देवयोनि-ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितृयोनि, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच।
तिर्यक् सृष्टि-पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, स्थावर (वृक्ष आदि)

(५) **विश्व**-सूक्ष्म कलिल (cell) भी एक विश्व जो जो परिवेष्टित (सीमाबद्ध), चेतन कर्त्ता (परस्पर का सम्बन्ध) हो तथा पूर्ण हो-

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये, विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।(श्वेताश्वतर उप. ४/१४)

मनुष्य से छोटे विश्व बालाग्र (कोषिका, कलिल) से आरम्भ कर क्रमशः १-१ लाख भाग छोटे हैं-जीव (अणु), कुण्डलिनी आदि ७ स्तरों तक-

वालाग्र शतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।
तस्य भागस्य भागार्द्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम् ।। (ध्यानविन्दु उपनिषद ४)
वालाग्र शतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते। (श्वेताश्वतर उपनिषद् ५/९)

कुण्डलिनी-एतस्या मध्यदेशे विलसति ... कोट्यादित्य प्रकाशां भिुवनजननी कोटिभागैकरूपा। केशाग्रातिगुह्या ...। सा षोडशी शुद्धा शतधा भागैकरूपा परा। (षट्चक्र निरूपण, ७, ९)

सबसे छोटे विश्व ऋषि से क्रमशः पितर, देव-दानव, जगत् कण (चर, स्थाणु, अनुपूर्व) हुये-

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवदानवाः।
देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वणुपूर्वशः।। (मनुस्मृति ३/२०१)

अतः ७ छोटे विश्व हैं-कलिल = ($१०^{-५}$ मीटर), जीव ($१०^{-१०}$ मी.), कुण्डलिनी ($१०^{-१५}$ मी.), जगत् कण ($१०^{-२०}$ मी.), देव-दानव ($१०^{-२५}$ मी.), पितर ($१०^{-३०}$ मी.), ऋषि ($१०^{-३५}$ मी.)।

७ सूक्ष्म + १ मनुष्य + ५ विराट् विश्व = १३ विश्व

(६) **जगत्**-जगत् अव्यक्त चेतन तत्त्व है जो कार्य करता है-

जगज्जीवनं जीवनाधारभूतम्। (नारदपरिव्राजकोपनिषद् ४/५०)
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। (गीता ११/३६), जगतः शाश्वते मते। (गीता ८/१६)
जगदव्यक्तमूर्त्तिना। (गीता ९/४), जगद्विपविर्त्तते । (गीता ९/१०)

(७) मूल स्रोत को त्रिसत्य कहा गया है अर्थात् यह हर दिशा, स्थान तथा काल में



समान है। आधुनिक सृष्टि विज्ञान में यह मान्यता सभी सिद्धान्तों का मूल आधार है, जिसे पूर्ण सृष्टि सिद्धान्त (PCP = Perfect Cosmological Principle) कहा गया है-

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।(भागवत पु.१०/२/२६)

## (२०) सूक्त ४-

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।२०।

**अर्थ**-मैं उस दीप्त ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ जो देवों को प्रकाश देता है तथा उनके आगे रह कर उनका हित करता है। वह देवों से भी पहले उत्पन्न हुआ।

**शब्दार्थ**-यो = जो। देवेभ्यः = देवों के, देवों को ।
आतपति = कठिन श्रम करता है, प्रकाश देता है।
देवानां = देवों का।
पुरोहित- पुर = सामने, हित = उपकार, भलाई। जो सामने रहकर हित करता है। पूजा कराने वाला, वकील, नेता, मार्गदर्शक।
पूर्वो = पहले। जातः = पैदा हुआ। नमो = नमस्कार।
रुचाय = सुन्दर या चमकदार के लिये। ब्रह्मये = ब्रह्म के लिये।

## (२१) सूक्त ५-

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा आसन् वशे।२१।

**अर्थ**-तेजरूप ब्रह्म से उत्पन्न देवों ने सर्वप्रथम कहा कि जो भी ब्रह्म को जानता है, सभी देव उसी के वश में रहते हैं।

**शब्दार्थ**-रुचं ब्राह्मं =तेजस्वी ब्रह्म का।
जनयन्तो = उत्पन्न हो रहे। तद् अब्रुवन्-कहा कि।
यस्तु = जो भी। एवम् = इसे।
ब्राह्मण = पुरुष के मुख से उत्पन्न वर्ण, समाज में मुख्य, जो ब्रह्म को जानता है।
विद्यात् =जाने, जानता है।
वशे= वश में।

## (२२) सूक्त ६-

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्व लोकं म इषाण।२२।

**अर्थ**-श्री तथा लक्ष्मी तुहारी पत्नी हैं, दिन-रात तुम्हारे पार्श्व हैं, नक्षत्र रूप (शरीर या आकार) हैं, अश्विन् ( भूमि-आकाश का जोड़ा) तुम्हारा खुला मुंह है। मुझे इच्छित वस्तु, संसार का सुख दो तथा अपने लोक में ले चलो।

**शब्दार्थ**-(१) **श्री, लक्ष्मी**-दोनों का अर्थ धन-सम्पत्ति है। श्री उसका अदृश्य रूप है, जैसे शान्ति, स्मृति, मेधा, क्षमा, धृति, भूति आदि-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। (गीता १८/७८)
कीर्त्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। (गीता १०/३४)
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः।७८।
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मसुख-क्षान्ति श्री-धृति-स्मृति-कीर्तिभिः।१३२।
(विष्णु सहस्रनाम, महाभारत-अनुशासन पर्व, अध्याय १४९)

श्री की व्युत्पत्ति-सभी जिसका आश्रय लें, जिससे श्री या शोभा बढ़ती है (सम्पत्ति आदि), जो निरपेक्ष भाव से हरि के आश्रय में है, जो समुद्र मन्थन से उसकी श्री के रूप में प्रकट हुयी, तथा जो स्वयं हरि की श्री हैं। लक्ष्मी के अर्थ-लोग जिसे देखते हैं (लक्ष दर्शनाङ्कनयोः १०/५) वह सौन्दर्य या लक्ष्मी, लोग या हरि जिसकी अभिलाषा करें, वह लक्ष्मी-

यया जनः सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः। श्रीयते यया सा श्रीः सम्पदित्यर्थः। ययापेक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः सौन्दर्यमित्यर्थः। सर्वानैरपेक्ष्येण श्रयते हरिं या सा श्रीः क्षीरसमुद्रमन्थनादाविर्भूता भगवती श्रीः। यद्वा श्रीयते श्रीहरिणामपि सा श्रीः। तदाश्रयणादेव श्रीयते सर्वैर्गुणैः सौन्दर्यमाधुर्यादिभिः या सा श्रीः। लक्ष्यते दृश्यते सर्वैर्या सा लक्ष्मीः शोभा। अथवा लष्यतेऽभिलष्यते सर्वैर्या सा लक्ष्मीः। यद्वा लष्यते हरिणा या सा लक्ष्मीः।

(२) **अहोरात्रि**-अहः = दिन, रात्रि = रात। ये परिवर्तन की २ दिशायें हैं। अव्यक्त



स्रोत से व्यक्त विश्व का निर्माण काल ब्रह्मा का दिन है। विश्व का वापस उसी अव्यक्त में लीन होना ब्रह्मा की रात्रि है। ये दिन तथा रात्रि-दोनों १००० युग के हैं (गीता, अध्याय ८)-

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।१७।
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वे प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।१८।

निर्माण तथा लय (या क्षय) का क्रम दर्श-पूर्णमास भी कहा गया है। दर्श का अर्थ है शुक्ल पक्ष के आरम्भ में चन्द्र का दर्शन, जिसे अंग्रेजी में नया चन्द्र (new moon) कहते हैं। शुक्ल पक्ष चन्द्र के प्रकाशित भाग या कला का क्रमशः विकास है। इसकी पूर्णता पूर्णमासी को होती है-अतः किसी भी वृद्धि का क्रम दर्श से पूर्णमास जैसा है। इसका विपरीत पूर्णमास से दर्श तक ह्रास क्रम है जिसे कृष्ण पक्ष कहते हैं। इन विपरीत क्रियाओं को ईशावास्योपनिषद् में सम्भूति (निर्माण) तथा असम्भूति (विनाश) कहा गया है -

अन्धं तमःप्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः।१२।
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।१३।
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ सह।विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।१४।

यही सांख्य दर्शन में सञ्चर (आगे की गति) प्रति-सञ्चर (विपरीत गति) है।

सृष्टि-प्रलय का विराट् युग या सञ्चर-प्रतिसञ्चर की अदृश्य क्रिया समय माप का आधार नहीं है। हम सूर्य की गति से समय की माप करते हैं, जो पृथ्वी से दीखती है। पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के कारण हर स्थान के क्षितिज पर पूर्व दिशा में सूर्य का उदय होता है तथा पश्चिम की तरफ बढ़ते हुये पश्चिम क्षितिज में अस्त (क्षितिज से नीचे) हो जाता है। कुछ काल तक अस्त रहने के बाद पुनः पूर्व क्षितिज में उसका उदय होता है। यह अहोरात्रि (दिन-रात) का चक्र है, जिसे २४ घण्टा य ६० दण्ड कहते हैं। पृथ्वी के कक्षा भ्रमण के कारण, एक वार्षिक गति है। पृथ्वी का अक्ष कक्षा पर लम्ब नहीं है, वह झुका हुआ है। इसका मान २५° से २२.५° तक ४१००० वर्ष के चक्र में बदलता है। अभी यह प्रायः २३.५° है। इसके कारण जब अक्ष का झुकाव सूर्य की तरफ होता (२३ जून को)है तो सूर्य २३.५° उत्तर कर्क रेखा पर लम्ब दीखता है। जब अक्ष सूर्य के विपरीत (२२ दिसम्बर को) हो तब वह २३.५° दक्षिण अक्षांश (मकर रेखा) पर लम्ब होता है। विक्रम संवत् के आरम्भ में कर्क रेखा पर लम्ब होने के समय सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता था तथा मकर रेखा पर लम्ब होने पर मकर

राशि में। कर्क से मकर की गति दक्षिणायन (दक्षिण दिशा मे) तथा मकर से कर्क की गति उत्तरायण है। दोनों ६-६ मास की हैं। दक्षिणायन गति के आरम्भ में वर्षा होती है, अत: पूरे चक्र को वर्ष कहा जाता है। पहले जब असुरों का प्रभुत्व था तब दक्षिणायन से वर्ष आरम्भ होता था, अत: इसे असुरों का दिन कहते थे या देवों की रात्रि। उत्तरी गोलार्ध में यह दिन मान घटने (या रात्रि) बढ़ने) का समय है, अत: यह रात्रि है। असुरों के दक्षिणी गोलार्ध में इस समय रात्रि मान बढ़ता है, अत: यह रात्रि है। इस चक्र को भी दिन-रात, शुक्ल-कृष्ण, अग्नि-धूम कहा गया है-

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।२४।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।२५।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।२६। (गीता, अध्याय ८)

(३) **नक्षत्र**-इसके २ शाब्दिक अर्थ है-१. क्षि निवासगत्योः (६/११६)। जो तारा या प्रकाशित पिण्ड पृथ्वी से इतनी दूर है कि उसकी गति का अनुभव नहीं होता, वह नक्षत्र= स्थिर है। २. नक्षगतौ (१/४४२)=समीप जाना या पहुंचना। स्थिर तारों की तुलना में चन्द्र तथा ग्रहों की गति दीखती है। प्रति दिन चन्द्रमा तारों के एक समूह के निकट होता है जिनका क्षेत्र उसकी दैनिक गति के बराबर है। हर दिन चन्द्र एक नक्षत्र के साथ रहने (nexus)के कारण वे नक्षत्र हैं।

आकाश में ४ प्रकार के नक्षत्र हैं-

१. $१०^{११}$ आकाशगंगा का समूह, जो विन्दुमात्र दीखते है।

२. हमारी आकाशगंगा में $१०^{११}$ त।रा।

३. सूर्य से ६० गुणा दूरी (६० ज्योतिषीय इकाई) पर उसकी परिक्रमा करते ६०००० बालखिल्य जिनका आकार अंगुष्ठ है। यहां अंगुष्ठ का अर्थ १ अंगुल है। पुरुष की माप ९६ अंगुल है। आकाश में पृथ्वी ही मापदण्ड यह पुरुष है। उसका व्यास १२,८०० कि.मी. का ९६ भाग = १३५ कि.मी. या उससे अधिक बालखिल्य का व्यास होगा।

४. चन्द्र या ग्रहों की कक्षा के मार्ग क्रान्तिवृत्त (zodiac) के क्षेत्र जहां चन्द्र १ दिन रहता है। इन क्षेत्रों की पहचान तारों के एक समूह से होती है जिसे नक्षत्र कहते हैं।

आकाश में विश्व का यही रूप दीखता है, अत: नक्षत्र को प्रजापति का शरीर कहा



गया है।

(४) **अश्विनौ**-अश्विन = जोड़ा, युग्म। आकाश में फैली उर्जा से सृष्टि होती है अत: वह पिता है। पृथ्वी पर यह निर्माण कार्य होता है, अत: यह माता है। माता-पिता रूप में पृथ्वी-आकाश हैं। निर्माण का स्रोत मुख है, अत: इसके २ छोरों को प्रजापति का फैला हुआ मुंह कहा गया है। अन्त में इसी स्रोत में लय भी होता है, अत: उसे भी व्यात्तानन (फैला मुंह) कहा गया है-

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्। (गीता ११/२४)

आकाश में अश्विनी नक्षत्र से राशि-चक्र (या वर्ष) का आरम्भ तथा पिछले का अन्त भी होता है। दोनों वर्ष का युग्म होने से यह अश्विनी है। प्राकृतिक वर्ष का आरम्भ वर्षा ऋतु से है जब सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र में जाता है। इसके देवता अदिति नक्षत्र से वर्ष का आरम्भ तथा अन्त दोनों होता है-अत: संवत्सर से अदिति हुआ तथा पुन: अदिति से संवत्सर-

अदितिर्द्यौः अदितिः अन्तरिक्षम्, अदितिः माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातम् अदितिर्जनित्वम्।। (ऋक् १/१८९/१०, अथर्व ७/६/१, वा. यजु. २५/२३, तैत्तिरीय आरण्यक १/१३/२)

मनुष्य शरीर में नाक के २ छिद्रों से श्वास का आवागमन होता है, उसे भी अश्विन या नासिक्य कहते हैं।

(५) ईष्णन् = इच्छित, प्रेरित। ईषाण =प्रेरणा, देना। मे = मुझे।

मे +ईषाण = म ईषाण

(६) **श्रीजगन्नाथ**-यह श्री जगन्नाथ की विधियों का वर्णन है। श्री-लक्ष्मी को विमला-कमला कहते हैं। जो मल रूप में दीखता है, वह कमला है। इसी अर्थ में धन को कर का मल या हाथ का मैल कहते हैं। सूर्य की उत्तरायण-दक्षिणायन गति उनके पार्श्व हैं। जब वह गति बदल कर दक्षिणायन में चलते हैं, वह जगन्नाथ का पार्श्व-परिवर्तन है। उस समय रथ-यात्रा होती है। उनका नक्षत्र रूपी शरीर ही सुदर्शन चक्र है। उनकी गोल आंखे सूर्य चन्द्र हैं। वह ६ प्रकार से दारु ब्रह्म हैं-वृक्ष की तरह निरपेक्ष दर्शक, सृष्टि पर्वों का क्रम, संकल्प-किया-फल का चक्र, निर्माण की सामग्री, सदा बढ़ने वाले तथा फलदाता हैं। उसी दारु की उपासना संसार सागर से पार करती है-

अदो यद्दारुः प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्। (ऋक् १०/१५५/३)

## अध्याय ४

# श्री सूक्त तथा पूजाविधि

**(१) पुरुष की १६ कला**-पुरुष सूक्त की १६ ऋचायें पुरुष की १६ कला हैं। इनका विविध रूपों में वर्णन है-

षोडश कलं वा इदं सर्वम्। (शतपथ ब्राह्मण १३/२/२/१३)
षोडशकलः प्रजापतिः। (शतपथ ब्राह्मण ७/२/२/१७)
षोडशकला देवाः। (जैमिनीय ब्राह्मण १/२७)
षोडशकलो वै चन्द्रमाः। (षड्विंश ब्राह्मण ४/६)
स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः। (शतपथ ब्राह्मण १४/४/३/२२)
षोशडकलो वै पुरुषः। (जैमिनीय ब्राह्मण १/१३१, ३३१)
षोडशकलं वै ब्रह्म। (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४/११/४/२)

(१) **प्रश्नोपनिषद् की १६ कला**-प्रश्नोपनिषद् (६/४) के अनुसार पुरुष की १६ कलायें हैं-१. प्राण, २. श्रद्धा, ३. आकाश, ४. वायु, ५. ज्योति = अग्नि, ६. जल, ७. पृथिवी, ८. इन्द्रिय, ९. मन, १०. अन्न, ११. वीर्य. १२, तप, १३. मन्त्र, १४. कर्म, १५. लोक, १६. नाम।

(२) **जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण**-जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४/११/४/२) में ये कलायें हैं-सत्-असत्, असत्-सत्, वाक्-मन, मन-वाक्, चक्षु-श्रोत्र, श्रोत्र-चक्षु, श्रद्धा-तप, तप-श्रद्धा।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (१/५/१-३) में प्रजापति की १६ व्याकृति (रूपान्तर) दी गयी है-१. भद्रम्, २. समाप्ति, ३. आभूति, ४. सम्भूति, ५. भूत, ६. सर्व, ७. रूप, ८. अपरिमित, ९. श्री, १०. यश, ११. नाम, १२. अग्र, १३. सजाता, १४. पय, १५. महीषा, १६. रस।

(३) **बृहदारण्यक उपनिषद्**-बृहदारण्यक उपनिषद् (३/१/५/३) में मन की १६ कलायें हैं-१. काम, २. संकल्प, ३. विचिकित्सा, ४. श्रद्धा, ५. अश्रद्धा, ६. धृति, ७. अधृति, ८. ह्रीः, ९. धीः, १०. भीः। प्राण की ५ कला-११. प्राण, १२. अपान, १३. व्यान, १४. उदान, १५. समान। वाक् की केवल १ कला है-शब्दमयी।

(४) **शतपथ ब्राह्मण**-शतपथ ब्राह्मण (१०/४/१/१७) में शरीर की अष्ट धातुओं में प्रत्येक के २-२ अक्षर मान कर १६ कलायें गिनी हैं-१. सोम, २. त्वक्,



३. असृक्, ४. मांस, ५. स्नायु, ६. अस्थि, ७. मेद, ८. मज्जा। प्रत्येक की २-२ कला के कई अर्थ हो सकते हैं-आरम्भ तथा अन्त, स्रोत-फल, स्थिति-क्रिया।

(५) **छान्दोग्य उपनिषद्**-छान्दोग्य उपनिषद् (४/५/८) में चतुष्पाद ब्रह्म के प्रति पाद की ४-४ कलायें कही हैं-

(क) प्रकाशवान्-१. प्राची, २. प्रतीची, ३. दक्षिणा, ४. उदीची।
(ख) अनन्तवान्-१. पृथिवी, २. अन्तरिक्ष, ३. द्यौ, ४. समुद्र।
(ग) ज्योतिष्मान्-१. अग्नि, २. सूर्य, ३. चन्द्र, ४. विद्युत्।
(घ) आयतनवान्-१. प्राण, २. चक्षु, ३. श्रोत्र, ४. मन।

(६) **पुरुष सूक्त के शब्द**- पुरुष सूक्त की हर ऋचा के विशेष शब्दों के आधार पर श्रीमती कुसुमलता आर्य ने अपने पुरुष सूक्त में ये कलायें मानी हैं- १. कामना, २. ईक्षण, ३. तप, ४. विभुता, ५. देशातीत-कलातीत, ६. ईशत्व, ७. महिमा, ८. ज्यायान्, ९. विक्रम, १०. अत्यरिच्यत, ११. अग्र-जातम्, १२. सर्वहुत्, १३. सम्भरण, १४. ज्ञानमयी, १५. यज्ञमयी, १६. आनन्दमयी।

(७) **चतुष्पाद पुरुष की कलायें**-गीता के अनुसार पुरुष के ४ पाद हैं-क्षर, अक्षर, अव्यय, परात्पर। इसमें परात्पर अव्यक्त तथा वर्णन के परे है, अतः उसकी १ ही कला है-वर्णनातीत। बाकी ३ पादों की ५-५ कला हैं, अतः कुल १६ कलायें होती हैं। अध्याय २ के (११) में ईश्वर प्रजापति की १६ कलायें तथा (१३) में विकार प्रजापति र् १६ सर्ग दिये गये हैं। १६ कलायें हैं-

अव्यय पुरुष-आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक्।

अक्षर पुरुष-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम, अग्नि-ये क्षर विश्व के ५ पर्वों के देवता या क्रिया रूप हैं।

क्षर पुरुष- स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र, भू मण्डल।

**(२) सृष्टि क्रम**-पुरुष अर्थात् विश्व की रचना तथा उसके पालनके १६ क्रम इस सूक्त में हैं। उसके बाद यजुर्वेद अध्याय ३१ की ६ ऋचायें और भी हैं जिन्हें उत्तर-नारायण सूक्त या अनुवाक् कहा गया है। नर अर्थात् पुरुष से नार हुये, उसी में जिसका अयन (घर या गति) है, वह नारायण है-

आपो नारा इति प्रोक्त आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।
(मनुस्मृति १/१०, विष्णु पुराण १/४/६)

आपो नरस्य सूनुत्वात् नारा इति ह कीर्तिता:।
विष्णोस्तास्त्वालयं पूर्वं तेन नारायणं स्मृतम्। ३६।
आपो ह्यायतनं विष्णो: स चा सावम्भसां पति:।
तस्मादप्सु स इत्येवं नारायणमघापहम्।४४। (नारद पुराण, उत्तर, अध्याय ५६)
आपो नारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभि:।
अयनं तस्य ता आपस्तेन नारायण: स्मृत:।।(भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व ७७/१७)

सृष्टि के बाद सभी भूतों में रस-रूप (नार) से व्याप्त नारायण के ६ ऐश्वर्य कहे जाते हैं। उसकी व्याख्या के लिये ६ सूक्त हैं। इस अर्थ में पुरुष को भी षडङ्ग कहा गया हैं-
षड्विधो वै पुरुष: षडङ्ग:। (ऐतरेय ब्राह्मण २/३९)
पुरुष एव षष्ठमह:। (कौषीतकि ब्राह्मण २३/४)
पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच। (गोपथ पूर्व ५/११, शतपथ १२/३/४/१)

पुरुष सूक्त की व्याख्या के अनुसार सृष्टि का क्रम है-
(१) सहस्र-स्रोत, किया तथा फल रूप में अनन्त है।
(२) स्थूल रूप-इससे आरम्भ कर उसका ज्ञान।
(३) चतुष्पाद पुरुष के १ पाद से सृष्टि।
(४) अमृत ३ पाद आकाश में, निर्मित विश्व में व्याप्त।
(५) विराट् दृश्य रूप तथा उनके अधिपूरुष।
(६) विरल (गैस-घृत), तरल (द्रव-मधु) तथा ठोस (दधि) रूप- वायव्य-आरण्य-ग्राम्य प्रकार के ७-७ पशु, जिनसे कार्य या उत्पादन होता है।
(७) सर्वहुत यज्ञ द्वारा ऋक् (मूर्त्ति) तथा उसका क्षेत्र (साम)। उनका आधार (अथर्व) बनने के बाद यजु (यज्ञ) चलता रहता है।
(८) गति के लिये शक्ति (अश्व), यज्ञ का स्थान तथा साधन (गौ), समष्टि अव्यय (अज), सीधी क्रिया (अवि)
(९) यज्ञ स्थान से बाधक या अनुपयोगी पदार्थ की सफाई-देव (निर्माता प्राण), साध्य (विधि) ऋषि (ज्ञान तथा कार्य परम्परा)।
(१०) प्रश्न तथा (११) उत्तर-सृष्टि के ४ वर्ण या प्रकार-ब्राह्मण (मुख या स्रोत) क्षत्रिय (रक्षक), वैश्य (पालक) शूद्र (कार्य में दक्षता)।
(१२) आकाश में चन्द्र, सूर्य, वायु, प्राण, अग्नि तथा उनका मनुष्य रूप।
(१३) आकाश में नाभि (केन्द्र), सिर, मध्य भाग, पद, कान, लोक-उनके मनुष्य



रूप।
(१४) ऋतु या ३ प्रकार की स्थितियों द्वारा निर्माण।
(१५) ७ परिधि (लोक या सीमा) तथा ३X७ समिधा (निर्माण सामग्री)।
(१६) यज्ञ द्वारा यज्ञ का साधन-परस्पर सम्बन्ध।

नारायण रूप-
(१) अप् या नार से उत्पत्ति तथा उसका धारण।
(२) अनन्त रूप के ज्ञान से मृत्यु पर विजय।
(३) हर निर्माण के भीतर प्रजापति की क्रिया।
(४) देवों को शक्ति देने वाला।
(५) ब्रह्म या उसके ज्ञाता के अधीन देव।
(६) ब्रह्म द्वारा रचित सम्पत्ति के दृश्य अदृश्य रूप-उसके द्वारा मुक्ति।

**(३) वैदिक सृष्टि विज्ञान**-ब्रह्म या विश्व एक है, किन्तु एकत्व परात्पर रूप है जिसका कोई अनुभव या वर्णन नहीं हो सकता। जिसमें कोई भेद हो वही दीख सकता है। हमारे ज्ञान का मूल आधार ब्रह्म का एकत्व ही है। इसका अर्थ है कि सभी विज्ञानों के नियम हर स्थान, हर दिशा तथा हर समय समान हैं। इसका अनुभव किसी भी प्रयोग से नहीं हो सकता पर इसे मान कर ही हम विज्ञान के नियम बनाते हैं। हर मनुष्य का शरीर एक जैसा है, अत: एक प्रकार का भोजन या दवा उनके लिये जरूरी है। भाषा का प्रयोग भी तभी हो सकता है जब सबके लिये शब्दों तथा वाक्यों का एक ही अर्थ हो। किन्तु विश्व के निर्माण के लिये २ प्रकार के विपरीत तत्त्वों का मिलन तथा क्रिया जरूरी है। इन्हें पुरुष-स्त्री (श्री), पुरुष-प्रकृति, अग्नि सोम, अन्न-अन्नाद, भृगु-अङ्गिरा आदि कहा गया है।

निर्माण के लिये पदार्थ ३ प्रकार के हैं जिन्हें प्रकृति के ३ गुण कहा जाता है। पुरुष-स्त्री के अलग अलग रूप हैं। उनके मिलित रूप से निर्माण या यज्ञ होता है। अत: ३ प्रकार के सिद्धान्त हुये-(१) पुरुष- अर्थात् पुरों की रचना। इस प्रसंग में भी उनकी विविधता तथा पालन दिखाने के लिये श्री तथा यज्ञ का वर्णन हुआ है। (२) श्री-अर्थात् क्षेत्र, जो पुरुष के कार्य का आधार है। (३) यज्ञ- यह निर्माण या पुराने वस्तुओं के मिलन द्वारा उनका रूपान्तर है।

पुरुष सिद्धान्त के अनुसार विश्व के १३ स्तर हैं, कालमैन सिद्धान्त के अनुसार उनका अनन्त क्रम है, पर यहां १३ हैं। मनुष्य से बड़े विश्व क्रमश: कोटि-कोटि गुणा बड़े

हैं-पृथ्वी, सौर मण्डल, आकाश-गंगा, तथा स्वयम्भू। इसी में सौर मण्डल का हमारे निकट का भाग चान्द्र-मण्डल हमारे जीवन के लिये जरूरी है, अतः यह भी विश्व है। मनुष्य से छोटे ७ विश्व क्रमशः लक्ष-लक्ष भाग छोटे हैं-कलिल, अणु, अणु की नाभि, मूल कण, देव-दानव प्राण, पितर, ऋषि। मनुष्य से आरम्भ कर विश्व ५ हैं पर उनका परस्पर अनुपात $१०^७$ है । ७ छोटे विश्वों का अनुपात ५ (१० के घात में) है।

| | बड़े विश्व | छोटे विश्व |
|---|---|---|
| विश्व क्रम- | ५ | ७ |
| अनुपात (१० का घात) | ७ | ५ |

यह उत्क्रम समानता १० के घात में है, अतः विश्व १० आयाम का होना चाहिये। चन्द्र मण्डल को मिलाकर १३ विश्व हुये, अतः विश्व शब्द १३ संख्या का सूचक है।

**श्री सिद्धान्त**-विश्व के १० आयाम हैं-

आकाश के ३ आयाम-(१) रेखा, (२) क्षेत्र (पृष्ठ), (३) आयतन (स्तोम)।

(४) पदार्थ तथा (५) काल को मिलाकर ५ मूल इकाइयां भौतिक विज्ञान के लिये पर्याप्त हैं।

इसके बाद चेतना के ५ स्तर हैं, जो चिति (चयन, क्रमबद्ध) करते है-

(६) चेतना-अपने आप सभी वस्तुयें बिखर जाती हैं, उनको विशेष स्थान तथा क्रम में लगाने वाला चेतना है।

(७) ऋषि- यह २ पिण्डों के बीच का सम्बन्ध है।

(८) नाग या वृत्र- यह वस्तुओं को सीमा में बान्धता है।

(९) रन्ध्र-(कमी) पदार्थ या उर्जा के घनत्व में जहां कमी होती है, उसे पूर्ण करने के लिये परिवर्तन होते हैं। यह ९वां आयाम नये निर्माण का कारण है, अतः ९, नया- दोनों अर्थ में नव शब्द का प्रयोग है।

(१०) रस या आनन्द-सर्वव्यापी चेतन तत्त्व रस है जो विश्व का मूल कारण है। इसे पाकर आनन्द होता है, अतः इसे आनन्द भी कहते हैं।

**यज्ञ सिद्धान्त** के बारे में पुरुष सूक्त ६, १६ की व्याख्या में विस्तार से कहा गया है। विश्व के बारे में पूरी तरह समझने के लिये पुरुष सूक्त के साथ श्री-सूक्त भी जानना जरूरी है। यह ऋग्वेद के परिशिष्ट (खिल) भाग के द्वितीय अध्याय का छठा खिल सूक्त है। यह मण्डल ५ के बाद पठनीय है। इसका मूल पाठ तथा संक्षिप्त अर्थ दिया जा रहा है।



## (४) श्री सूक्त-

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।१ ।

पाठभेद-(१) स्रजम्-लक्ष्मी तन्त्र, (२) ममा-काशीकर सम्पादित।

**अर्थ**-सुनहरे एवं पीले वर्णवाली, सुवर्ण पुष्पों एवं चान्दी के पुष्पों की मालायें पहनी हुयीं, चन्द्र सी आह्लादक, सुवर्णमय देहवाली, लक्ष्मी को , हे सर्वज्ञ अग्निदेव! मेरे पास लाओ-भेजो।

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीं ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।२ ।

पाठभेद-(१) लक्ष्मीमलप-काशीकर, संस्कार भास्कर, (२) गामश्वान्-काशीकर। (३) लक्ष्मी तन्त्र में अनपगामिनीम् है पर बाद में अनपायिनीम् पाठ का प्रचलन लगता है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में लिखा है-रामभगति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि अनपायनी।

**अर्थ**-हे सर्वज्ञ अग्निदेव! स्थिर एवं अविनाशी लक्ष्मी को मेरे पास बुलाइये, जिसके आने के बाद मैं सोना, चान्दी, गाएं, घोड़े आदि पशु समूह और अनुकूल पुत्र, हितैषी मित्र, निष्ठावान् दास आदि को प्राप्त करूँ।

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद प्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।३ ।

पाठभेद-(१) अश्वपूर्वाम्-विद्यारण्य। अश्वपूर्णाम्-काशीकर, पृथ्वीधराचार्य। (२) नादप्रमोदिनीम्-काशीकर, संस्कार भास्कर। नादविनादिनीम् (लक्ष्मीतन्त्र)। (३) देवीर्जुषताम्-काशीकर, पृथ्वीधराचार्य, संस्कार भास्कर।

**अर्थ**-जिसके आगे घोड़े दौड़ रहे हैं, हाथियों की चिग्घाड़ से जिसकी भव्यता प्रतीत होती है, और जो रथ के मध्य भाग में विराजमान हैं, ऐसी देदीप्यमान (सेनारूपा) राजलक्ष्मी को मैं बुलाता हूँ, जो देवी मुझ पर प्रीति करे, मेरा सेवन करें, मेरे घर सप्रेम रहें।

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।

पाठभेद-(१) कां सोस्मितां-लक्ष्मी तन्त्र। कांस्यास्मि तां-ऋग्। (२) प्रवारा-ऋग्। प्राकारा-काशीकर।

**अर्थ**-वाणी एवं मन से अनिर्वचनीय स्वरूपवाली, मन्दस्मित वाली, सुनहरा रंग वाली (अथवा सुवर्ण स्वरूपा), स्नेहपूर्ण, चिन्तातुर, शाश्वत तृप्त, अपने भक्त को चिरन्तन तृप्ति देनेवाली, कमल में स्थित एवं कमल जैसी कान्तिवाली लक्ष्मी देवी को यहाँ अपने पास बुलाता हूँ।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।५।

पाठभेद-(१) पद्मनेमिं-ऋग्। पद्मनेमीं-ऋग्, लक्ष्मीतन्त्र, संस्कार भास्कर। (२) शरणं प्रपद्ये-ऋग्। (३) अलक्ष्मीर्मे-ऋग्। प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे-विद्यारण्य। (४) वृणोमि-ऋग्। (५) प्रभासाम्-लक्ष्मी तन्त्र। (६) यशसाम्-लक्ष्मी तन्त्र।

**अर्थ**-मैं यहां अत्यन्त कान्तिमान्, १४ लोकों में कीर्ति से देदीप्यमान (प्रकाशमान), देवों से सेवित, उदार, हाथ में कमल लिये, एवं चन्द्रमा जैसी प्रकाशित (या आह्लादक), उस श्री देवी की शरण में जाता हूँ, जो मेरी अलक्ष्मी दूर करे। (हे जननी!) मैं आपका वरण करता हूँ (अर्थात् शरण में आया हूँ)।

आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तववृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु ममान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः।६।

पाठभेद-(१) तस्य, यस्य-काशीकर। (२) मायान्तरा, मा या अन्तरा। ममान्तरा-काशीकर।

**अर्थ**-हे सूर्य सी तेजस्विनी लक्ष्मी माता! आपकी तपस्या के द्वारा आपके हाथ से आपके निवास योग्य बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ है। उस वृक्ष के फल, आपके अनुग्रह से मेरे भीतरी अज्ञान एवं उसके कार्यजात और बाह्य (दारिद्र्य आदि) अलक्ष्मियों को दूर करें।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।७।

पाठभेद-(१) भूतोऽस्मि राष्ट्रे, भूतो सुराष्ट्रे-काशीकर। (२) कीर्तिमृद्धिं, कीर्तिं वृद्धिं। (३) कीर्तिं वृद्धिं ददातु की जगह श्रीः श्रद्धां ददातु-काशीकर। लक्ष्मी तन्त्र में ऋद्धिं।



**अर्थ**-कुबेर और कीर्ति, चिन्तमणि के साथ मेरे पास आयें (अर्थात् मुझे मिलें)। मैं इस राष्ट्र में उत्पन्न हुआ हूँ। वे (कुबेर) मुझे कीर्ति और ऋद्धि दें।

क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।८।

पाठभेद-(१)क्षुत्पिपासामलां-विद्यारण्य, काशीकर। क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठामलक्ष्मीं-ऋग्-काशीकर। क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठामलक्ष्मीर्-काशीकर। क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर्-काशीकर, श्रीविद्यार्णव, संस्कार भास्कर। क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीर्-काशीकर। (२) गृहात् -के बदले-पाप्मानं-तैत्तिरीय आरण्यक, काशीकर।

**अर्थ**-भूख प्यास से मलिन बड़ी बहन अलक्ष्मी को मैं नष्ट करता हूँ। (हे लक्ष्मी देवी, आप) सर्व असम्पत्ति और असमृद्धि को मेरे घर से उठाकर फेंक दें।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।९।

पाठभेद-(१) नहीं है।

**अर्थ**-सुगन्धित, अपराजेय, नित्यसमृद्ध, गाय-अश्व आदि बहुत पशुओं से समृद्ध और सभी भूतों की स्वामिनी लक्ष्मी जी को मैं यहां बुलाता हूँ।

मनसः काममाकूतं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।१०।

पाठभेद-(१) माकूतिं, माकूतं-काशीकर। मन्नस्य, मन्त्रं च-काशीकर। मन्यस्य-संस्कार भास्कर। (मन्नस्य-वा.सहिता)

**अर्थ**-मनोरथ, संकल्प, वाणी का सत्य, पशुओं के दूध आदि, (अथवा पशुओं का समूह अथवा पशुओं के साथ आत्मीयता) और (पंचविध) अन्न हम प्राप्त करें। संपत्ति एवं यश मेरा आश्रय लें। (पृथ्वीधर के अनुसार-महामनोरथ, सन्तोष, वाणी की यथार्थता, पशुओं आदि की अधिकता, भक्ष्य भोज्य आदि अन्न और यश, जिसके द्वारा हम प्राप्त कर सकें, ऐसी लक्ष्मीदेवी मेरे समीप में रहें।)

कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।११।

पाठभेद-(१) सं भव, सं भ्रम-काशीकर, श्रीविद्यार्णव, संस्कार भास्कर। (२) मे कुले,

मे गृहे।

**अर्थ**-(लक्ष्मीजी) स्वयं अपने पुत्र कर्दम के कारण पुत्रवती हैं। इसलिये हे कर्दम! आप मेरे घर में निवास करें और (उस) कमलमालावाली माता श्रीदेवी का मेरे वंश में निवास करायें।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।

नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।१२।

पाठभेद-(१) स्रजन्तु, स्रवन्तु-ऋग्। सृजन्ति-श्रीविद्यार्णव। सृजन्तु-विद्यारण्य। (२) नी च-संस्कार भास्कर।

**अर्थ**-जल-लक्ष्मी (मेरे घर में) स्नेहपूर्ण कार्यों का सृजन करे। हे (लक्ष्मीपुत्र) चिक्लीत! आप मेरे घर में निवास करें और माता लक्ष्मी को मेरे कुल में निवास करायें।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।

चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१३।

आर्द्रां यः करिणी यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।

सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१४।

**पाठभेद**-(१) **हरनारायणभाई पण्ड्या**- आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१३।
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१४।

(२) **ऋग्वेद खिल भाग**-पक्वां पुष्करिणीं पुष्टां पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१३।
आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।१४।

(३)**श्रीविद्यार्णव तन्त्र**-आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह।१३।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह।१४।

**सूक्त १३ का अर्थ**-हे संस्कारपूर्ण अग्निदेव! दयार्द्र-स्नेहार्द्र, कमलवाली, पुष्टिप्रद,



पिंगलवर्णवाली, कमलमालाधारी, चन्द्रमण्डल निवासी, एवं सुवर्णमयी गजलक्ष्मी देवी को आप मेरे घर बुलायें।

**सूक्त १४ का अर्थ**-हे संस्कारपूर्ण अग्निदेव! दयार्द्र-स्नेहार्द्र, धर्मदण्डवाली, नियामिका, सुन्दर वर्ण वाली, रत्नजडित सुवर्ण मालावाली, सूर्य की तरह देदीप्यमान एवं सुवर्णस्वरूपा लक्ष्मी माता को मेरे पास लायें।

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।

यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।१५।

पाठभेद-मलप, प्रभूतिं, श्वाविन्देयं-संस्कार भास्कर।

**अर्थ**-हे सर्वज्ञ अग्निदेव! स्थिर एवं अविनाशी उस लक्ष्मी को (आप) मेरे पास बुलायें, जिसके आने से मुझे बहुत सुवर्ण, गायें, घोड़े, दासियां, नौकर आदि मिलें।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्य मन्वहम्।

सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।१६।

**अर्थ**-लक्ष्मी की कामनावाला श्री का उपासक पवित्र एवं प्रयत्नवान् बनकर सतत घी से हवन करे और १५ ऋचा के श्रीसूक्त का सतत जाप करे।

पद्मानने पद्मनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।

विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व।१७।

**अर्थ**-हे पद्मानने, पद्मनिवासिनी, पद्म को प्रिय (या जिसे पद्म प्रिय है), पद्मदल के समान दीर्घ (गोल) आंख वाली, विश्व को प्रिय, विश्व के मनोनुकूल-मुझे अपने पाद-पद्म में स्थान दो।

पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसम्भवे।

तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्।१८।

**अर्थ**-हे कमल मुखवाली, पद्म जंघा वाली, कमल के समान आंखवाली, तथा कमल से उत्पन्न! मैं तुझ पद्माक्षी को इसलिये भजता हूँ जिससे मुझे सौख्य (सुख-समृद्धि या मित्रता) मिले।

अश्वदायी गोदायी धनदायि महाधने।

धनं मे जुषतां देवि सर्वान्कामांश्च देहि मे।१९।

**अर्थ**-हे महाधनवाली! तुम अश्व, गाय, धन देने वाली हो। मेरे लिये धन जुटाओ तथा

सभी कामनाओं की पूर्त्ति करो।

पुत्र पौत्र धनं धान्यं हस्त्यश्वादि गवे रथम्।
प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे।२०।

**अर्थ**-(हे लक्ष्मी!) तुम सभी प्रजाओं की माता हो। (अतः) मुझे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, हाथी, घोड़ा, गाय, रथ दो, तथा दीर्घायु करो।

धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु मे।२१।

**अर्थ**-ये सभी मेरे धन हों-अग्नि, वायु, सूर्य, वसु, इन्द्र, बृहस्पति तथा वरुण।

वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः।२२।

**अर्थ**-मुझे सोमयुक्त करो, जिसका सोम धन होता है। (मेरे द्वारा) वैनतेय गरुड, वृत्रहन्त इन्द्र सोमपान करें।

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृत पुण्यानां भक्तानां श्री सूक्तं जपेत्।२३।

**अर्थ**-जो पुण्यकर्मा भक्त श्रीसूक्त का जप करता है, उसे क्रोध, मात्सर्य, लोभ या अशुभ मति नहीं होती।

सरसिज-निलये सरोज-हस्ते धवलतरांशुक गन्धमाल्यशुभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवन भूतिकरी प्रसीदमह्यम्।२४।

**अर्थ**-हे भगवती हरिवल्लभा! तुम कमलवन में निवास करती हो, कमल के समान हाथ हैं (या हाथ में कमल है), श्वेत वस्त्र है, तथा गन्ध माला आदि से शोभित हो। तुम मन को जानती हो तथा त्रिभुवन को ऐश्वर्य देती हो, मेरे ऊपर कृपा करो।

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधव-प्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युत-वल्लभाम्।२५।

**अर्थ**-मैं अच्युत-वल्लभा को नमस्कार करता हूँ, जो विष्णुपत्नी, क्षमा, देवी, माधवी तथा माधव की प्रिया है। वे लक्ष्मी तथा प्रिय सखी हैं (श्री या माधव की)।

महादेव्यै च विद्महे विष्णुप्त्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।२६।



**अर्थ**-मै महादेवी को जानता हूँ तथा विष्णुपत्नी के रूप में समझता हूँ। वे लक्ष्मी हमें प्रेरणा दें।

श्री वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहु पुत्र लाभं शत सम्वत्सरं दीर्घमायुः।२७।

**अर्थ**-श्री सूक्त के पाठ का फल-इससे श्री, वर्चस्व, आयुष्य, आरोग्य, सुविधा, शोभा, महीयता (ऊंचा स्थान), धन, धान्य, पशु, बहुपुत्र लाभ, १०० वर्ष की दीर्घायु मिलती है।

**(५) श्री के ५२ नाम**-(१) हिरण्य-वर्णा, (२) हरिणी, (३) सुवर्ण-स्रजा, (४) रजत-स्रजा, (५) हिरण्मयी, (६) लक्ष्मी, (७) चन्द्रा, (८) अनपगामिनी, (९) अश्व-पूर्वा, (१०) रथ-मध्या, (११) हस्ति-नाद-प्रबोधिनी, (१२) श्री, (१३) देवी, (१४) मा, (१५) का, (१६) सोस्मिता, (१७) हिरण्य-प्रकारा, (१८) आर्द्रा, (१९) ज्वलन्ती, (२०) तृप्ता, (२१) तर्पयन्ती, (२२) पद्मे-स्थिता, (२३) पद्म-वर्णा, (२४) प्रभासा, (२५) यशसा, (२६) देव-जुष्टा, (२७) उदारा, (२८) ता, (२९) पद्मिनी, (३०) ईं, (३१) आदित्य-वर्णा, (३२) कीर्ति, (३३) ऋद्धि, (३४) गन्ध-द्वारा, (३५) दुराधर्षा, (३६) नित्य-पुष्टा, (३७) करीषिणी, (३८) ईश्वरी, (३९) मनसः-कामा, (४०) वाचाम्-आकूति, (४१) सत्या, (४२) पशूनाम्-रूपा, (४३) अन्नस्य-यशसा, (४४) मातृ, (४५) पद्म-मालिनी, (४६) पुष्करिणी, (४७) यष्टि, (४८) पिङ्गला, (४९) तुष्टि, (५०) सुवर्णा, (५१) हेम-मालिनी, (५२) सूर्या।

**(६) श्रीसूक्त के कुछ विशिष्ट शब्द**-(१) **हिरण्यवर्णा**-(१) सोने के रंगवाली। (२) हिरण = हि + रण। रण में भ्रमरी की तरह नाद करने वाली। (३) निमेष-उन्मेष के बीच के अल्प समय में (हि=) स्थित होने वाली। (४) वर्णा- वर्णों की जननी-परा, मश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी का स्थान प्राप्त कर उन्हें उत्पन्न करती हैं।

(२) **हरिणी**-(१) हरित वर्ण की। (२) हलदी जैसी आभा वाली-पृथ्वी। (३) हिरणी जैसी शीघ्र गति वाली, चंचल, सुन्दर। मृगनयनी। (४) हरि की पत्नी। (५) नित्य युवती। (६) भक्ति के दबाव में बन्धने वाली। (७) मृगचर्म को ओढने या बिछाने वाली। (८) हरि के मध्यभाग के संश्लिष्ट। (९) हरि के कार्यो में लगाने वाली, या स्वयं हरि के कार्य में लगनेवाली। (१०)पाप हरने वाली।

(३) **सुवर्णरजतस्रजाम्**-(१) सोने चान्दी के फूलों या कमलों की माला पहनी हुयी।

(२) तेज रूप गहने वाली, (३) विवेक-वैराग्य रूप फूलों की माला वाली।

(क) **सुवर्णस्रजाम्**-(४) सु (शोभित) वर्णों (अकार आदि) का सर्जन करने वाली। (५) विश्व (विष्णु) का वरण करने वाली।

(ख) **रजतस्रजाम्**-(६) देवरूप मालायें लक्ष्मी जी से शोभित होती हैं।

(४) **चन्द्राम्**-(१) चन्द्र की तरह प्रकाशित, (२) चन्द्र जैसी आह्लादक, पृथ्वी। (३) चन्द्र-मुखी, (४) चन्द्र में विद्यमान चन्द्रिका, (५) चन्द्र में जैसे वृद्धि क्षय होता है उसी प्रकार लक्ष्मी जी धन देती तथा लेती भी हैं। (६) शुक्ल पक्ष की उन्नति या कृष्ण पक्ष के ह्लास से निरपेक्ष। (७) चं= घूमती हुयी, द्रा= दूर करने वाली। भक्तों के पापों को दूर करती हैं। (८) चन्द्र के समान भक्तों से द्रवित होने वाली। (९) समाधि की तुरीय अवस्था को चन्द्र की तरह भासित करने वाली। (१०) चन्द्र नाडी में स्थित। (११) चन्द्र की तरह सन्तोष कारक प्रकाश वाली। ज्ञानजन्य सन्तोष परिपूर्ण होता है। (१२) क्षीर समुद्र के मन्थन के समय जब लक्ष्मी जी उदित हुयीं तो उनकी चन्द्र नामक किरण पहले उदित हुयी। उस समय ऋषियों ने लक्ष्मी जी को चन्द्रा कहा था।

(५) **हिरण्मयी**-(१) सुनहरे रूप की, (२) सुवर्ण देह वाली, (३) धन-भाग्य से परिपूर्ण, (४) हिरण्यरेतस् शिव की हिरण्मयी शक्ति, (५) पवित्रता युक्त, (६) षड् विकार से मुक्त तैजस शरीर, (७) मूलाधार से द्वादशान्त तक लक्ष्मी हिरण्मयी रूप में उदित। (८) हिरण्यमण्डल में स्थित।

(६) **लक्ष्मी**-(१) लक्षणयुक्त, (२) लाभयुक्त, (३) शोभा सम्पत्ति रूप। (४) ज्ञान, ऐश्वर्य, सुख, आरोग्य, धन, धान्य, जय आदि लक्ष्म (चिह्न) के कारण उसे लक्ष्मी कहते हैं। (५) ब्रह्मविद्या। (६) सर्वभूतों के शुभ-अशुभ देखनेवाली (लक्ष् दर्शनांकनयोः १०/५, लक्षयति इति लक्ष्मी)। (७) श्री हरि की लक्ष्मी। (८) यह सभी प्रमिति (चेष्टा) का लक्ष्य है।(९) ल= देने वाली, लेने वाली (ला आदाने, २/५१)। क्षिप् प्रेरणे (४/१५)= दाता को प्रेरणा देनेवाली। (१०) ल = लय (स्थिति एवं संहार) में प्रकृति को प्रेरणा देने वाली। (११) अव्यक्त एवं व्यक्त सत्त्वों में स्थित होकर सदा प्रेरणा देने वाली। (१२) लक्ष्य तक पहुंचानेवाली। उसमें लीन होकर प्रेरणा देने वाली (लीङ् श्लेषणे ४/२९) (१३) क्षमा देने वाली। (१४) सज्जनों के पापों को नष्ट करने वाली। (१५) क्षम् सहने (१/३०१), मा माने (२/५५, ३/६)= भूतो को जानने वाली, सभी को नापने वाली। (१६) ऐसे विविध अर्थों को देखकर कपिल मुनि ने कहा-मा लक्षय (मेरी तरफ देखो)। इससे लक्ष्मी नाम हुआ।



(७) **जातवेद**-अग्नि का नाम। (१) जातप्रज्ञान, (२) सर्वज्ञ, (३) देवों का होता होने के कारण आवाहन क्रिया उसके अधीन है (विद्लृ लाभे ६/१४१)। (४) सन्तुष्ट अग्नि यजमान को लक्ष्मी देती है। (५) अग्निरूप परमेश्वर की उपासना से महालक्ष्मी मिलती है।

(८) **अनपगामिनी**-(१) अपगमन नहीं करने वाली अर्थात् स्थिर। (२) मुझे (मन्त्रद्रष्टा ऋषि) को छोड़कर नहीं जाने वाली।(३) भगवान को नहीं छोड़नेवाली। (४) अविनाशी ऐश्वर्य युक्त।

(९) **विभिन्न सम्पत्ति**-गाम् -गाय, यज्ञ संपत्ति। हिरण्य-स्वर्ण आदि सम्पत्ति, अश्व-घोड़े आदि वाहन। पुरुष-पुत्र, मित्र, दास आदि। हितैषी मित्र, निष्ठावान् दास।

(१०) **अश्वपूर्वा**-अश्व के पूर्व। जब लक्ष्मी आती है तब अश्व आदि सम्पत्ति हो जाती है। या अश्व जिसके पहले है। अश्व गति देने का साधन है। जब तक कर्म या श्रम नहीं किया जाय, लक्ष्मी नहीं आती। (२) इन्द्रियों को अश्व कहा गया है, उनके पूर्व रह कर उन्हें नियन्त्रित करने वाली। जितेन्द्रिय के पास ही लक्ष्मी रहती हैं। (३) नाद अभ्यास में पहले अश्व की ध्वनि सुनायी देती है। चित्तवृत्ति में सहायक।

(११) **रथमध्या**-(१) ऐसी सेना रूप जिसके मध्य भाग में रथ (वाहन) हैं। (२) रथ के मध्य में संचालन के लिये स्थित। (३) शरीर रूपी रथ की संचालक।

(१२) **हस्तिनादप्रबोधिनी**-(१) जब लक्ष्मी आती हैं, उनके आने का ज्ञान हथी के नाद से होता है। (२) हाथी के शब्द से जाग्रत होने वाली। (३) हस्तिबल में संयम से बल होता है (योग सूत्र ४/२४-बलेषु हस्तिबलादीनि)-उसमें संयम की क्रिया। हस्तिनादविनादिनी-व्योमरन्ध्र में पहुंचने पर हाथी जैसी ध्वनि होती है। हस्तिनादप्रमोदिनी-हस्तिनाद से प्रसन्न होने वाली या प्रसन्न करनेवाली।

(१३) **देवी**-(२) दीप्यमान, चमकदार। (२) दीप्ति। (३) दान आदि गुणवाली। (४) सामर्थ्य वाली। (५) देव की पत्नी, श्रीदेवी = पृथ्वी। (६) दे = देने वाली, अवि = रक्षण करने वाली।

(१४) **श्री**-(१) आश्रय करने योग्य (श्रिञ् सेवायाम् १/६३८), (२) भक्तों की वाणी सुनने वाली ( श्रु श्रवणे १/६७५), (३) सज्जनों के पाप नष्ट करने वाली (शॄ हिंसायाम् ९/१७), (४) गुणों से विश्व का विस्तार करने वाली (शॄ विस्तारे)। (५) शाश्वत शरण रूपा। (६) देव जिसे श्रद्धा (श्र) से चाहते हैं (ई = इप्सिता)। (७) श्री अक्षर के ४ खण्ड ४ प्रकार की वाणी के रूप है-श (शान्ता या परा वाक्), मूलाधार

में, र् =रन्ती (नाभि में पश्यन्ती वाक्), इ= प्रेरणी मध्यमा वाक्, अनुस्वार = बाहर गूंजती वैखरी वाक्। (८) विष्णु का आश्रय लेने वाली। (९) शक्तियों को आश्रय देने वाली। (१०) आश्रितों का पाप नाश करनेवाली, या कामना पूर्ण करने वाली (रा दाने २/५०)। (११) अपनी शक्ति से प्रकाश देने वाली या शन्तमा = मंगलरूपा। (१२) र् = रति, ई = ईप्सित, सारे विश्व की इप्सित।

(१५) **मा**-(१) मेरा। (२) माता रूप में लक्ष्मी। (३) विश्व की माप (माङ् माने २/५५, ३/६), (४) जिसमें विश्व का लय होता है। (५) सर्वव्यापी होने के कारण सभी उसे अपना (मा = मेरा) कहते हैं। (६) सभी को इधर उधर फेंकने वाली (मिञ् प्रक्षेपणे ५/४)। (७) सर्व संहारक (मीङ् हिंसायाम् ४/२७)।

(१६) **काम्**-(१) वाणी तथा मन से जिसका ज्ञान नहीं होता, (२) अव्यक्त, अमूर्त्त ब्रह्म, (३) सुख स्वरूपा, (४) चिन्मयी लक्ष्मी, जो अन्तः करण में आवाज करती है (कै शब्दे १/६५३)। (५) वाणी, वाक्य रूपा (वाग् देवी), (६) सभी वेद जिसके बारे में जिज्ञासा करते हैं- का = कौन है? (७) क = ब्रह्मा के रूप वाली। (८) कर्त्ता रूपिणी।

(१७) **सोस्मिता**-उत्तम मन्द स्मित वाली, (२) ब्रह्म (उत्) का विकास ही जिसका स्मित है। (३) जो भोगो में लिप्त नहीं है, मन्द स्मित वाला है, उसके यहां लक्ष्मी जाती है।

(१८) **हिरण्यप्राकारा**-(१) सुवर्ण के आवरण वाली, आ आकृति वाली। जिसके चारें तरफ सुवर्ण फैला है। (२) हिरण्य तेज वाली। (३) सभी प्रकार की अनुकूलता से युक्त। (४) हि = हितकारी, र = रम्य, प्राकार = प्रकृतिवाली।

(१९) **आर्द्रा**-(१) क्षीर समुद्र से उत्पन्न होने के कारण भींगी हुयी। (२) मस्तक के अधोमुख पद्म से निकलती हुयी अमृतधारा से भीगी हुयी। (३) शीतल गुणवाली, स्नेहपूर्णा। दयार्द्र। भक्त के लिये पुत्रवत् पक्षपात करने वाली। (४) दूर तक द्रवित करने वाली (आरात् द्राविणी)।

(२०) **ज्वलन्ती**-(१) प्रकाशमान, ज्योति या चैतन्य रूपा। (२) भक्त की चिन्ता से जलने वाली। (३) काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर को जलाने वाली। (४) अपनी कान्ति से जगत् को भासित करने वाली। (५) परा वाणी के रूप में शिखा रहित ज्वाला, (६) पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी रूप में ३ शिखा की ज्वाला। (७) क से म तक २५ शिखा वाली, (८) य से स तक ७ शिखा वाली। (९) ह, ल, क्ष-३ शिखा



वाली।

(२१) **तृप्ता**-(१) तृप्त या प्रीता। भक्ति, पूजा आदि से तृप्त होने वाली। (२) सदा तृप्त रहने वाली, पूर्णकाम। (३) विष्णु में प्रीति वाली।

(२२) **तर्पयन्ती**-(१) तृप्त करने वाली। मनोरथों को पूर्ण कर भक्तों को सदा तृप्त रखने वाली। (२) अपने गुणों से भगवान् विष्णु को तृप्त करने वाली तथा विष्णु के गुणों से स्वयं तृप्त होने वाली। (३) ७२ ००० नाड़ियों में प्राण का प्रवाह कर तृप्त करने वाली। (४) अन्तः करण को तृप्त करने वाली।

(२३) **पद्मे स्थिता**-(१) कमल में स्थित। (२) पानी में कमल अनासक्त रहता है, अतः लक्ष्मी अनासक्त को ही मिलती हैं। (३) कमल जैसे निर्लेप स्वभाव वाली। (४) आकाश में पृथ्वी ही पद्म है क्योंकि वह पद से उत्पन्न हुयी है, उस की भौतिक सम्पत्ति। (५) हृदय कमल में प्रकट। (६) काल रूपी पद्म का कलन करती हैं।

(२४) **पद्मवर्णा**-(१) कमल जैसी कान्ति वाली। (२) श्वेत-अरुण मिश्र रंग वाली। (३) निर्लोभी भक्त के प्रति लक्ष्मी का स्नेहपूर्ण मुख श्वेत-अरुण होता है। जीव जब शिव से मिलता है अरुण-श्वेत वर्ण का होता है। (४) लक्ष्मी आत्मतेज से ईश्वर द्वारा वर्ण वाली बनती है। (५) पद्माकार वर्णों द्वारा लक्ष्मी का शरीर शोभित है।

(२५) **प्रभासाम्**-(१) सुशोभित, (२) प्रेम रूप वैभव की आभा से सम्पन्न। (३) श्रेष्ठ ज्ञान वाली। (४) अति कान्ति वाली। (५) प्र + भासा =आकर्षक प्रकाश वाली, अन्य प्रकाश को मन्द करने वाली। (६) प्रभा + अस = प्रभाओं को फेंकने वाली। (असु क्षेपणे ४/९९) लक्ष्मी की ६ प्रभा हैं-श्रद्धा, सोम, जल, अन्न, वीर्य, हवि। इनको वह स्वर्ग, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, स्त्री, वैश्वानर अग्नि में प्रक्षिप्त करती रहती हैं।

(२६) **यशसा ज्वलन्तीम्**-(१) ज्वलन्ती का अर्थ (२०) में बताया है। कीर्ति से देदीप्यमान। (२) यशस्वी भक्तों को देखकर प्रसन्न होने वाली। (३) यशसा-विद्या, दान आदि से उत्पन्न यश का भाजन। (४) स्वयं को ६ अग्नि में विभक्त कर श्रद्धा आदि ६ हवि ग्रहण करती हैं।

(२७) **देवजुष्टाम्**-(१) देवों से सेवित, सात्विक मनुष्यों, मुमुक्षुओं द्वारा सेवित। (२) देव या विष्णु की प्रीति प्राप्त। (३) लक्ष्मी का आश्रय लेकर इन्द्रियां विषयों में आसक्त (जुष्टा) होती हैं।

(२८) **उदाराम्**-(१) सर्वव्यापी। (२) प्रगल्भ। (३) कर्तृत्व तथा विश्वास का मिश्रण

उदारता है। (४) उदार विद्या। (५) लक्ष्मी से ही महर्षियों का विज्ञान तथा मनुष्यों की शक्तियां प्रकट हुयी हैं। लक्ष्मी उन्हें उदारतापूर्वक देती हैं।

(२९) **पद्मिनीम् + ईम्**-(१) कमल-लता रूपा। (२) कमल के आकार वाली। (३) हाथ में कमल वाली। (४) कमल में बैठी हुयी। (५) पद्मनेमीं, पद्मनेमिं-पद्म रूपी नेमि या पद्म रूप की सीमा।

**ईम्**-(१) ई अक्षर लक्ष्मी का वाचक है। (३) इण् गतौ (२/३८) या ईख गतौ (१/८८), ईखि (ईङ्ख्) गतौ (१/८८) आदि के अनुसार विश्व में जितनी गति दीखती है, वह ई या लक्ष्मी है। (३) प्रत्यक्ष जगत्-ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:। (गीता १७/२३)ॐ तत् सत् = ईं ॐ श्री: । यहां तत् = ईं = जगद्-ईश-जीवात्मा का एकत्व। यह गुप्त प्रणव वेदों मे कई बार आया है-

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हि रुगिन्नु तस्मात्। (ऋक् १/१६४/३२)

यहां प्रत्यक्ष जगत् का निदर्शक ईंकार है-

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति। (ऋक् १/१६४/१०)

नेमव ग्लापयन्ति = न+ ईं +अवग्लापयन्ति-अर्थात् उस परम पुरुष को नहीं देख पाते। यह गुहा या परोक्ष अन्तरात्मा का दर्शक है -

य **ईं** चिकेत गुहा भवन्तमा य: ससाद धारामृतस्य। (ऋक् १/६७/४)

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म संमितम्। गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व मे। (तैत्तिरीय आ. १०/३४, नारायण उप. १५/१)

ईङ्काराय स्वाहा। ईङ्कृताय स्वाहा।(तैत्तिरीय सं. ७/१/१९/९)

(३०) **ताम्**-(१) यह ऊपर के ॐ-तत्-सत् में तत् का स्त्रीलिङ्ग रूप है। प्रत्यक्ष विश्व जिसका निर्देश किया जाता है। (२) जगत् का या ५ कृत्यों का विस्तार करने वाली (तनु विस्तारे ८/१) (३) जगत् का पलन करने वाली (तायृ सन्तान पालनयो: १/३२९)-इसी से ताई (बड़ी मां) हुआ है जो सन्तान जैसा पालन करे। (४) सहायक, आश्रय देने वाली या श्रद्धा का पात्र (तनु श्रद्धोपकरणयो: १०/२६६)।

(३१) **आदित्यवर्णा**-(१) सूर्य जैसे वर्णवाली। (२) तेज, यश , श्री द्वारा आदित्य को वर्ण (रंग) देने वाली। (३) आदित्य में असे क्ष तक के वर्णों के रूप में रहकर वे भूत-भविष्य के अर्थों को प्रकाशित करती हैं। (४) आदि वर्ण ॐ कार स्वरूपिणी। (५) वैखरी वाणी के रूप में प्रकट होकर कामदुधा गाय है। (६) पितृ, देव, मनुष्यों का चक्षु।



(३२) तपसोऽधिजातो **बिल्व वृक्ष:**-बिल्व के नीचे लक्ष्मी ने तपस्या की थी। या बिल्व लक्ष्मी के कर से उत्पन्न हुआ (वामन पुराण )

(३३) **कीर्ति**-(१) यश। (२) कीर्ति के अभिमानी देवता= दक्षकन्या (३) लोक में किरण बिखेने वाली (कॄ विक्षेपे ६/११८)। (४) देवसखा वायु तथा मूलाधार की वह्नि (मणि) के साथ वह द्वादशान्त कमल में पहुंचती है, अत: मुनियों ने उनकी कीर्ति गायी है।

(३४) **देवसख:**-कुबेर। जो धनी होने के साथ देवों का मित्र भी हो। कुबेर ने शंकर की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न किया था, अत: उनके मित्र हैं। जिस पर लक्ष्मी कृपा करती हैं, कुबेर उसी को धन देते हैं।

(३५) **मणिना सह**-(१) चिन्तामणि के साथ। (२) कोषाध्यक्ष मणिभद्र के साथ। (३) मूलाधारगत वह्नि।

(३६) **ऋद्धि**-(१) सभी वस्तुओं की समृद्धि। ८ ऐश्वर्य। (२) ऋद्धि की अभिमानी देवी लक्ष्मी की दासी है। ऋद्धि के ७ गुण हैं-सत्य, ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म, ज्ञान, यज्ञ। (३) वृद्धि-विष्णु के गुणों से वृद्धि। सुषुम्ना मार्ग से क्रमश: वृद्धि होती है। (४) योगियों को सम्मान देती हैं (अर्घ् पूजायाम् १/४९२)

(३७) **अलक्ष्मी**-(१) लक्ष्मी का अभाव- भूख, प्यास से मलिन, भूति, समृद्धि से वंचित। (२) लक्ष्मी की बड़ी बहन- इनका विवाह नहीं हो रहा था, अत: विष्णु छोटी बहन से विवाह नहीं कर पा रहे थे। उद्दालक ऋषि से अलक्ष्मी का विवाह करा कर उन्होंने लक्ष्मी से विवाह किया। उद्दालक के घर में अनेक विपत्तियां आयीं जिनसे दुखी होकर अलक्ष्मी को पीपल के नीचे छोड़ कर तपस्या करने चले गये। लक्ष्मीजी नारायण के साथ प्रति शनिवार को बड़ी बहन से मिलने पीपल के नीचे आती हैं। अत: शनिवार को पीपल की पूजा की जाती है।

(३८) **गन्धद्वारा**-गन्ध गुण के लक्षण वाली। सभी सुगन्धों का मूल। (२) पृथ्वी आदि ५ महाभूतों के गन्ध (रस, रूप, स्पर्श, शब्द) रूपी द्वारों से ज्ञात होने वाली।

(३९) **दुराधर्षा**-(१) अपराजेय, दु:सह, जिसे रोका नहीं जा सके। (२) शुद्ध संवित् क्रिया-रूपा नारायणी को कोई बाधित नहीं कर सकता। (३) प्रयत्न करने पर भी जिसे साथ नहीं लाया जा सके।

(४०) **नित्यपुष्टा**-(१) अन्न आदि से सदा पुष्ट। (२) सभी जीवों की पोषक सामग्री से युक्त। (३) सद्गुणों से पुष्ट। (४) नित्य शाश्वत् विष्णु से पुष्ट। (५) अपनी संवित्

चेतना से जड़ वस्तु को पुष्ट करती है।

(४१) **करीषिणी**-(१) करीष = गाय को गोबर के सूखे कण्डे। उनसे युक्त, अर्थात् गाय, अश्व आदि पशुओं से समृद्ध। (२) मोक्षोपयोगी विवेक आदि सामग्रियों वाली। (३) जिस पृथ्वी में गाय के कण्डे प्रचुर हों (पशु सम्पत्ति से भरी) वैसी भूमि चाहिये। (४) करी + इषिणी-कर्त्ता को देखने की इच्छा वाली। (५) करिन्= हाथी के ऊपर बैठ कर चलने वाली (इष् गतौ ४/२९), (६) सृष्टि करने वाली (डुकृञ् करणे ८/१०) (७) सृष्टि का अन्त करने वाली (कॄ हिंसायाम् ९/१४)।

(४२) **सर्व भूतानाम् ईश्वरीम्**-(१) सर्व भूतों की स्वामिनी। (२) सभी प्राणियों की अधिष्ठाता। (३) ईश्वरी के २ अर्थ हैं-समर्थ तथा सुन्दर । हमारे घर सुन्दर लक्ष्मी आये। लेकिन वह समर्थ नहीं हो तो उसे लोग तंग करेंगे। (४) ईश + वर-जो विष्णु के साथ रह कर वर देती है। (५) ईश + व-जो ईश तथा वनिता (आदरणीय) है। (६) श्= विनाशक। जो पापों का विनाश कर वर देती हैं।

(४३) **मनसः काममाकूतिं**-इससे मिलती पंक्ति वा. यजु (३९/४) में है-मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा। (१) सभी मनोरथों की आश्रय-स्थली। (२) भगवान् विष्णु के मन का काम स्वयं महालक्ष्मी हैं।

आकूति-सन्तोष, प्रयत्न, आक वन, संकल्प, मोक्ष प्राप्ति का निश्चय।

वाचः आकूति-वाणी का अभिप्राय।

मन की आकूति या सामर्थ्य, भण्डार का वर्णन शिव-संकल्प सूक्त (यजु ३४/१-५) में है-तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

वाचः सत्यम्-वाणी की यथार्थता, प्रामाणिक वाणी।

सत्य= सत् + त्य-जिस प्रमाण के द्वारा जगत् सत् (सत्तायुक्त) और त्य (स्वयंसिद्ध) दीखता है, वह महालक्ष्मी हैं (लक्ष्मी तन्त्र)। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इसी प्रकार है-तदेतत्त्र्यक्षरं सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरमत्यिकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतो ऽनृतम् (शतपथ ब्राह्मण १४/८/६/२)

(४४) **पशूनां रूपम्**-(१) पशुओं का रूप दूध आदि है। (२) हाथी, घोड़े, गाय, भैंस आदि पशुओं की अधिकता। (३) मोक्षोपयोगी विवेक आदि सामग्री का समूह। (४) रूपवान् पशु। (५) लक्ष्मी की कृपा से सभी पशुओं या जीवों के साथ आत्मीयता हो। (६) सभी जीवों की चैतन्य शक्ति।



(४५) **अन्नस्य रूपम्**-(१) भोज्य अन्न का रूप। (२) ज्ञान के श्रवण आदि साधनों का समूह। (३) अन्नस्य यशः-सभी प्रकार के अन्नों का यश या सार तत्त्व। (३) महालक्ष्मी के सोम से सभी प्रकार के अन्न होते हैं।

(४६) **कर्दम**-(१) लक्ष्मी का पुत्र। पुत्र के साथ बुलाने पर लक्ष्मी चिरकाल तक रहेंगी। (२) कर्दम = मिट्टी, पृथ्वी। महालक्ष्मी से ही पृथ्वी की सृष्टि हुयी है जिस पर प्रजा उत्पन्न हुयी।

(४७) **पद्ममालिनीम्**-(१) कमल माला पहनी हुयी। (२) दैवी सम्पत् का समूह जिसने धारण किया है। (३) सुषुम्ना के सभी चक्र-पद्मों के रूप में व्याप्त। (४) जो प्रकृति, पुरुष और सनातन काल रूपी पद्मों को धारण करती है।

(४८) **मातरम्**-(१) जनन करने वाली, हित चिन्तन करने वाली माता। (२) वर्ण, कला, तत्त्व, मन्त्र, पद, और भुवन-इन षडध्वों को अलग अलग बताने वाली (मिमे)। (३) सर्व मानों से जगत् का सहार करने वाली (मीये, मीङ् हिंसायाम् ४/२७, मीञ् हिंसायाम् ९/४)। (४) सर्व प्रमाणों में मिति (ज्ञान) स्वरूप। (५) जिस लक्ष्मी के अन्दर सब समा जाता है (माङ् माने शब्दे च २/५५, ३/६)। (६) तृ= तारने वाली-भवसागर से पर करने वाली। सभी प्रकार के दोषों से पार करने वाली। सर्व भूतों के चित्तों में तैरने वाली। स्वयं मेघ बनकर जगत् को डुबाने वाली।

(४९) **आपः स्रजन्तु**-जल का सृजन करें। सर्वप्रथम रस-रूप जल था। इसमें २ अक्षर हैं-ज =जिससे सभी जन्म लेते है। ल = जिसमें सभी का लय होता है।

(५०) **चिक्लीत**-लक्ष्मी का पुत्र। भौतिक सम्पत्ति के लिये कर्दम तथा जल वैभव के लिये चिक्लीत को बुलाया। यह कामदेव है। यह चित्त में लगा है, अतः चिक्लीत है।

(५१) **पुष्करिणीम्**-(१) पुष्कर हाथी की सूंड का अग्र भाग है, उससे अभिषिक्त। (२) कमल वाली, जिसकेहाथ में कमल है। (३) स्वयं कमललता रूपा। (४) ममता तथा गर्व-२ हाथी के समान बली तथा विशाल हैं। इनके आगे आशा और प्रीति नाम के २ स्वर्ण कलश हैं। वे तृप्ति रूपी जल से भरे हैं। इन कलशों से २ हाथियों द्वारा महालक्ष्मी का अभिषेक होता है। इस देवी के साथ आनन्द रूप विष्णु हैं। दोनों हाथी यहां शान्त हो जाते हैं, मन को विचलित नहीं करते। उनके साथ श्री जगन्नाथ के लिये भी यही प्रार्थना है- आहे नील-शैल प्रबल मत्त-वारण। (५) पुष् + करिणीम् =पोषण करने वाली। (६) पुष्कर = कमल। कमल वाली।

(५२) **पुष्टिम्**-(१) पुष्टि की अधिष्ठात्री देवी। (२) स्वयं पुष्टि रूपा। (३) पोषण करने वाली-जीवन, सभ्यता के सभी अंगों को पुष्ट करने वाली।

(५३) **यष्टिम्**-(१) छड़ी-दण्डस्वरूपा। (२) रसोई घर आदि में कार्य के लिये दण्ड। (३) सभी देवों की इष्ट है-इषु इच्छायाम् (६/६१)। (४) सभी देव जिसका यजन करते हैं (यज् देवपूजासंगतिकरणेषु १/७२८)(५) जो सदा हरि के साथ रहती हैं। (६) सभी कामनाओं को देने वाली। (७) सभी का आधार भूत-अथर्व वेद (१०/७)-स्कम्भ-सूक्त में भी स्कम्भ (स्तम्भ= यष्टि) को जगत् का आधार कहा गया है। इष्टिम्=यज्ञ रूपा ।

(५४) **तुष्टिम्**-(१) स्वयं तुष्टि रूपा-या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। (दुर्गा सप्तशती ५/६८-७०)। (२) अपने गुणों से विष्णु को सन्तुष्ट करने वाली। (३) विष्णु के गुणों से स्वयं सन्तुष्ट होने वाली। (४) कर्मों द्वारा उनकी स्तुति से लक्ष्मी में सबको सन्तुष्टि मिलती है।

(५५) **सुवर्णाम्**-(१) सुन्दर वर्ण (रंग) वाली। (२) सुवर् नयति इति सुवर्णा-सिद्धों को अपर स्वर्ग (सुवः) और परमपद (पर सुवः) ले जाने वाली। (३) नारायणी जिसमें सभी वर्ण (अक्षर) शोभित हैं। (४) स्वयं नित्या सरस्वती बनकर सुन्दर वर्णन करने वाली (वर्ण क्रिया विस्तार-गुण-वचनेषु १०/३३५)

(५६) **हेममालिनीम्**-(१) रत्नजडित सुवर्ण माला वाली। (२) सुवर्ण कमलों की माला वाली। (३) नारायणी स्वयं पृथ्वी बनकर हेम पर्वत धारण करती हैं, अतः ब्रह्मा ने हेममालिनी कहकर उनकी स्तुति की थी।

(५७) **सूर्याम्**-(१) सूर्य की तरह प्रकाशित। (२) सूर्य स्वरूपा विद्या, विज्ञान आत्मा। (३) ऐश्वर्य स्वरूपा। (४) सू + र् + या= सर्व जीवों के हित के लिये तत्त्वपद्धति को उत्पन्न करने वाली। षु (सु) प्रसवैश्वर्ययोः (१/६७४, २/३४), रमु क्रीडायाम् (१/५९२)-प्रणियो का भोगों में रमण कराने वाली, यत्रि (यन्त्र) संकोचने (१०/३)-काल द्वारा नियन्त्रण करने वाली। (५) सूर् + या= सूरि या विद्वानों का हित करने वाली (हित अर्थ में यत् प्रत्यय)।



## (७) अथ पुरुषसूक्त विधिः

### अथ विनियोगः

ॐ अस्य सहस्रशीर्षेति षोडशर्चस्य पुरुषसूक्तमहामन्त्रस्य नारायण ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। अन्त्याया त्रिष्टुप् छन्दः। जगद्बीजं पुरुषो देवता। पुरुष एवेदं-इति बीजम्। यज्ञेन यज्ञम्-इति शक्तिः। एतावान्-इति कीलकम्। मम सकलाभीष्टसिद्ध्यर्थे धन-धान्य-पुत्रादि सकल सम्पत्समृद्ध्यर्थे श्रीमन्नारायण प्रीति द्वारा सर्वविध पुरुषार्थ सम्पत्तये न्यास-पूजा-पाठ-हवनाभिषेकेषु विनियोगः। इति।।

### अथ ऋष्यादि न्यासः

ॐ श्री मन्नारायणर्ष ये नमः शिरसि। ॐ जगत्कारण-पुरुष देवतायै नमो हृदये। ॐ अनुष्टुप्त्रिष्टुप्छन्दोभ्यां नमो मुखे। ॐ पुरुष एवेदम्-इति बीजाय नमो नाभौ। ॐ यज्ञेन यज्ञम्-इति शक्तये नमः कट्याम्। ॐ एतावान्-इति कीलकाय नमः पादौ। मम सकलाभीष्ट सिद्ध्यर्थे धन-धान्य-पुत्रादि-सकल-सम्पत्समृद्ध्यर्थे श्रीमन्नारायण प्रीति द्वारा सर्वविध पुरुषार्थ-सम्पत्तये पुरुषसूक्त-न्यास-पूजा-पाठ-हवनाभिषेकेषु विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु । इति।।

### अथ ऋचाद्यङ्गन्यासः

ॐ सहस्रशीर्षा -इति वाम करे १। ॐ पुरुष एवेदं-इति दक्षिण करे २। ॐ एतावानस्य-इति वाम पादे ३। ॐ त्रिपादूर्ध्व-इति दक्षिण पादे ४। ॐ ततो विराड-इति वाम जानौ ५। ॐ तस्माद्यज्ञात्-इति दक्षिणजानौ ६। ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः-इति वाम कट्याम् ७। ॐ तस्मादश्वा-इति दक्षिण कट्याम् ८। ॐ तं यज्ञम्-इति नाभौ ९। ॐ यत्पुरुषं-इति हृदये १०। ॐ ब्राह्मणोऽस्य-इति कण्ठे ११। ॐ चन्द्रमा मनसो-इति वाम बाहौ १२। ॐ नाभ्या आसी-इति दक्षिण बाहौ १३। ॐ यत्पुरुषेण-इति मुखे १४। ॐ सप्तास्या-इति नेत्रयोः १५। ॐ यज्ञेन यज्ञं-इति मूर्ध्नि १६। इति।।

### अथ करन्यासः

ॐ ब्राह्मणोस्य-इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ चन्द्रमा-इति तर्जनीभ्यां नमः। ॐ नाभ्या-इति मध्यमाभ्यां नमः। ॐ यत्पुरुषेण-इत्यनामिकाभ्यां नमः। ॐ सप्तास्यासन्-इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ यज्ञेन -इति करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।इति।।

### अथ हृदयादिन्यासः

ॐ ब्राह्मणोऽस्य-इति हृदयाय नमः। ॐ चन्द्रमा-इति शिरसे स्वाहा। ॐ नाभ्या-इति शिखायै वषट्। ॐ यत्पुरुषेण-इति कवचाय हुम्। ॐ सप्तास्यासन्-इति नेत्राभ्यां वौषट्।

ॐ यज्ञेन यज्ञं-इति अस्त्राय फट्। ॐ भूर्भुव: स्वरोमिति दिग्बन्ध:। इति।।

**अथ नारायण ध्यानम्**

**ध्येय: सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती**
**नारायण: सरसिजासन-सन्निविष्ट:।**
**केयूरवान् मकर-कुण्डलवान्किरीटी**
**हारी हिरण्मय-वपुर्धृत-शङ्ख-चक्र:।१।**

**अथ छन्दो लक्षणम्**

मृत्युभीतै: पुरादेवैरात्मनश्छादनाय च।
छन्दांसि संस्मृतानीह छादितास्तैस्ततोऽमरा:।।
छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी कृत्तिरेव च।
छन्दोभिरावृतं सर्वं विद्यात्सर्वत्र नान्यत:।। (बृहत्पाराशर स्मृति २/३९-४०)

**अथ देवता लक्षणम्**

यस्मिन्मन्त्रे तु यो देवस्तेन देवेन चिह्नितम्।
मन्त्रं तद्दैवतं विद्यात्सन्ति तत्र तु देवता:।४१।

**अथ ऋषि लक्षणम्**

येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धि: प्राप्ता तु येन वै।
मन्त्रेण तस्य स: प्रोक्तो मुनि-भावस्तदात्मक:।४२।

**अथ विनियोग लक्षणम्**

यत्र कर्माणि चारब्धे जपहोमार्चनादिके।
क्रियन्ते येन मन्त्रेण विनियोगस्तु स स्मृत:।४३।

**अथ ब्राह्मण लक्षणम्**

अस्य मन्त्रस्य चार्थोऽयमयं मन्त्रोऽत्र वर्तते।
तत्तस्य ब्राह्मणं ज्ञेयं मन्त्रस्येति श्रुति-क्रम:।४४।
एतद्धि पञ्चकं ज्ञात्वा क्रियते कर्म यद् द्विज:।
तदनन्त फलं तेषां भवेद्वेद निदर्शनात्।४५।
छन्दो दैवतमार्षं च विनियोगं च ब्राह्मणम्।
मन्त्रं पञ्चविधं ज्ञात्वा द्विज: कर्म समारभेत्।।२९४।।
दद्यात् पुरुष-सूक्तेन आप: पुष्पाणि चैव हि।



अर्चितं स्यादिदं तेन विश्वं भुवन सप्तकम्।।३८०।।
अनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्तस्य देवता।
पुरुषो यो जगद्-बीजं ऋषि-र्नारायण: स्मृत:।।३८१।।
एतान्यविदित्वा यो ऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवत्यथातराश्व गर्तं वा पद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान्भवत्यथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते। (सर्वानुक्रमणिका,१/१)

**अथ न्यास प्रमाणम्**

प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे।
तृतीयां वाम-पादे च चतुर्थीं दक्षिणे न्यसेत्।। ३८४।
पञ्चमी वाम-जानौ तु षष्ठी वै दक्षिणे न्यसेत्।
सप्तमीं वाम-कट्यां तु दक्षिणस्यां तथाष्टमीम्।३८५।
नवमीं नाभि-मध्ये तु दशमीं हृदये तथा।
एकादशीं वाम-कुक्षौ द्वादशी दक्षिणे न्यसेत्।३८६।
कण्ठे त्रयोदशीं न्यस्य तथा वक्त्रे चतुर्दशीम्।
अक्ष्णो: पञ्चदशीं चैव विन्यसेन्-मूर्ध्नि षोडशीम्।३८७।
एवं न्यास-विधिं कृत्वा पश्चात् पूजां समारभेत्।३८८।
(बृहत्पाराशर स्मृति, अध्याय २) बृद्ध-हारीत-स्मृति, अध्याय ८ में भी।

**अथ नारायण पूजा क्रम:**

**सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।**
**स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।१।।**
श्रीमते नारायणाय नम: आवाहनं समर्पयामि।।१।।
**पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।२।।**
श्रीमते नारायणाय नम: आसनं समर्पयामि।।२।।
**एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुष:।**
**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।३।।**
श्रीमते नारायणाय नम: पाद्यं समर्पयामि।।३।।

**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः।**
**ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।४।।**
श्रीमते नारायणाय नमः अर्घ्यं समर्पयामि।।४।।
**ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः।**
**स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।५।।**
श्रीमते नारायणाय नमः आचमनीयं समर्पयामि।।५।।
**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।**
**पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्या नारण्यान्ग्राम्याश्च ये।।६।।**
श्रीमते नारायणाय नमः स्नानं समर्पयामि।।६।।
**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।**
**छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।७।।**
श्रीमते नारायणाय नमः वस्त्रं समर्पयामि।।७।।
**तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।**
**गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।८।**
श्रीमते नारायणाय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि।।८।।
**तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।**
**तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।९।।**
श्रीमते नारायणाय नमः गन्धं समर्पयामि।।९।।
**यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।**
**मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते।।१०।**
श्रीमते नारायणाय नमः पुष्पं समर्पयामि।।१०।।
**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।**
**उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।११।।**
श्रीमते नारायणाय नमः धूपमाघ्रापयामि।।११।।
**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**
**श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।।१२।।**
श्रीमते नारायणाय नमः दीपं दर्शयामि।।१२।।
**नाभ्या असीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।**
**पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन्।।१३।।**



श्रीमते नारायणाय नमः नैवेद्यं निवेदयामि।।१३।।
**यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।**
**वसन्तोऽ स्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।१४।।**
श्रीमते नारायणाय नमः नमस्कारं समर्पयामि।।१४।।
**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः।**
**देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्।।१५।।**
श्रीमते नारायणाय नमः प्रदक्षिणाः समर्पयामि।।१५।।
**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन्।**
**तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।१६।।**
श्रीमते नारायणाय नमः सपुष्पाञ्जलिं विसर्जनं समर्पयामि।।१६।।

।इति।

**अथ नारायण पूजा प्रमाणम्।**

आद्ययावाहवेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्। द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं चैव तृतीयया।३९४।
अर्घ्यश्चतुर्थ्यां दातव्यः पञ्चम्याचमनं तथा।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्र-धौतकम्।३९५।
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च।
पुष्प देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम्।३९६।
द्वादश्या दीपकं दद्यात् त्रयोदश्या निवेदनम्।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणाः।३९७।
षोडश्योद्वासनं कुर्याद् देव-देवस्य चक्रिणः।
स्नानं वस्त्रं च नैवेद्ये दद्याचमनं हरेः।३९८।(बृहत्पाराशर स्मृति, अध्याय २)

।इति।

**अथ षोडशोपचाराः।**

आवाहना-सने-पाद्य-मर्घ्य-माचमनीयकम्।
स्नानं वस्त्रोपवीते च गन्ध-माल्यादिभिः क्रमात्।१।
धूपं दीपं च नैवेद्यं नमस्कारं प्रदक्षिणाम्।२। (पाञ्चरात्र)

**अथ पञ्चोपचाराः।**

ध्यान-मावाहनं चैव भक्त्या यच्च निवेदनम्।
नीराजनं प्रणामश्च पञ्च पूजोपचारकाः(जाबालि १)

गन्ध-पुष्पे धूप-दीपौ नैवेद्यः पञ्च ते क्रमात्।(पाञ्चरात्र)

**अथ दशोपचाराः।**

अर्घ्यं पाद्यञ्चाचमनं स्नानं वस्त्र-निवेदनम्।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्। (ज्ञानमाला)

**अथाष्टत्रिंशदुपचाराः।**

अर्घ्यं पाद्य-माचमनं मधुपर्क-मुपस्पृशम्।
स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामं चोपवीतकम्।।
पुनराचमनं भूषा दर्पणालोकनं ततः।
गन्ध-पुष्पे धूप-दीपौ नैवेद्यं च ततः क्रमात्।।
पानीयं तोय-माचामं हस्त-वासस्ततः परम्।
ताम्बूल-मनुलेपं च पुष्पदानं ततः पुनः।।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्तुतिं चैव प्रदक्षिणाः।
पुष्पाञ्जलि-नमस्कारा-वष्टत्रिंशत्समीरिताः।। (ज्ञानमाला)

**अथ राजोपचाराः।**

ततः पञ्चामृता-भ्यङ्ग-मङ्गस्योद्वर्तनं तथा।
मधु-पर्कं परिमल द्रव्याणि विविधानि च।
पादुकां दोलनादर्शं व्यञ्जनं छत्र-चामरे।
वाद्यार्तिक्यं नृत्य-गीत-शय्या राजोपचारकाः।। (संस्कार भास्कर)

**अथ कलशादि पूजा**

सुवासित जलैः पूर्णं सव्ये कुम्भं सुपूजयेत्।।
मम नामाङ्कितां घण्टां सुदर्शन युतां यदि।
ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु तस्य देहे वसाम्यहम्।।
घण्टां सम्पूज्य मध्ये त्वागमार्थमिति वादयेत्।
निवेशयेत् पुरो भागे गन्धं पुष्पं च भूषणम्।।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरो नैव तु वामतः।
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।। (पूजा सागर)
धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने।
ममाग्रे वादयन् घण्टामुत्तमं लभते फलम्।। (विष्णुधर्मोत्तर पु.)
स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा।



घण्टा-नादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च। (कालिका पुराण)
कुर्यादावाहनं मूर्त्तौ मृन्मय्यां सर्वदैव हि।
प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहन-विसर्जने।।(वाचस्पति)
आसने पञ्च पुष्पाणि स्वागते षट् शुभानि च। (नारद पाञ्चरात्र ४/९/३)
पूरयित्वा शुभ-जलं पात्रेषु कुसुमैर्युतम्।
द्रव्याणि निक्षिपेत्तेषु मङ्गलानि यथा-क्रमात्।।७२।।
उशीरं चन्दनं काष्ठं पाद्य-पात्रे विनिक्षिपेत्।
विष्णु-क्रान्तं च दूर्वां च कौशेयां-स्तिल-सर्षपान्।।७३।।
अक्षतांश्च फलं पुष्प-मर्घ्य-पात्रे विनिक्षिपेत्।
जाती-फलं च कर्पूर-मेलां चाचमनीयके।।७४।।
मकरन्दं प्रवालं च रत्नं सौवर्णमेव च।
तानि दद्यात् स्नान पात्रे धात्री सुरतरुं तथा।।७५।।
द्रव्याणा-मप्यलाभे तु तुलसी-पत्रमेव च।
चन्दनं वा सुवर्णं वा कौशेयं वा विनिक्षिपेत्।।७६।।
सौवर्णानि च रौप्याणि ताम्र कांस्यं प्रयोजयेत्।
पात्राणि चोद्धरण्या च दद्यात् पाद्यादिकं तथा।।७७।। (बृद्धहारीत स्मृति अ. ७)
गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम्।
एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम्।। (धन्वन्तरि)
रजनी सहदेवी च शिरीषं लक्ष्मणापि च।
सहभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्तन-मिहोच्यते।। (आह्निक सूत्र)
हरिद्रा कुङ्कुमं चैव सिन्दूरादि समन्वितम्।
कज्जलं कण्ठ-सूत्रादि सौभाग्य-द्रव्य-मुच्यते।।
आस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते जनः।
सोऽपराधी भवेत्सत्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।। (वायु पुराण)
देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा।
इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थे तु तृणस्य च।। (पाद्म पुराण)
पङ्कजं पञ्चरात्रं स्याद्दशरात्रं च बिल्वकम्। एकादशाहं तुलसी नैव पर्युषिता भवेत्।।
जाती शमी कुशाः कङ्कु मल्लिका करवीरजम्।
नाग-पुन्नागका-शोक रक्त-नीलोत्पलानि च।।

चम्पकं बकुलं चैव पद्मं बिल्वं पवित्रकम्। एतानि सर्व देवानां संग्राह्याणि समानि च ।।
हिरुका कङ्कणं दारु मल्लिका-गुरु वासिता।
शङ्ख-जातीफलं श्रीमत्प्रिया धूपा हरेरिमे।। (वामन पुराण)
न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्।
घृतेन दीपकं नित्यं तिल-तैलेन वा पुनः।। (कालिका पुराण)
ज्वालयेन् मुनि-शार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः।
कार्पास-वर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मका ।।
एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये तिस्र ईश्वरे।
चतस्रः केशवे कुर्यात् सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः।(बह्वृच परिशिष्ट)

**अथ मन्त्र पुष्पाञ्जलिः।**

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।१ ।।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदं पर्याप्तानन्तरायाय।।२।।
सर्वस्तोमोऽतिरात्रमुत्तमं महर्भवति।
सर्वस्यापत्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेव तेनाप्नोति ।।३।।
राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने, नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
स मे कामान्कामकामाय मह्यम्, कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।।४।।
ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं।
पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्य-माधिपत्य-मयं, समन्त-पर्यायी स्यात् सार्वभौमः सर्वायुषः।
अन्तादा-परार्धात् पृथिव्यै समुद्र-पर्यन्तायाः,
एकराडिति तदप्येष; श्लोकोऽभिगीतः(५)
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या वसन्गृहे।
आविक्षितस्य कामप्रे विश्वेदेवाः सभासदः।।६।।
विश्वत-श्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैः द्यावा-भूमी-जनयन्देव एकः।।७।।
ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।।८।।
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।९।।



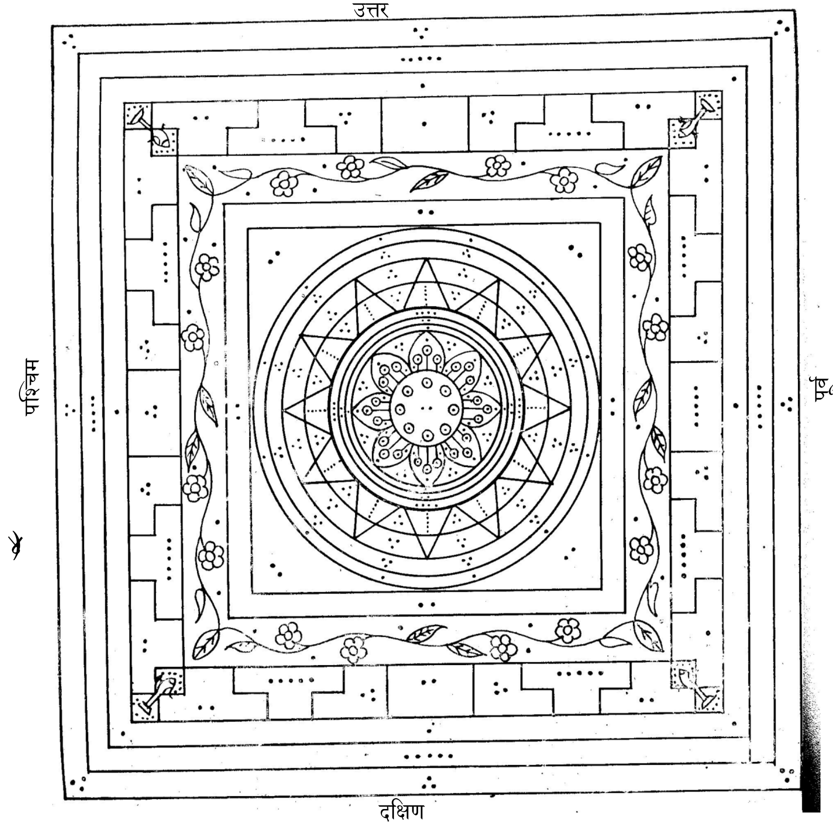
## (८) अथ चक्राब्ज मण्डल रचना प्रकारः

चन्दनार्द्राणि सत्राणि पश्चिमतः प्राचीनं दक्षिणत उदीचीनं सप्तदश वारं पातयेत्। तेन षट्-पञ्चाशदधिक-द्विशत संख्यकानि कोष्ठानि सम्पद्यन्ते। तेषु मध्ये षट्त्रिंशत्कोष्ठानि मार्जयित्वा मध्ये शङ्कुं स्थापयित्वा सूत्र-मार्गेण वृत्तानि समानि पञ्च बिम्बानि यथा सम्पद्येरं-स्तथा भ्रामयित्वा प्रथम वृत्तस्य मध्ये कर्णिका क्षेत्रं कल्पयेत्। तत्राष्टौ विन्दवः प्रकल्पनीयाः। द्वितीय बिम्बं त्रिधा प्रथमं केशरान् द्वितीये दलानि तृतीयं नाभिं प्रकल्प्य तत्र भाग-त्रयं कुर्यात्। तद् बहि-र्बिम्ब-द्वये द्वादशाराणि कल्पयित्वा पञ्चमे बिम्बे नेमिं कल्पयेत् नेमेश्च भागद्वयं कुर्यात्। तद् बहिरष्टाविंशति कोष्ठे चतुरस्रं पीठं प्रकल्प्य तद् बहिरशीति कोष्ठे वीथीं च प्रकल्प्य तत्र लता प्रतानादिकं विरच्य तद् बहिः पङ्क्तिद्वयस्थ द्वादशाधि-कैकशतसंख्यकेषु कोष्ठेषु प्रतिदिशं मध्ये कोष्ठ-चतुष्टयेन द्वार-चतुष्टयं प्रकल्प्य, तत्पार्श्वे बाह्य-पंक्तिस्थ कोष्ठ-त्रयेण अन्तःपंक्तिस्थ कोष्ठेन च उपशोभाः प्रकल्प्य अवशिष्ट कोष्ठ-द्वयेन शंखान् प्रकल्पयेत्।

**अथ चक्राब्ज मण्डले रक्तादिवर्ण पूरण विधिः**

पीतेन वर्णेन कर्णिकां शुक्लेन विन्दून् पाटलेन कर्णिकारेखां केशरावनिं द्विधा विभज्य पूर्वभागं द्विधा विभज्य पूर्व पीतैरुत्तरं रक्तैस्तदन्तर्भागेषु श्वेतैर्विन्दून् श्यामैः केशरान्तरालानि रक्तैर्दलरेखिका दलाग्राणि रक्तैर्दलमूलानि शुक्लैस्तदन्तरालानि श्यामैस्तदन्तर्वलयं रक्तैर्नाभिरेखां श्यामैरारेखां कृष्णैरराणि रक्तैस्तदन्तरालानि श्यामैस्तदन्तर्वलयं कृष्णैः कल्पयेत्। नेमिभागं द्विधा विभज्य प्रथमं कृष्णेन द्वितीयं शुक्लेन पीठं पीतैर्वीथीं लता-प्रतानादिकं हरितवर्णः शुक्लैः शोभा रक्तैरुपशोभाः पीतैरर्धशोभाः श्यामैः पूर्वादि-द्वार-चतुष्टयं क्रमेण शुक्ल-रक्त-पीत-कृष्णै रुत्तरादि कोणानि अरुणेन तत्र शंखान् शुक्लेन वर्णेन प्रकल्प्य दलानि विन्दूंश्चाष्टौ प्रकल्पयेत्। केशराणि च तत्र। इति पाद्मसंहितायां।

१. नाभेर्बहिर्मण्डलयोर्द्वादशाराणि कल्पयेत्। (ईश्वर संहिता ११/१५३)
२. केशरत्रितयं कुर्यात् पत्रे पत्रेऽरुणप्रभम् (१५६)
३. कृष्णानि सर्वशोभानि द्वारोद्देशस्थितानि च। तदर्धाकृतितुल्यानि। (१५६)
४. कोणानि केसराभानि सित-शंखा-न्वितानि च। (१५०)
५. बहिरावरणं यद्वै सत्वाद्यं त्रितयं हि यत्। (१५३)
६. लता-प्रतानं वीथ्यां वै कुर्या-द्वारीत-वर्णकम्।
७. श्वेत-रक्तस्तु पाटलः(अमरकोष १/५/१)




**चक्र में निर्देश अनुसार रंग-**





**अथ चक्राब्ज मण्डल देवता ध्यानम्**

रजांसि विद्धि भूतानि सित-पीतादिकानि च।
तन्मात्रा-ण्युप-शोभानि शोभानि करणानि च।।१।।
एवं सर्वाणि कोणानि सद्द्वाराणी-न्द्रियाणि च।
बहिरावरणं यद्वै सत्वाद्य त्रितयं हि यत्।।२।।

मन: सुवितता वीथी-गर्व: पीठ-मुदाहृतम्।
श्री: पद्मं तद-धिष्ठाता बीजात्मा चिन्मय: पुमान्।।३।।
अमूर्त ईश्वरश्चात्र तिष्ठत्यानन्द लक्षण:।
यस्य सन्दर्शनादेव शश्वद् भाव: प्रसीदति।।४।।
अङ्ग-न्यासादिकं कुर्यात् सर्व कार्येषु सर्वदा।
सर्वदा प्रणवं दद्यादादौ मन्त्रस्य पार्थिव।।५।। (पाञ्चरात्र)

अथ दक्षिणे जानुनि दक्षिणोत्तरौ पाणी सव्यस्य पाणे-रङ्गुष्ठ-वर्जिता-श्चतस्रोऽङ्गुली: कृत्वा सव्याङ्गुष्ठं दक्षिणाङ्गुष्ठेन वेष्टयित्वा ताम्बूल-पूगीफल-हिरण्या-क्षतोदक-मादाय वेष्टयित्वा महा-सङ्कल्पं कुर्यात्।

**अथ महासङ्कल्प:**

ॐ तत्सदद्यास्य श्रीशेष-शेषाशन-विष्वक्सेनादि-नित्यसूरि-निर्विशेषै-रशेष सज्जन-सम्भावनीयै-रवम्भवद-वद्य-गन्धैरनादि माया-महावर्त बभ्रम्यमाण बाह्य कथकरं भावन-गन्ध सिन्धुरै-रधि-जिगमिषित मुक्ति घण्टा-पथै-रखण्ड-दिङ्मण्डल व्यापि यशो वितान वलित जगत् त्रितयै रौपनिषद् रहस्योपदेशिकै: श्रीमच्छठरिपुनाथ यामुन-यतिवर सौम्य वर-वादि-भीकरादि दिव्य देशिकै: परम-व्योम श्वेतद्वीप क्षीर-सागर श्रीरङ्ग वृष-गिरि सत्यव्रत-यदुगिरि पुरुषोत्तम साकेत मथुरा सिद्धाश्रमादि दिव्या-भिव्यक्ति प्रदेशेषु समनुष्ठित मङ्गला-शासनस्य निखिल सुरासुर मुकुट-मणि मञ्जरी निकर नीराजित पाद-पीठस्य शरणागत परित्राण सप्त-तन्तु दीक्षा-दीक्षितस्य सरसीरुह-वासिनी सह-चरित-धर्मण: संसरण दव-दहन ताप-निर्वाण बलाहकस्य जगद्रक्षण शिक्षा-विचक्षणस्य अच्युतानन्त-वीर्यस्य महा-जालक मध्य- परिभ्राम्यमाणानेक कोटि सूर्य-प्रभा-समेतस्य श्रीभूमि नीला कुच-कलश विन्यस्त कुङ्कुमाङ्कित वक्ष-स्थलस्य शेष पर्यङ्क-शायिन: शंख-चक्र-गदा-खड्ग-शार्ङ्ग- पद्म हस्त-विराजितस्य शौशील्य-वात्सल्यादि गुण-गणौघ महार्णवस्य श्रीमन् नारायणस्येच्छया नाभि-कमलोद्भूत सकल-लोक-पितामहस्य ब्रह्मण: सृष्टिं कुर्वत-स्तदुद्धरणाय प्रार्थितस्य महापुरुषस्य अचिन्त्या-परिमित-शक्त्या महा-जलौघ मध्ये परिभ्रम-मानाम् अनेक कोटि ब्रह्माण्डानाम्-एकतमेऽव्यक्त महद् अहङ्कार- पृथि-व्यप्-तेजो-वाय्वा-काशाद्यै-रावृतेह्यस्मिन् महति ब्रह्माण्ड- खण्डे श्रीमदादि वराह-दंष्ट्राग्र-विराजिते-र्भूलोके जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्त्तैक देशान्तर्गते (स्थान नाम:) परार्ध-द्वय जीविनो ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एक-पञ्चाशत्तमे वर्षे श्वेत-वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टा-विंशति-तमे कलि-युगे कलि प्रथम चरणे बौद्धावतारे अमुक संख्यक विक्रमसम्वत्सरे



अमुकनाम्नि सम्वत्सरे (अयन-ऋतु-मास-पक्ष-तिथि-वासर-नक्षत्र-गुरुराशि) शेषेसु ग्रहेषु यथास्थान स्थितेषु एवं गुण-विशेषण-विशिष्टायां शुभ पुण्य-तिथौ (गोत्र -नाम) सर्व-पाप निरास पूर्वक-

महा-पापोप-पापानि नाना-योनि कृतानि च।
बाल-भावेन यत्पापं क्षुत्तृडर्थे च यत्कृतम्।१।
आत्मार्थं चैव यत्पापं परार्थे चैव यत्कृतम्।
तीर्थेषु चैव यत्पापं गुर्व-वज्ञा-कृतञ्च यत्।२।
राग-द्वेषादि-जनितं काम-क्रोधेन यत्कृतम्।
हिंसा-निद्रादिजं पापं भेद-दृष्ट्याच यत्कृतम् ।३।
शुष्क-मार्द्रञ्च यत्पापं जानता-जानता कृतम् ।
देहा-भिमानजं पापं सर्वदा सञ्चितं च यत्।४।
ब्रह्महा मद्यप: स्तेयी तथैव गुरु-तल्पग:।
महा-पापानि चत्वारि तत् संसर्गी च पञ्चम:।५।
अति-पातक-मन्यच्च तन्न्यून-मुप-पातकम्।
गो-वधो व्रात्यता स्तेय-मृणानां चानप-क्रिया।६।
अनाहिताग्निता पण्य-विक्रय: परिवेदनम्।
इन्धनार्थे द्रुमच्छेद स्त्री-हिंसौषधि-जीवनम्।७।
हिंसा-यात्रा विधानञ्च भृतका-ध्यापनं तथा ।
प्रथमाश्रम-मारभ्य यत्किञ्चि-त्किल्विषं कृतम्।८।
कृमि-कीटादि-हननं यत्किञ्चित् प्राणि-हिंसनम्।
माता-पित्रो-रशुश्रूषा तद्वाक्याकरणं तथा।९।
अपूज्यपूजनं चैव पूज्यानाञ्च व्यतिक्रम:।
अनाश्रमस्थता-ग्न्यादि देवा-शुश्रूषणं तथा।१०।
पर-कार्या-पहरणं परद्रव्यो-पजीवनम्।
ततोऽज्ञान-कृतं पापं कायिकं वाचिकं तथा।११।
मानसं त्रिविधं वापि प्रायश्चित्तै-रनाशितम्।
तस्मादशेष पापेभ्यस्त्राहि त्रैलोक्यपावन ।१२।
ऋद्धये पुष्टये चापि सिद्धये भक्तिलब्धये।
शिवाय मुक्तये चैव वृद्धये सर्व-कर्मणाम्। १३।

मन्त्राणां देशिकानाञ्च स्थानानामपि सर्वदा।
पुत्र-मित्र-कलत्राणां दासी-दाव-गवामपि।१४।
वेद-शास्त्रा-गमादीनां व्रताना-मिष्ट-सम्पदाम्।
मनोरथानां सर्वेषां हितानां परिलब्धये।१५।
आयु-रारोग्य-मेधानां धन-धान्यादि-सम्पदाम्।
पुण्याना-मणिमादीनां गुणानां-श्रेयसामपि।१६।
राज्ञो जनपदस्यापि यजमानस्य मन्त्रिणाम्।
वैष्णवानां विशेषेण परत्र-हित-मिच्छताम्।१७।

सत्सन्तान-प्राप्त्यर्थं ज्ञान-भक्ति-वैराग्यादि-प्राप्त्यर्थं भगवद्-भागवताचार्य कैङ्कर्यस्या-विच्छिन्न सन्तानेना-हरहर्वृद्ध्यर्थं राष्ट्रस्य दुर्भिक्षादि निवृत्ति-पूर्वक तत्काल सम्भावित शस्य-वृद्ध्यर्थ-मस्मिन् स्थाने सर्वेषां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणां यथा-भिलषित मनस्कामना सिद्ध्यर्थं श्रीमन्नारायणस्य अशेष चिदचिद्वस्तु-शेषीभूतस्य सत्य-ज्ञानानन्दा-मलत्व स्वरूपस्य श्री-भूमि-नीला-नायकस्य ज्ञान-शक्ति बलैश्वर्य वीर्य-शक्तित्व-परम-कारुणिकत्व कृतज्ञत्व स्थिरत्वं परिपूर्णत्व पर-मोदज्ञाक्षरत्व मार्दवार्जव सौगन्ध्य सौकुमार्यादि दिव्य गुण-गण महार्णवस्य अभिनव जलधर-सुन्दर दिव्य मङ्गल-विग्रह-विशिष्टस्य भगवतः पूजनं करिष्ये।

## (९) अथागमोक्त भगवदाराधन क्रमः।

**अथ ध्यानम्।**

**शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,**
**विश्वाधारं गगन-सदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।**
**लक्ष्मी-कान्तं कमल-नयनं योगिभि-र्ध्यान-गम्यं,**
**वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्व-लोकैक-नाथम्।१।**
**ॐ आवाहयेत्तं गरुडोपरि-स्थितं रमार्ध-देहं सुर-राज-वन्दितम्।**
**कंसान्तकं चक्र-गदाब्ज-हस्तं भजामि देवं वसुदेव-सूनुम्।२।**
श्रीमते नारायणाय नमः आवाहनं समर्पयामि।२।
**अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।**
**अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन।३।**
श्रीमते नारायणाय नमः प्राणं प्रतिष्ठापयामि।३।
**रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम्।**
**आसनं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर।४।**



श्रीमते नारायणाय नमःआसनं समर्पयामि।४।
**ताप-त्रय-हरं दिव्यं परमानन्द सम्भवम्।**
**ताप-त्रय-विमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्।५।**
श्रीमते नारायणाय नमः अर्घ्यं समर्पयामि।।५।
**यद्भक्ति लेश सम्पर्कात् परमानन्द सम्भवः।**
**तस्मैते परमेशाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये।६।**
श्रीमते नारायणाय नमः पाद्यं समर्पयामि।।६।
**देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने।**
**आचामं कल्पयामीश चात्मनां शुद्धि हेतवे।७।**
श्रीमते नारायणाय नमः आचमनीयं समर्पयामि।७।
**सर्व-कल्मष-हीनाय परिपूर्ण मुखात्मने।**
**मधुपर्क-मिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे।८।**
श्रीमते नारायणाय नमः मधुपर्कं समर्पयामि।८।
**उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरण-मात्रतः।**
**शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्।९।**
श्रीमते नारायणाय नमः पुनराचमनीयं समर्पयामि।९।
**परमानन्दबोधाय निमग्न निज मूर्तये।**
**साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते।१०।**
श्रीमते नारायणाय नमः स्नानं समर्पयामि।१०।
**सर्वतीर्थ समायुक्तं सुगन्धि निर्मलं जलम्।**
**आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर।११।**
श्रीमते नारायणाय नमः स्नानान्ते पुनराचमनं समर्पयामि।११।
**कामधेनु समुत्पन्नं सर्वेषां जीवनं परम्।**
**पावनं यज्ञ-हेतुश्च पयः स्नानार्थ-मर्पितम्।१२।**
श्रीमते नारायणाय नमः दुग्ध स्नानं समर्पयामि।१२।
**पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशि-प्रभम्।**
**दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।१३।**
श्रीमते नारायणाय नमः दधि स्नानं समर्पयामि।१३।
**नवनीत समुत्पन्नं सर्व-सन्तोष-कारकम्।**

**घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१४।**
श्रीमते नारायणाय नमः घृत स्नानं समर्पयामि ।१४।
**तरु पुष्प समुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।**
**तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१५।**
श्रीमते नारायणाय नमः मधु स्नानं समर्पयामि ।१५।
**इक्षु सार समुद्भूता शर्करा पुष्टि-कारिका।**
**मला-पहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१६।**
श्रीमते नारायणाय नमः शर्करा स्नानं समर्पयामि ।१६।
**पयो दधि घृतं चैव मधुं च शर्करायुतम्।**
**पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१७।**
श्रीमते नारायणाय नमः पञ्चामृत स्नानं समर्पयामि ।१७।
**मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।**
**तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१८।**
श्रीमते नारायणाय नमः शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि ।१८।
**मलयाचल सम्भूतं चन्दनागरु-सम्भवम्।**
**चन्दनं देवदेवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।१९।**
श्रीमते नारायणाय नमः गन्धोदक स्नानं समर्पयामि ।१९।
**नाना सुगन्धि द्रव्यं च चन्दनं रजनी-युतम्।**
**उद्वर्तनं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।२०।**
श्रीमते नारायणाय नमः उद्वर्तन स्नानं समर्पयामि ।२०।
**मन्दाकिन्याः समानीतै र्हेमाम्भोरुह-वासितैः।**
**स्नानं कुरुष्व देवेश सलिलैश्च सुगन्धिभि; ।२१।**
श्रीमते नारायणाय नमः गङ्गोदक स्नानं समर्पयामि ।२१।
**माया-चित्र पटाच्छन्न निज गुह्योरु-तेजसे।**
**निवारण-विज्ञाय वासस्ते कल्पयाम्यहम् ।२२।**
श्रीमते नारायणाय नमः वस्त्रं समर्पयामि ।२२।
**यमाश्रित्य महामाया जगत् सम्मोहिनी सदा।**
**तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ।२३।**
श्रीमते नारायणाय नमः उत्तरीयं समर्पयामि ।२३।



**यस्य शक्ति-त्रयेणेदं सम्प्रोत-मखिलं जगत्।**
**यज्ञ-सूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ।२४।**
श्रीमते नारायणाय नमः यज्ञसूत्रं समर्पयामि ।२४।
**स्वभाव सुन्दराङ्गाय नाना शक्त्या-श्रयाय च।**
**भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ।२५।**
श्रीमते नारायणाय नमः भूषणानि समर्पयामि ।२५।
**समस्त देवदेवेश सर्व तृप्तिकरं परम्।**
**अखण्डानन्द सम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ।२६।**
श्रीमते नारायणाय नमः जलं समर्पयामि ।२६।
**श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।**
**विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।२७।**
श्रीमते नारायणाय नमः गन्ध विलेपनं समर्पयामि ।२७।
**परमानन्द सौभाग्य परिपूर्ण दिगन्तरम्।**
**गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ।२८।**
श्रीमते नारायणाय नमः गन्धं समर्पयामि ।२८।
**सुष्ठु चन्दन सम्मिश्रं पारिजात-समुद्भवम्।**
**मया दत्तं गृहाणाशु चन्दनं गन्ध संयुतम् ।२९।**
श्रीमते नारायणाय नमः चन्दनं समर्पयामि ।२९।
**कुङ्कुमं कामना दिव्यं कामना काम-सम्भवम्।**
**कुङ्कुमेनार्चितो देव गृहाण परमेश्वर ।३०।**
श्रीमते नारायणाय नमः कुङ्कुमं समर्पयामि ।३०।
**अबीरं च गुलालं च चोवा-चन्दनमेव च।**
**अबीरेणार्चितो देव अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।३१।**
श्रीमते नारायणाय नमः अबीरं समर्पयामि ।३१।
**अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।**
**मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ।३२।**
श्रीमते नारायणाय नमः अक्षतं समर्पयामि ।३२।
**तुरीय वन सम्भूतं नाना गुण मनोहरम्।**
**सुमन्द सौरभं पुष्पं गृह्यता-मिद-मुत्तमम् ।३३।**

श्रीमते नारायणाय नमः पुष्पं समर्पयामि ।३३।
**माल्यादीनि सुगन्धीनि मालेत्यादीनि वै प्रभो ।**
**मया-नीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ।३४ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।३४।
**तुलसी हेम-रूपां च रत्न-रूपां च मञ्जरीम् ।**
**भव-मोक्ष-प्रदां तुभ्य-मर्पयामि हरि-प्रियाम् ।३५ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः तुलसी पत्रं समर्पयामि ।३५।
**शमीं शमय मे पापं शमी-लोहित कण्टका ।**
**धारिण्य-र्जुन-बाणानां रामस्य प्रिय-वादिनी ।३६ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः शमी पत्रं समर्पयामि ।३६।
**विष्ण्वादि सर्वदेवानां दूर्वेत्वं प्रीतिदा सदा ।**
**क्षीर-सागर सम्भूते वंश-वृद्धि-करी भव ।३७ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः दूर्वां समर्पयामि ।३७।
**तैलानि च सुगन्धीनि द्रव्याणि विविधानि च ।**
**मया दत्तानि लेपार्थं गृहाण परमेश्वर ।३८ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः सुगन्धतैलं समर्पयामि ।३८।
**हरिद्रा कुङ्कुमञ्चैव सिन्दूर-कज्जलान्वितम् ।**
**सौभाग्य द्रव्य संयुक्तं गृहाण परमेश्वर ।३९ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः सौभाग्यद्रव्यं समर्पयामि ।३९।
**रत्न-कङ्कण वैदूर्य मुक्ता-हारा-दिकानि च ।**
**सुप्रसन्नेन मनसा दत्तानि स्वीकुरुष्व भोः ।४० ।**
श्रीमते नारायणाय नमः मुक्ताहारं समर्पयामि ।४०।
**वनस्पति-रसोद्भूतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।**
**आघ्रेयः सर्व-भूतानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।४१ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः धूपमाघ्रापयामि ।४१।
**सु-प्रकाशो महा-दीपः सर्वत-स्तिमिरा-पहः ।**
**स बाह्या-भ्यन्तरं ज्योति-र्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।४२ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः दीपं दर्शयामि ।४२।
हस्त प्रक्षालनं करोमि ।



**सत्पात्र-सिद्धं सुभगं विविधानेक भक्षणम् ।**
**निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ।४३ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः नैवेद्यं निवेदयामि ।४३।
**एलो शीर लवङ्गादि कर्पूर परिवासितम् ।**
**प्रासनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर ।४४ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः मध्येपानीयं समर्पयामि ।४४।
**बीजपूराम्र पनस खर्जूरी कदली फलम् ।**
**नारिकेल फलं दिव्यं गृहाण परमेश्वर ।४५ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः ऋतुफलं समर्पयामि ।४५।
**कर्पूर-वासितं तोयं मन्दाकिन्या समाहृतम् ।**
**आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ।४६ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः पुनराचमनीयं समर्पयामि ।४६।
**फलेन फलितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।**
**तस्मात् फल-प्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।४७ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः अखण्ड ऋतुफलं समर्पयामि ।४७।
**पूगी फलं महद्दिव्यं नाग-वल्ली दलै-र्युतम् ।**
**एला-चूर्णादि संयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।४८ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।४८।
**हिरण्यगर्भ गर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।**
**अनन्त-पुण्य-फलद-मतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।४९ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः दक्षिणां समर्पयामि ।४९।
**चन्द्रा-दित्यौ च धरणी विद्युद-ग्निस्तथैव च ।**
**त्वमेव सर्व ज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।५० ।**
श्रीमते नारायणाय नमः आर्तिक्यं समर्पयामि ।५०।
**कदली-गर्भ-सम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।**
**आरार्तिक्य-महं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ।५१ ।**
श्रीमते नारायणाय नमः कर्पूरार्तिक्यं समर्पयामि ।५१।
**नाना सुगन्धि पुष्पाणि यथा-कालो-द्भवानि च ।**
**पुष्पाञ्जलि-र्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ।५२ ।**

श्रीमते नारायणाय नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।५२।
**यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।**
**तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदे पदे।५३।**
श्रीमते नारायणाय नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि।५३।
**यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो-यज्ञ क्रियादिषु।**
**न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।५४।**
**आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।**
**पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वराः।५५।**
श्रीमते नारायणाय नमः क्षमा-प्रार्थनां समर्पयामि।५५।
**यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवै-**
**र्वेदैः साङ्ग-पद-क्रमो-पनिषदै-र्गायन्ति यं सामगाः।**
**ध्याना-वस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,**
**यस्यान्तं न विदुः सुरासुर-गणाः देवाय तस्मै नमः।५६।**
**स-शङ्ख-चक्रं स-किरीट-कुण्डलं सपीत-वस्त्रं सरसी-रुहेक्षणं।**
**स-हार-वक्षःस्थल कौस्तुभ-श्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्।५७।**
श्रीमते नारायणाय नमः स्तुतिं समर्पयामि।५७।
**नमो-स्त्वनन्ताय सहस्र-मूर्तये सहस्र-पादाक्षि-शिरोरु बाहवे।**
**सहस्र-नाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्र-कोटि युगधारिणे नमः।५८।**
श्रीमते नारायणाय नमः साष्टाङ्गप्रणामं समर्पयामि।५८।
**गच्छन्तु च सुर-श्रेष्ठाः स्व-स्थानं परमेश्वराः।**
**यजमान-हितार्थाय पुन-रागमनाय च।५९।**
श्रीमते नारायणाय नमः विसर्जनं समर्पयामि।५९।
अनया पूजा श्रीमन्नारायणः प्रीयतां न मम।

इति पूजनम्।

## (१०) अथ तन्त्रोक्त मुद्रा-निर्माण प्रकारः

कुम्भ मुद्रा लक्षणम्

दक्षाङ्गुष्ठं पुराङ्गुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन च।
सावकाशां मुष्टिकां च कुर्यात्सा कुम्भ-मुद्रिका।१।



अस्त्र मुद्रा लक्षणम्

दक्षस्य तर्जनी मध्ये सव्ये कर-तले क्षिपेत्।
अभिघातेन शब्दः स्यादस्त्र मुद्रा समीरिता।२।

अङ्ग-न्यास मुद्रा लक्षणम्

हृन्नेत्रं त्रिभि-राख्यातं द्वाभ्या-मस्त्र-शिरोमतम्।
अङ्गुष्ठेन शिखा ज्ञेया दिग्भिः कवच-मीरितम्।३।

आवाहन-मुद्रा लक्षणम्

हस्ताभ्या-मञ्जलिं बध्वा-नामिका-मूल-पर्वणोः।
अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा-त्वावाहनी स्मृता।४।

गन्धमुद्रा लक्षणम्

मध्यमा-नामिका-ङ्गुष्ठै रङ्गुल्यग्रेण भो प्रिये।
दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः।५।

पुष्प मुद्रा लक्षणम्

अङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्याञ्च पुष्प-चक्रे निवेदयेत्।६।

धूप मुद्रा लक्षणम्

मध्यमा-नामिकाभ्यां तु मध्य-पर्वणि देशिकः।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्।७।

नैवेद्य मुद्रा लक्षणम्

उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूल-योगतः।
तत्त्वाख्य मुद्रया देवि नैवेद्यं विनिवेदयेत्।८।

गरुडमुद्रा लक्षणम्

मिथ-स्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टा-वङ्गुष्ठकौ तथा।
मध्यमा-नामिके तु द्वौ पक्षाविव विचालयेत्।
एषा गरुडमुद्रा स्याद्विष्णोः सन्तोषवर्धिनी।९।

प्रार्थना मुद्रा लक्षणम्

प्रसृता-ङ्गुलिकौ-हस्तौ मिथः श्लिष्टौ च सन्मुखौ।
कुर्यात्स्वे हृदये सेयं मुद्रा प्रार्थन संज्ञिका।१०।

दहन मुद्रा लक्षणम्

दक्षे कर-तले रक्त-पङ्कजे भास्करं स्मरन्।

द्रव्याणि संस्पृशे-त्तेन मुद्रैषा दहनात्मिका।११।

आप्यायन मुद्रा लक्षणम्

वाम हस्त-तले श्वेत पङ्कजे शशिनं स्मरन्।
द्रव्याणि संस्पृशे-त्तेन मुद्रैषा-प्यायनात्मिका।१२।

चक्र मुद्रा लक्षणम्

स्पष्टौ प्रसारितौ हस्तौ परस्पर नियोजितौ।
भ्रमणा-च्चक्रव-त्तौ तु चक्र-मुद्रेति कीर्तिता।१३।

## (११) अथ पुरुषसूक्त पाठविधिः।

अथ पुत्रकामः शुचिः प्रयतः शुक्लाम्बरधरः श्रीचूर्णयुक्त द्वादश श्वेतोर्ध्व-पुण्ड्रधरः पद्माक्ष-तुलसी-माला-धरः शुद्धा-सना-सीनो न्यासादिकं कृत्वा अहरहः षोडश पुरुष-सूक्तं पठेत्। प्रणवः प्राक् प्रयुञ्जीत। (याज्ञवल्क्य शिक्षा १/१७)

स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णा-नुच्चारयेद् बुधः।
नाभ्या हन्यान्न निर्हन्यन्न गायेन्नैव कम्पयेत्।२१।
सम-मुच्चारये-द्वर्णान् हस्तेन च मुखेन च।२३।
हस्त-भ्रष्टः स्वर-भ्रष्टो न वेद-फल-मश्नुते।२४।
शङ्कितं भीत-मुद्धृष्ट-मव्यक्त-मनुनासिकम्।२६।
काक-स्वरं मूर्ध्नि-गतं तथा स्थान-विवर्जितम्।
विस्वरं विरसञ्चैव विश्लिष्टं विष-माहताम्।२७।
व्याकुलं तालु-हीनं च पाठ दोषाच्चतुर्दश।२८।
हस्त-हीनं तु योऽधीते स्वर-वर्ण-विवर्जितम्।
ऋग्-यजु-र्सामभि-र्दग्धो वियोनि-मुपगच्छति।४०।
स्वर-हीनं तु योऽधीते मन्त्रं वेद-विदो विदुः।
न साधयति यजूंषि भुक्त-मव्यञ्जनं यथा।४१।
ज्ञातव्यश्च तथैवार्थो वेदानां कर्म-सिद्धये।
पाठ-मात्रा-वसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति।४३।(याज्ञवल्क्य शिक्षा)
गीती शीघ्री शिरः कम्पी यथा-लिखित-पाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्प-कण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।।३२।
माधुर्य-मक्षर-व्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लय-समत्वं च षडेते पाठका गुणाः।।३३।(पाणिनीय शिक्षा)



जपे होमे मखे श्राद्धेऽभिषेके पितृ-कर्मणि।
हस्त-स्वरं न कुर्वीत सन्ध्यादौ देव-पूजने।।
उप-स्थाने जपे होमे मार्जने यज्ञ-कर्मणि।
कण्ठ-स्वरं प्रकुर्वीत हस्त-स्वर-विवर्जितम्। (आह्निक सूत्र)

## (१२) अथ शुक्ल यजुर्वेद वर्णनम्

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयं तस्मिञ्छुक्ले याजुषाम्नाये माध्यन्दिनीयके मन्त्रे स्वरप्रक्रिया। (कात्यायन परिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र १)

ॐ मण्डलं दक्षिणमक्षि हृदयं चाधिष्ठितं येन शुक्लानि यजूंषि भगवान् याज्ञवल्क्यो यतः प्राप्तं विवस्वन्तं त्रयी-मयम-र्चिष्मन्तम-भिध्याय माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले स शुक्रिय ऋषि-दैवत-छन्दांस्य-नुक्रमिष्यामः। (१)

इषेत्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वा-नपश्यत्।(सर्वानुक्रमणी १/२)

इमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्ये-नाख्यायन्ते। (बृहदारण्यक उप.६/६/५)

ईशावास्य-बृहदारण्य-जाबाल-परमहंस-सुबाल-मन्त्रिका-निरालम्ब-त्रिशिखी-ब्राह्मण-मण्डलब्राह्मणा-द्वयतारक-पैङ्गल-भिक्षु-तुरीयातीता-ध्यात्म-तारसार-याज्ञवल्क्य-शाट्यायनी-मुक्तिकानां शुक्ल-यजुर्वेद गताना-मेकोनविंशति संख्यकाना-मुपनिषदां पूर्णमद इति शान्तिः। (मुक्तिकोपनिषद् १/२/२)

अयात-यामानि तु भानु-गुप्तान्यन्यानि जाता-न्यति-नीरसानि।
यजूंषि तेषामथ याज्ञवल्क्यो ह्ययात-यामानि रवे-रवाप।(देवी भागवत पुराण)
शक्र सोमाग्नि रुद्राश्च विश्वेदेवा-स्त्रिलोचनः।
विधाता शंख-पाणिश्च तथा सप्तर्षयोऽमलाः।(वायु पुराण)
मृकण्ड कपिल व्यास याज्ञवल्क्य पराशराः।
वाल्मीकि र्नारदोऽगस्त्य इत्येते वाजि-शाखिनः।
वाजि-विप्र-विशेषेण श्राद्ध-कर्म निरन्तरम्।
शुक्लाः प्रशस्ताः कृष्णस्तु यजु-रुक्त-निषेधतः।(होलि भाष्य)
तस्मात् कव्यानि हव्यानि दातव्यानि द्विजातये।
वाजिने दत्तमेकं तु तत्कोटि-गुणितं भवेत्।
यजुर्वेद महा-कल्प-तरोरे-कोत्तरं शतम्।
शाखास्तत्र शिखाकारा दशपञ्चाथ शुक्लगाः।(बृहन्नारदीय पुराण)

तत्रापि मुख्यं विज्ञेयं शाखा माध्यन्दिनी यजुः।
माध्यन्दिनी तु या शाखा सर्व-साधारणी हि सा।
तामेव च पुरस्कृत्य वशिष्ठेन प्रभाषितम्।(कल्पद्रुम)
यजुर्वेदस्य मूलं हि भेदो माध्यन्दिनीयकः।
सर्वानुक्रमणी तस्याः कात्यायन कृता तु या।(होलि भाष्य)
माध्यन्दिन यजुर्वेदे खं ब्रह्मान्त-मुदाहृतम्।
तारपूर्वं हि त्रिगुणं नान्य शाखासु मुख्यतः।(गुह्यमाला)
समाप्य चोत्तरादि-र्यन्मन्त्र-ब्राह्मणयो-र्द्विजाः।
ॐ खं ब्रह्मेति योध्यायन् दर्शक-श्चोप-वेधसः।(पराशर स्मृति)
ओङ्कार-स्त्रिगुणः प्रोक्तः खं ब्रह्म त्रिगुणं तथा।
माध्यन्दिनीय शाखानां यजुर्वेदे पठन्ति हि।।
शुक्ल कृष्ण-मिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनेयं तु कृष्णं स्यात्तैत्तिरीयकम्। (प्रतिज्ञासूत्र भाष्य)
बुद्धि-मालिन्य-हेतुत्वा-त्तद्यजुः कृष्ण-मीर्यते।
व्यवस्थित प्रकरणा-त्तद्यजुः शुक्ल-मीर्यते।

## अष्टविध वेद पाठः।

जटा माला  शिखा रेखा ध्वजो दण्डोरथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः।(याज्ञवल्क्य शिक्षासूत्र)
अनुलोम-विलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत्क्रमः।
विलोमे पद-वत्सन्धि-रनुलोमे यथा-क्रमम्।।
ब्रूयात् क्रम विपर्यासा-वर्धर्चस्या-दितोऽन्ततः।
अन्तं चादिं नयेदेवं क्रमं मालेति कीर्त्यते।।
पादोत्तरां शिखामेव शिखामार्याः प्रचक्षते।
क्रमाद् द्वि त्रि चतुः पञ्च पद-क्रम-मुदाहरेत्।।
पृथक् पृथ-ग्विपर्यस्य लेखा-माहुः पुनः क्रमात्।
ब्रूयादादेः क्रमं सम्यगन्ता-दुत्तारयेदिति।
वर्गे वा ऋचि वा यत्र पठनं सध्वजः स्मृतः।
क्रम-मुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रम-मुत्तमम्।



अर्ध-र्चा देव-मेवोक्तः क्रम-दण्डो विधीयते।
पादशोऽर्धर्चशो वापि सहोक्त्या दण्डवद्रथः।।
अन्त-क्रमं पठेत् पूर्व-मादि पर्यन्त-मानयेत्।
आदि-क्रमं नयेदन्तं घन-माहु-र्मनीषिणः।। इति।।।

**अथ माध्यन्दिनी शाखा प्रशंसा।**

सन्मूलो यजुराख्य वेद-विटपी जीयात्सा माध्यन्दिनिः,
शाखा यत्र युगेन्दु-काण्ड-सहिता यत्रास्ति सा संहिता।
यत्रा-भ्राब्धि-लता विभान्ति शर-शैलामेन्दुभी ऋग्दलैः,
पञ्च-द्वी-षु-नभोऽङ्क वर्ण-मधुपैः खाग्न्यर्क गुङ्गुञ्जितैः।।

## (१३) अथ पुत्रार्थ विभाण्डक चरु विधिः।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विधिं पावन-मुत्तमम्।
अस्मा-त्तातस्य तातोऽयं रघु-पौत्राय धीमते।। (बृहत्पाराशर स्मृति ९/२८९)
अनपत्यस्य पुत्रार्थं कुर्याद्वै भाण्डिकस्तुयम्।
सहस्रशीर्ष सूक्तस्य विधानं चरु-पाक-कृत्।२९०।
यैर्यै-र्नृपैः कृतं पूर्व-मन्यैरपि द्विजोत्तमैः।
सिध्यन्ति सर्व मन्त्राणि विधि-विद्भि-र्द्विजोत्तमैः।२९१।
उपासितानि सद्-भक्त्या श्रोत्रियैः श्रुति पारगैः।
आत्म-विद्भि-र्निराहारै-र्वेदिभि-र्मन्त्रवित्तमैः।२९२।
क्रियमाणाः क्रियाः सर्वाः सिद्ध्यन्ति ब्रह्मचारिभिः।
न पाठान्न धनात् स्नाना-न्नात्मनः प्रतिपादनात्।२९३।
प्राक्तनात् कर्मणः पुंसां सर्वा-भवन्ति सिद्धयः।
शुक्ल-पक्षे शुभे वारे शुभ-नक्षत्र गोचरे।२९४।
द्वादश्यां पुत्र-कामाय चरुं कुर्वीत वैष्णवम्।
दम्पत्यो-रुपवास-श्च-ह्येकादश्यां सुरालये।२९५।
मन्त्रैः षोडशभिः सम्यगर्च यित्वा जनार्दनम्।
चरुं पुरुष सूक्तेन श्रपयेत् पुत्र-काम्यया।२९६।
प्राप्नुया-द्वैष्णवं पुत्रं चिरायुः सन्तति क्षमम्।
द्वादशीं द्वादशी सम्य-ग्विधिव-न्निर्व पे-च्चरुम्।२९७।

यः करोति इहो-पास्तिं विष्णोस्तु परमं पदम्।
हुत्वाज्यं विधिवत् पूर्व-मग्नौ षोडशभि-स्ततः।२९८।
समिधोऽश्वत्थ-वृक्षस्य हुत्वाज्यं जुहुयात् पुनः।
उपस्थानं ततः कृत्वा ध्यात्वा च मधुसूदनम्।२९९।
हविर्होमं पुनः कृत्वा जुहुयाच्च घृता-हुतीः।
हविशेषं नमस्कृत्य नारी नारायणं प्रति।३००।
संप्राश्य च हविः शेषं लब्धा-शीश्च वसेद् गृहे।
ततः कृत्वा त्विदं कर्म कर्त्तव्यं द्विजतर्पणम्।३०१।
असूता मृत-पुत्रा च या च कन्याः प्रसूयते।
क्षिप्रं सा जनयेत् पुत्रं पाराशर वचो यथा।३०२।
होमान्ते दक्षिणां दद्या-द्धेनुं वास-स्तथा तिलान्।
भूमिं हिरण्य रत्नानि यथा सम्भव-मेव च।३०३।
यः सिद्ध-मन्त्रे सततं द्विजेन्द्राः सम्पूज्य विष्णुं विधिवत् सुतार्थी।
इदं विधानं विदधाति सम्यक् स पुत्र-माप्नोति हरेः प्रसादात्।३०४।
।इति।

## (१४) अथ ऋष्यशृङ्गोक्त सन्तान यागः।

**ऋषय ऊचुः**-सूत सूत महाप्राज्ञ सर्वशास्त्र विशारद।
सन्तान यागं नो ब्रूहि को विधिस्तत्र किं फलम्।१।
**सूत उवाच**-श्रृणुध्वं ऋषयः सर्वे पुंसूक्त विधि-मादरात्।
पूर्वं सनत्कुमारेन पृष्टो विष्णुः सनातनः।२।
उक्तवान् पौरुषं होम विधानं पुत्र सत्फलम्।
वशिष्ठा-योदितं तेन चात्रेयं सोब्रवी-दिदम्।३।
बोधनाय तेनोक्तं स स्वशिष्येभ्य उक्तवान्।
वक्ष्यामि तदहं सम्यक् श्रृणुध्वं मुनि-सत्तमाः।४।
पुत्र-प्रद-मपुत्राणां जयदं जय-कामिनाम्।
श्रीदं श्री-कामिनां पुंसां राज्यदं राज्य-कामिनाम्।५।
धान्यदं धान्य-कामानां कीर्तिदं कीर्ति-कामिनाम्।
मुक्तिदं मुक्ति-कामानां मोक्षदं मोक्ष-कामिनाम्।६।
बहुना कि-मिहोक्तेन सर्व सिद्धि-प्रदं नृणाम्।



ये कुर्वन्ति नर श्रेष्ठाः पुंसूक्त हवनं ततः।७।
सन्तान फलदं नृणां तेषां श्री-भूमि संयुतम्।
सन्तुष्टो भगवान् विष्णुः दर शार्ङ्ग गदाब्जभृत्।८।
ददाति स तनूजा वै स्वतुल्या-नचिरेण सः।
यद्य-दिच्छन्ति मनुजाः तत्त-न्नून-मवाप्नुयुः।९।
**ऋषय ऊचुः**-व्यास शिष्य महाबाहो सूत तत्वार्थ-वित्तम।
विधानं कर्मणो ब्रूहि पुंसूक्त हवनस्य भो।१०।
एवमुक्तो मुनिगणैःविधिं सूत उदाहरत्।
आरभ्य शुक्ल प्रथमां कृष्ण-प्रतिपदन्ततः।११।
षोडश-श्चापि घस्रेषु चैकैकस्मिन् सहस्रकम्।
पायसै र्जुहुयु-र्विप्राः वित्त-शाठ्य-विवर्जिताः।१२।
पुंसूक्तो-क्ताभि-रेताभिः ऋग्भिः षोडशभि-स्ततः।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् यथा-विधि विधानतः।१३।
सन्तानं विष्णु-सदृश-मवाप्नुया-दचिरेण वै।
ताव-द्धोम-क्रिया-शक्तौ द्वादशाहं हुवेद् व्रती।१४।
तद-शक्तो षड्दिनं वा वित्त-शाठ्यं न कारयेत्।
उत्तमं षोडश-दिनं द्वादशाहं तु मध्यमम्।१५।
अधमं षडहं प्रोक्तं शक्तौ कुर्यात् क्रियोत्तमम्।
शक्तौ सत्यान्तु यो मूढः कारयेन् मध्यमाधमौ।१६।
नावाप्नोति स सन्तानं विष्णु-प्रीतिं न संशयः।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन कारयेत् उत्तमं सुधीः।१७।
होमा-शक्तौ जपेत्तावत् तद-शक्तौ सकृद्धनेत्।
विष्णु ऋक्षे वा मासि द्वादश्यां सित-कृष्णयोः।१८।
यदा कदा वा पुं यज्ञे मानसं वै प्रवर्तते।
तदारभ्य दिनेष्वेषु षोडशेष्वपि तं यजेत्।१९।
द्वादश्यां वा यथा विष्णु तारे वा षोडशं दिनम्।
भवेत्तथा पुं हवनं आरभेत विचक्षणः।२०।
विशेषतो गर्भ चिह्ने सम्प्राप्ते तु तृतीयके।
मासि षोडश-घस्रेषु कुर्यात् पुं हवनं बुधः।२१।

एवं कुर्याच्चतुर्थे वा पञ्चमे मासि वा ततः।
महा-विष्णु-प्रसादेन पुत्र-प्राप्ति-र्भवेद् ध्रुवम्।२२।
ऊर्ध्वं न कुर्याद् गर्भस्थ शिशो-स्त्री पुंस लक्षणात्।
ततः परं कृता-द्धोमात् शिशो-रायुष्य धी-र्गुणाः।२३।
भवेयुः सर्व-मासेषु कुर्यात् पुंसूक्त होमकम्।
स्त्री जन्म वा पुत्रजनि-र्यथा चिह्नं तथा भवेत्।२४।
सा प्रजा-युष्य-धैर्यादि सर्व लक्षण संयुता।
एतत् पुं-हवनात् पूर्व-माचार्यात् पुत्र सिद्धये।२५।
सन्तान-गोपालका-ख्यं मन्त्रं स्वीकृत्य चारभेत्।
आचार्य सोमयाजी चेत् श्रोत्रियो वापि कर्मठः।२६।
वृद्धो वा वयसा हीनः स एवा-चार्यको भवेत्।
इत्थं षोडश-घस्रेषु गतेषु च ततः परम्।२७।
यावत् पञ्चम-मासं वै ताव-दभ्यर्च्य केशवम्।
नवनीत-मये यन्त्रे नित्यं साष्ट-सहस्रकम्।२८।
जपित्वा प्राशयेत् सद्यो गर्भिणी सुत-माप्नुयात्।
जपेत्ततः परमपि गर्भस्थ तनयस्य हि।२९।
कुर्यात् प्रजादि वृद्ध्यर्थ-मासृति द्विज-सत्तमाः।
त्रिरसा वृत्ति-सहितं जपं कुर्यात् दिने दिने।३०।
प्रातः स्नानादिकं कृत्वा ध्यात्वा मनसि माधवम्।
गणेश-मादौ सम्पूज्य प्रत्यूह-स्योप-शान्तये।३१।
ब्राह्मणाना-मनुज्ञां च कृत्वा कर्म समाचरेत्।
अनुज्ञायां षोडश वा द्वादशाष्टौ च वापि षट्।३२।
गृहीत्वा चतुरो वा कृच्छ्रन्त-स्यार्धकं पुनः।
दद्यादा-चार्य-वर्याय ह्यर्थ-मन्यद् द्विजन्मनाम्।३३।
सङ्कल्प्य कामान्विविधान् मनो-वाक्कायकानपि।
पुण्याहं तु ततः कृत्वा ह्याचार्यं वृणुयात्ततः।३४।
स्वकर्म निरतं शान्तं श्रोत्रियं कर्म-कोविदम्।
सन्तुष्ट मानसं सम्यक् दरिद्रञ्च कुटुम्बिनम्।३५।
सोमया-ज्युत्तमः प्रोक्तः तदलाभे पुरोक्तकः।



दुकूल वस्त्र युगलं दक्षिणा कुण्डलादिभिः।३६।
आचार्यं पूर्वमभ्यर्च्य वृणुयाद्दर्भ-दानतः।
तेनैव कारयेत् कर्म पुं सूक्त हवनादिकम्।३७।
कर्म ध्यानमना भूत्वा ह्याचार्य वशगो गृही।
आचार्यो यजमानेन युक्तः षड्भिरथाष्टभिः।३८।
चतुर्भिर्वाथ ऋत्विग्भिः पुं हवं कर्म चारभेत्।
सङ्कल्पमादौ कुर्वीत कलशाचार्यादिकं ततः।३९।
स्वगृह्योक्त विधानेन कुर्यादाचार्य गृह्यतः।
उल्लेखन प्रणीतान्तं कृत्वा कर्म ततः परम्।४०।
ततः पुरुष सूक्तेन न्यसित्वा स्व-शरीरके।
होम-कुण्ड पुरो भागे कुम्भे विष्णुं समर्चयेत्।४१।
द्रोण द्वयमितं धान्यं तदर्धं तण्डुलं ततः।
माषान् तदर्धं तस्मादर्धं तिलात् तत्र लिखेत्कजम्।४२।
उपर्युपरि निक्षिप्य क्रमात्तत्र घटं न्यसेत्।
द्रोण द्वयमितं कुम्भं त्रियुतान्त-मयं तु वा।४३।
पञ्च-पल्लव-तत्वाद्यै-र्नारिकेल-फलेन च।
दश-हस्त प्रमाणेन दुकूलेन च वेष्टयेत्।४४।
निधाय प्रतिमां तत्र दश-निष्क सुवर्णतः।
निष्क स्वर्ण-कृतां वापि चतु-र्हस्तां मनोहराम्।४५।
विष्णु-रूपां च निर्माय श्रीरूपाञ्च द्वि-बाहुकाम्।
या चान्विता कुम्भे वै निधाय पृथ-गर्चयेत्।४६।
पृथक् पूजा क्रिया शक्त्या वैकस्मिन्वाश्रियाज्यया।
सहितं विष्णु-मभ्यर्चं ऋग्भिः षोडशभिः क्रमात्।४७।
पृथक् कृतायां पूजायां तत्र भू पूजनं न हि।
श्री सूक्तेन श्रियाः पूजां कुर्यात् सन्तान सिद्धये।४८।
यजमानं सपत्नीकं संहृत्युत्पत्ति-संस्थितीन्।
न्यासान् पुरुष सूक्तेन षोडशर्चेन वै द्विजाः।४९।
**ऋषय ऊचुः**-सूत न्यास विधिं न्यास विधानं च वद प्रभो।५०।
**सूत उवाच**-अस्य श्री षोडशर्चस्य पुं सूक्तस्य महर्षयः।५१।

अन्तर्यामी च भगवानृषि-र्नारायण: स्मृत:।
छन्दोऽनुष्टुब् रमा भूमि: पुम्विष्णु-र्देवता महान्।५२।
बीजं पुरुष एवेति नान्य: पन्थास्तत: परम्।
एतावान् कीलकं प्रोक्तमिष्टार्थे विनियोगक:।५३।
अतो देवा इति च शक्यो जप्त्वा तत: क्रमात्।
पुरुषाय महद् ब्रह्म विष्णु रुद्राखिलेषु वै।५४।
पुरुषं योजयेत् पश्चात् चतुर्थ्यन्तेन विन्यसेत्।
अङ्गुष्ठादीन् हृदादीन् च न्यसित्वा ध्यानमाचरेत्।५५।
**गोक्षीराभं पुण्डरीकाक्षं चक्राब्जाभ्यां शंख कौमोदकीभ्याम्।**
**श्रीभूमि भ्यामर्चितं योगपीठे ध्यायेद्देवं पूजयेत् पौरुषेण।५६।**
इति ध्यात्वा महाविष्णुं तत्पश्चात् न्यासमाचरेत्।
वामाङ्काद्यङ्काचरण जानूरु युग्मेषु नाभौ।
हृत्कण्ठां सद्वितय वदना क्षुत्तमाङ्गेषु मन्त्री।५७।
पुं सूक्तस्थै र्न्यसितु-मनुवित् संहृतौ शीर्ष पूर्वम्।
स्पृष्टो नाभि प्रभृति हृदयान्तं स्थितौ च क्रमेण।
इति न्यासत्रयं कृत्वा ह्याचार्यस्योपदेशत:।५८।
वितते कदली पत्रे साग्रे निम्नादिवर्जिते।
नवनीतं प्रसार्याथ तत्र पुं सूक्त यन्त्रकम्।५९।
लिखित्वा तत्र पुरुषं श्रीभूमि सहितं यजेत्।
नवनीत-मये यन्त्रे यजमानोऽर्चये-द्धरिम्।६०।
पुं सूक्तस्थै: सुमनुभि: षोडशै-रुपचारकै:।
**ऋषय ऊचु:**-व्यासदेशिक तद्यन्त्र विधानं ब्रूहि तत्त्वत:।६१।
इत्युक्तो मुनिभि: सम्यक् यन्त्रं ब्रूते महामुनि:।
**श्री सूत उवाच**-शृणुध्वं भो योगि-वर्या वच्मि यन्त्रं सुत-प्रदम्।६२।
षट्कोण-कर्णिका-मध्ये तारं साध्य-समन्वितम्।
सुदर्शन षडर्णञ्च षट्कोणे-ष्वस्य सन्धिषु।६३।
तदङ्गानि चतुष्पात्रे केशरेषु क्रमेण च।
गोपालक चतुर्वर्णं मन्त्रस्यै-कैक-मक्षरम्।६४।
दलेषु द्वादशार्णस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि तु।


अष्टपत्रे केशरेषु चाष्टार्णै चैकमक्षरम्।६५।
नृसिंहा-नुष्टुभो वर्णान् चतुर-श्चतुरस्तथा।
सुदर्शन-द्व्यष्ट-वर्णान् केशरे षोडशच्छदै:।६६।
ऋचां पुरुष सूक्तस्य क्रमात् षोडशकं बहि:।
मात्रकोर्णो-र्ल्लसद्वृत्तं भूपुरास्त्रस्त्र-तारकम्।६७।
यन्त्रं पुरुष-सूक्तस्य पुत्रायु-कीर्ति-वर्द्धनम।
सर्व पापहरं श्रीदं धर्मार्थ सुख मोक्षदम्।६८।
आद्यया-वाहयेद्देव-मासनं तु द्वितीयया।
पाद्यं तृतीयया दद्यात् चतुर्थ्यार्घ्यं समाचरेत्।६९।
पञ्चम्या-चमनीयं तु षष्ठ्या स्नानं तत: परम्।
सप्तम्या वस्त्र-दानं वै चाष्टम्या तूपवीतकम्।७०।
दद्यान्नवम्या गन्धं तु दशम्या पुष्पमर्पयेत्।
एकादश्या तथा धूप द्वादश्या तु प्रदीपकम्।७१।
त्रयोदश्यातु नैवेद्यं चतुर्दश्या कुसुमाञ्जलिम्।
प्रदक्षिणं पञ्चदश्या षोडश्यो-द्यापन-क्रमात्।७२।
प्राण प्रतिष्ठां यन्त्रेण पुरोधा स्तदनन्तरम्।
अग्ना-वभ्यर्चये-द्विष्णुं पूर्वोक्ते-नैव वर्त्मना।७३।
स्वयं होमे-स्ववह्नि: स्यादन्य होमे तु लौकिक:।
ताभि: षोडशभि: पूर्वं हुवे-दाज्या-हुती: क्रमात्।७४।
पक्वा-हुती-स्तत-स्ताभि: अवदान-विधानत:।
पुरोऽनुवाक्ये-नैवात्र जुहुयात् सर्पि-राहुति:।७५।
समिधो जुहुया-त्ताभि: अश्वत्था: क्रमशो-द्विजा:।
एकैक होमत: पश्चात् अग्ने-र्दक्षिणतो द्विजा:।७६।
संस्थाप्य दर्भान् प्रागग्रान् एकत्रे-मानासनच्छदान्।
अष्टौ संस्थाप्य चान्यत्र तथो-दगप-वर्गत:।७७।
अश्वत्थ पत्रमेकैकं स्थापयेत् ऋग्जप: क्रमात्।
ताभि-राज्याहुती: कुर्यात् एकैकस्या अथाहुते:।७८।
क्रमा-दश्वत्थ पत्रेषु स दण्डेषु यथा क्रमम्।
ताभि: षोडशभि-श्चग्भि: उपस्तीर्यान् महर्षय:।७९।

हस्तेन जुहुयात् पत्रे होम-मर्धमतः परम्।
क्रमा-दश्वत्थ पत्रेषु निक्षिपेत क्रमात् पुनः।८०।
ताभि-राज्या-हुतीः कुर्यात् एकैकस्या तथाहुतेः।
पश्चात् क्रमाद् ऋक् जपतः पायसान्य-भिधारयेत्।८१।
चल-च्छप-च्छदैः चर्ग्भिः पिधेयात् पायसान्यथा।
आचार्यो यजमानेन सार्ध-मृत्विग्भि-रप्यथ।८२।
जुहुयात् पायसं वह्नौ अष्टोत्तर-सहस्रकम्।
षष्ठ्या वृत्त्या त्र्यधिकया षोडशाना-मृचां क्रमात्।८३।
अष्टाधिक सहस्रं तु भवेत् संख्या द्विजर्षभाः।
ततः स्विष्ट-कृतो भूत्वा रुद्रायाणा-मथो जपान्।८४।
अभ्यातानां राष्ट्रभूतः प्रजापति-मतः परम्।
व्यस्ताश्च ज्याहती-र्हुत्वा यदस्येति च मन्त्रकम्।८५।
अस्मिन् कर्मण्य-नाज्ञात प्रायश्चित्तादिकं पुनः।
पूर्णाहुति-मथो हुत्वा तदन्ते गां सतर्णकाम्।८६।
आचार्याय वरं दद्यात् होम-शेषं समापयेत्।
पुनः पूजां च नैवेद्यं पायसं-मोदका-दिकम्।८७।
पञ्चास्य दीपं पश्चात्तु नीराजन-मतः परम्।
प्रदक्षिणा नमस्कारः प्रार्थयेद् वाञ्छितं पुनः।८८।
कुम्भादु-द्वासये-द्देवं यन्त्रा-न्नोद्वासये-द्धरिम्।
सर्वदा श्रावणे मासे पुं सूक्त हवनं द्विजाः।८९।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् यथा-शक्ति ततः परम्।
आचार्याय विशेषेण गोद्वयं वत्स संयुतम्।९०।
एकैकस्मिन् दिनेत्येयं दक्षिणा दीयतां बुधैः।
आचार्यो यदि तुष्टः स्यात् सर्व-शान्ति-र्भविष्यति।९१।
आचार्य दक्षिणा तस्माद् दीयतां प्रतिवासरम्।
कुम्भो-पकरणं सर्व-माचार्याय निवेदयेत्।९२।
हरि-लक्ष्मी प्रतिमयो र्नक्तं कुर्यात्तथार्चनम्।
तप्त-क्षीरं तु नैवेद्यं प्राशये-द्दम्पती च तत्।९३।
होमान्ते प्रतिमा-युग्मं स-वस्त्रश्चैव दक्षिणाम्।



आचार्याय सदीपं वै दद्यात् सत्पुत्र सिद्धये।९४।
एतत्कर्म द्विधा प्रोक्तं समष्टि-व्यष्टि-भेदतः।
समष्टौ षोडशिनमेकं कर्मं तथार्त्विजः।९५।
आषोडशिनं कुम्भे माघे क्षिप्तं दिने तु तत्।
कुम्भान्नो-द्वासये-द्देव-मुत्थानं षोडशे दिने।९६।
सम्पात प्रासनं चापि ऋत्विगाचार्य दक्षिणा।
अनुज्ञा सकृदेव स्यात् कुम्भ-रत्नं च तत्समम्।९७।
ऋत्विजां यजमानस्य तत्पत्न्या देशिकस्य च।
कर्ममध्ये तु नाशौचमन्त एव तु तद् भवेत्।९८।
व्यष्टौ प्रतिदिनं कुर्यादनुज्ञां गणपूजने।
एकं कृच्छ्र मनुज्ञायां तदाचार्याय दीयताम्।९९।
कुम्भरत्नं स्वर्ण पुष्प-मृत्वि-गाचार्य दक्षिणाम्।
सम्पातः प्राशनं चापि नित्यं कुर्या-दतन्द्रितः ।१०।
सम्पात प्राशनादेव गर्भ वृद्धि-र्दिने दिने।
तस्मादिदं कर्म शिष्टाः कुर्वन्ति व्यष्टि रूपतः।१०१।
कर्मारम्भ-स्तत्समाप्ति र्वैतद् दिवसे भवेत्।
क्रियामध्ये तु तत्कर्तु-स्तत्पत्न्या देशिकस्य च।१०२।
आशौचा-द्यन्तराय-श्चेत् स्विष्टं कर्म तदन्ततः।
कुर्यादतो व्यष्टिरेव कार्या सन्तान सिद्धये।१०३।
यजमानोश्च तत्पत्न्यै क्रमात् सम्पात-मादितः।
दद्यात् ऋग्जप-पूर्वं तु सा तत्प्राश्य ततः परम्।१०४।
तेनै-वाश्वत्थ-पत्रेण कुम्भ-तोयं पिबेत् क्रमात्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यात् सम्पात-प्राशनं तथा।१०५।
प्रतिमा-युगलश्चैव कुम्भ-युग्मं सदक्षिणम्।
वस्त्र-युग्मं च विप्रेन्द्रा होमान्ते षोडशे दिने।१०६।
आचार्याय वै दद्यात् जीव-सन्तान सिद्धये।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् षड्रसैः क्रोध वर्जितः।१०७।
आशीर्वादं भोजनान्ते कुर्याद् ब्राह्मण दक्षिणाः।

यथा शक्ति दिशेत् पश्चा-दाचार्याय विशेषतः।१०८।
सम्भावनां तथा तोषं गो वस्त्रादि समन्वितम्।
छन्दोगानां बह्वृचानां कुर्यात् स्विष्ट कृदादयः।१०९।
औत्तरं तन्त्रके स्व-स्व सूत्रेणैव मुनीश्वराः।
अथवार्चाय सूत्रेण कुर्यात् पुं हवनं सुधीः।११०।
दिनानि षोडशैवं वै कृत्वा पश्चात् परेऽहनि।
कुर्या-द्धोमं विना सूर्यं प्रतिमां च विना मुदा।१११।
गोधूम तण्डुले प्रस्थ युग्मके सूर्य पूजनम्।
त्रिकाल पूजा तत्पश्चा-त्तद्दानञ्च समाचरेत्।११२।
प्रस्थ-द्वय-मिते जीव ध्याने धेनुं निधाय च।
सवत्सां पूजये-द्विप्राः सन्तान तिल होमवत्।११३।
ततो नूतन वस्त्राणि जाया पति धृतानि वै।
हरिद्राक्तानि दीपार्घ्य पात्र युक्तानि मोदतः।११४।
आचार्यायैव देयानि नान्यस्मै पुत्र सिद्धये।
आचार्येणैव वैलेख्यं नित्यं पुंसूक्त- यन्त्रकम्।११५।
अन्येन लिखितं चेत्स्यात् सह पत्न्यात्म-नाशनम्।
उत्तानपादश्च महानिदं कृत्वाप्तवान् ध्रुवम्।११६।
मार्कण्डेयं च तत्तात जयन्तं च शचीपतिः।
कीर्तिमान् तनयं लेभे चैतत् कर्म-प्रभावतः।११७।
बहुनात्र किमुक्तेन संग्रहेण वदाम्यहम्। मरीच्यादि मुनिश्रेष्ठा राजानश्चाप्यजादयः।११८।
लब्ध्वाच्युत समान् पुत्रान् लेभिऽन्तेऽच्युतालयम्।
ऋष्यशृङ्गेण कथितमिदं पुंसवनं नराः।११९।
ये कुर्वन्ति नर-श्रेष्ठास्ते भवेयुः सपुत्रिणः।
लब्ध्वेह सकलान् भोगान् प्राप्नुयु-र्हरि-मन्ततः।१२०।
इत्यादि सनत्कुमार संहिताया-मुत्तर-भागे ऋष्यशृङ्गोक्त सन्तान-याग-विधि-र्नामा-ष्ट-सप्तति तमोऽध्यायः।

## (१५) अथ ऋग्विधानोक्त सन्तान यागः।

शुक्ल पक्षे शुभे वारे सु-नक्षत्रे सु-गोचरे।
द्वादश्यां पुत्र-कामाय चरुं कुर्वीत वैष्णवम्।१।



दम्पत्यो-रुपवासः स्या-देकादश्यां सुरालये।
ऋग्भिः षोडशभिः सम्य-गर्चयित्वा जनार्दनम्।२।
चरुं पुरुष सूक्तेन श्रपयेत् पुत्र-काम्यया।
प्राप्नुया-द्वैष्णवं पुत्र-मचिरात् सन्तति-क्षमम्।३।
द्वादश द्वादशीः सम्यक् पयसा निर्वपे-च्चरुम्।
यः करोति हयस्थस्या-द्याति विष्णोः परं पदम्।४।
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यगृग्भिः षोडशभि-र्बुधः।
कृताञ्जलि-पुटो भूत्वा स्तवन्ताभिः प्रयोजयेत्।५।
केशवं मार्गशीर्षे तु पौषे नारायणं तथा।
माधवं माघ मासे तु गोविन्दं फाल्गुने पुनः।६।
चैत्रे चैव तथा विष्णुं वैशाखे मधुसूदनम्।
ज्येष्ठे त्रिविक्रमं विद्या-दाषाढे वामनं विदुः।७।
श्रावणे श्रीधरं विद्याद् हृषीकेशं ततः परे।
आश्विने पद्मनाभं तु दामोदरं च कार्तिके।८।
द्वादशैतानि नामानि ऋष्यशृङ्गोऽब्रवीन् मुनिः।
पूजयेन् मानसभिः सर्वान्कामान्समश्नुते ।९।
आयुष्मन्तं सुतं सूते परमेधा समन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं धार्मिकं सात्विकं तथा।१०।
समिधोऽश्वत्थ-वृक्षस्य हुत्वाग्निं जुहुयात् पुनः।
उपस्थानं हुताशस्य ध्यात्वार्च्य मधुसूदनम्।११।
हवि-र्होमं ततः कुर्यात् प्रत्यृचं वाग्यतः शुचिः।
सूक्तेन जुहुया-दाज्य-मादावन्ते च पूर्ववत्।१२।
हविः शेषं नमस्कृत्य नारी नारायणं पतिम्।
भक्षयित्वा हविः शेषं लब्धाशीः संविशेत् क्षणम्।१३।
ततस्तु कृत्वेदं कर्म कर्त्तव्यं द्विज तर्पणम्।
द्वितीयं स्त्री निवर्तेत यावद् गर्भं च विन्दति।१४।
अपुत्रा मृत-पुत्रा वा या च कन्या प्रसूयते।
क्षिप्रं सा जनयेत् पुत्रं ऋष्यशृङ्गो यथाऽब्रवीत्।१५।
अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णो-रमित-तेजसः।

यत्कृत्वा मुनयः सर्वे ब्रह्म-निर्वाण-माप्नुयुः।१६।
अप्स्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च।
षट्स्वेतेषु हरेः सम्य-गर्चनं मुनिभिः स्मृतम्।१७।
अग्नौ क्रियावतां देवो दिवि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमा स्वल्प बुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः।
तस्य सर्व-गतत्वाच्च स्थण्डिले भावितात्मनाम्।१८।
दद्यात् पुरुष-सूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा।
अर्चितं स्याज्जग-दिदं तेन सर्वं चराचरम्।१९।
आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्तस्य देवता।
पुरुषोऽथ जगद्बीज-मृषि-र्नारायणः स्मृतः।२०।
नारायण महाबाहो शृणुष्वैकं महाप्रभो।
वक्ष्ये पुरुष-सूक्तस्य विधानं त्वर्चनं प्रति।२१।
अग्नि कार्यं जपविधिं स्तोत्र-ञ्चैव तदात्मकम्।
स्नात्वा यथोक्त विधिना प्राङ्मुखः शुद्ध-मानसः।२२।
प्रथमां विन्यसे-द्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे।
तृतीयां वाम पादे च चतुर्थीं दक्षिणे न्यसेत्।२३।
पञ्चमीं वाम जानुनि षष्ठीं वै दक्षिणे न्यसेत्।
सप्तमी वाम-कुक्षौ तु अष्टमीं दक्षिणे न्यसेत्।२४।
नवमी नाभि देशे तु दशमीं हृदये न्यसेत्।
एकादशीं कण्ठ-देशे द्वादशीं वाम-बाहुके।२६।
त्रयोदशीं दक्षिणे च आस्ये चैव चतुर्दशीम्।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं चैव षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत्।२७।
एवं न्यास विधिं कृत्वा पश्चात् पूजां समारभेत्।
यथा देहे तथा देवे न्यासं कृत्वा विधानतः।२८।
आद्यया-वाहयेद्देव-मृचा तु पुरुषोत्तमम्।
द्वितीय-यासनं दद्यात् पाद्यं चैव तृतीयकम्।२९।
अर्घ्यं चतुर्थ्यां दातव्यं पञ्चम्या-चमनीयकम्।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव तु।३०।
यज्ञोपवीत-मष्टम्या नवम्या चानुलेपनम्।



पुष्पं दशम्या दातव्य-मेकादश्या तु धूपकम्।३१।
द्वादश्या दीपकं दद्यात् त्रयोदश्या निवेदनम्।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणाम्।३२।
षोडश्यो-द्वासनं कुर्या-द्देवदेवस्य चक्रिणः।
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्या-दाचमनीयकम्।३३।
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा जपं कुर्यात् समाहितः।
यथाशक्ति जपित्वा तु सूक्तं तस्मै निवेदयेत्।३४।
देवस्य दक्षिणे पार्श्वे कुण्डं स्थण्डिलमेव वा।
ततः कारयेत् प्रथमेनैव द्वितीयेन तु प्रोक्षणम्।३५।
तृतीय-याग्नि-मादध्या-च्चतुर्थ्या च समिन्धनम्।
पञ्चम्या-ज्यस्य श्रपणं चरोश्च श्रपणं तथा।३६।
षष्ठेनै-वाग्नि-मध्ये तु कल्पयेत् पद्म-मासनम्।
चिन्तये-द्देवदेवेशं कालानल-सम-प्रभम्।३७।
ततो गन्धं च पुष्पं च धूप-दीप-निवेदनम्।
अनुज्ञाप्य ततः कुर्यात् सप्तम्यादि यथा-क्रमम्।३८।
समिध-स्तावतीः पूर्वं जुहुया-दभि-धारिताः।
ततो घृतेन जुहुया-च्चरुणा च ततः पुनः।३९।
एवं हुत्वा तत-श्चैव-मनुज्ञाप्य यथा-क्रमम्।
अग्ने-र्भगवत-स्तस्य समीपे स्तोत्र-मुच्चरेत्।४०।
जितं ते पुण्डरीकाक्षं नमस्ते विश्व-भावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेस्तु महा-पुरुष पूर्वज।४१।
नमो हिरण्य-गर्भाय प्रधान-व्यक्त- रूपिणे।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्ध-ज्ञान स्वरूपिणे।४२।
देवानां दानवानां च सामान्य-मसि दैवतम्।
सर्वदा चरण-द्वन्द्वं ब्रजामि शरणं तव।४३।
एक-स्त्वमसि लोकस्य स्रष्टा संहारक -स्तथा।
अव्यक्त-श्चानुमन्ता च गुण-माया समावृतः।४४।
संसार सागरं घोर-मनन्त-क्लेश-भाजनम्।
त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः।४५।

न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम्।
तथापि पुरुषा-कारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे।४६।
नैव किञ्चिद-साध्यं ते न च साध्योऽसि कस्यचित्।४७।
कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्य-मुत्तमम्।
योगिनां परमां सिद्धिं विन्दन्ति परमं विद:।४८।
अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन् महाभये।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने परमं पदम्।४९।
कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत।
शरीरे च गतौ वापि वर्तते मे महद् भयम्।५०।
त्वत् पाद-कमलादन्य-न्न मे जन्मान्तरे-ष्वपि।
निमित्तं कुशल-स्यास्ति एवं गच्छामि सद्गतिम्।५१।
ज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञान-मर्जितम्।
जन्मान्तरेऽपि मे देव माभूदस्य परिक्षय:।५२।
दुर्गतावापि जातस्य त्वद्गतो मे मनोरथ:।
यदि नाथं न विन्देयं तावतास्मि कृती सदा।५३।
अकामकलुषं चित्तं मम ते पादयो: स्थितम्।
कामये विष्णु-पादौ तु सर्व-जन्मसु केवलम्।५४।
पुरुषस्य हरे: सूक्तं स्वर्ग्यं धन्यं यशस्करम्।
आत्म-ज्ञानमिदं पुण्यं योग ज्ञान-मिदं परम्।५५।
इत्येव मनया स्तुत्या स्तुत्वा देवं दिने दिने।
किङ्करोऽस्मीति चात्मानं देवायैव निवेदयेत्।५६।
फलाहारो भवेन्मासं पश्यत्या-त्मान-मात्मनि।
फलानि भुक्तो-पसेवन् मास-मद्भिश्च वर्तयेत्।५७।
अरण्य निवसे-न्नित्यं जपन्ने-तमृषिं सदा।
त्रि-स्त्रिषवण-कालेषु स्नायादप्सु समाहित:।५८।
आदित्य-मुपतिष्ठेन सूक्तेना-नेन नित्यश:।
आज्या-हुती-रनेनैव हुत्वैतं चिन्तये-दृषिम्।५९।
ऊर्ध्वं मासात् फलाहारात् त्रिभि-र्वर्षै-र्जये-द्दिवम्।
तद्भक्त-स्तन्मनायुक्तो दशवर्षा-ण्यनन्य-भाक्।६०।



साक्षात् पश्यति तं देवं नारायण-मनामयम्।
ग्राह्य-मत्यन्त यत्नेन त्वष्टारं जगतोऽव्ययम्।६१।
गृहस्थ धर्मे वर्तेत न्याय-वृत्त: समाहित:।
एतदेवं चिन्तयेत नारायण-मनामयम्।६२।
अति-पातक -संयुक्तं कालेन सुकृती भवेत्।
येन येन च कामेन जपे-दिमं ऋषिं सदा।६३।
स सकाम समृद्ध: स्या-च्छ्रद्दधानस्य कुर्वत:।
होमं वाप्यथवा जाप्य-मुपहार-मथो चरुम्।६४।
कुर्वीत येन कामेन तत्सिद्धि-मवधारयेत्।
ज्ञाति-श्रैष्ठ्यं मह-द्वित्तं यशो-लोके परां गतिम्।६५।
पापेन विप्र मोक्षस्तु तत्सिद्धि-मवधारयेत्।
ज्ञान-गम्यं परं सूक्ष्मं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितम्।६६।
ग्राह्य-मत्यन्त यत्नेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्।
सहस्र-शीर्षेति सूक्तं सर्व-काम-फल-प्रदम्।६७।
वेद गर्भ शरीरेण स वै नारायण स्मृत:।
ब्रह्मेन्द्र रुद्र पर्जन्या अत्र सूक्ते व्यवस्थिता:।६८।
अत्रस्थ मेतद् द्रष्टव्यं जगत् स्थावर जङ्गमम्।
अत: सम्पठ्य-मानोऽपि भक्तिं न परिहारयेत्।६९।
भक्तानुकम्पी भगवान् श्रयते पुरुषोत्तम:।
पूजार्थं तस्य देवस्य वनात् स्वय-मुदाहृतात्।७०।
आरण्यक विधानेन निर्वपेत् प्रत्यहं चरुम्।
नारायणाय स्वाहेति मन्त्रान्ते जुहुया-द्धवि:।७१।
आसहस्रा-त्ततश्चाक्षु-र्दिव्यं होतु-र्ददाति स:।
अपि वा चरु साहस्रं तत्रेणै-केन निर्वपेत्।७२।
यावन्तो वापि शक्यन्ते अह्ना सर्वान् समापयेत्।
सहस्रस्ये-प्सितानां च कामानां लभते फलम्।७३।
पुरुषायु: समायुक्त: सिद्धो वापि चरेन्महीम्।७४।
एतत्तु य: पठति केवल-मेव सूक्तं नारायणस्य चरणा-वभिवन्द्य नित्यम्।
पाठेन तेन परमेण सनातनस्य स्थानं जरा-मरण वर्जितमेव विष्णो:।७५।

हविष्याग्नौ जले पुष्पै-र्ध्यानेन हृदये हरिम्।
यजन्ति सूरयो नित्यं जपेत रवि मण्डले।७६।
बिल्व पत्रं शमी पत्रं पत्रं भृङ्गारकस्य च।
मालती कुश पद्मं च सद्य-स्तुष्टिकरं हरेः।७७।
यत्रैतत् पठ्यते किञ्चित्तद् ध्यायेन् मनसैव तु।
सम्पाद्य तत् प्रसादाच्च देवदेवस्य चक्रिणः।७८।
पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च तोयै-रक्रीत लब्धैश्च सदैव सत्सु।
भक्त्यैक - लभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै किमर्थं क्रियते तु यत्नः।७९।
इत्येव-मुक्तः पुरुषस्य विष्णो-रर्चा-विधि-र्विष्णु-कुमार नाम्ना ।
मुक्त्यैक-मार्गं प्रतिबोधनाय दृष्ट्वा विधानं त्विह नारदोक्तम्।८०।

।इति।

पुत्रार्थे शालिबीजेन धनार्थे बिल्व पत्रकैः।
दूर्वाभि-रायुष्कामस्तु पुष्टि-कामस्तु वेतसैः।।
कन्या-कामस्तु लाजाभिः पशु-कामो घृतेन तु।
विद्या-कामस्तु पालाशै-र्दशांशेन तु होमयेत्।।
धान्य-कामो यवैश्चैव गुग्गुलेन रिपुक्षये।
तिलै-रारोग्य-कामस्तु ब्रीहिभिः सुख-मश्नुते।(तन्त्रसार)

पुत्र-कामः पुरुषसूक्तेन तर्पणं मार्जनं च कृत्वा श्रीवैष्णवान् भोजयेदिति ग्रन्थ-विस्तार भयादिकं न लिख्यते। अर्थानुसन्धान पुरेस्सरम् भगवतो नारायणस्य षोडशर्चस्य पुरुष सूक्तस्य न्यासं पाठं पूजां होमं तर्पणं मार्जनं श्री वैष्णवा-राधनं च कुर्वन् श्री वैष्णवः इह पुत्रादि सकल सौभाग्य निधानं परत्र परम-सुख-भाजनं भवतीति सर्वत्र सर्व-मङ्गलम्।

।इति पुरुष-सूक्त-पुरश्चरणं सम्पूर्णम्।

## (१६) अथ पुरुष सूक्त माहात्म्यम्

तावावां परमे व्योम्नि पितरौ जगतः परौ।
अनुग्रहाय लोकानां स्थितौ स्वः परया श्रिया।।१।।(लक्ष्मी तन्त्र )
कदाचित् कृपया-विष्टौ जीवानां हित-काम्यया।
सुखिनः स्युरिमे जीवाः प्राप्नुयुर्नौ कथं त्विति।।२।।
उपायान्वेषणे यत्तौ परमेण समाधिना।
मथ्ना-वस्त्वति-गम्भीरं शब्द-ब्रह्म महोदधिम्।३।



मथ्य-माना-त्तत-स्तस्मात् साम-र्ग्यजुष सङ्कुलात्।
तत्सूक्त-मिथुनं दिव्यं दध्नो घृत-मिवोत्थितम्।४।
इदं पुरुष सूक्तं हि सर्व वेदेषु पठ्यते।
ऋतं सत्यञ्च विख्यात-मृषि-सिंहेन चिन्तितम्।५। (व्यास)
ब्रह्म-यज्ञे जपन् सूक्तं पुरुषं चिन्तयन् हरिम्।
स सर्वान् जपते वेदान् साङ्गो-पाङ्गा-न्विधानतः।६।(विष्णुधर्मोत्तर पुराण)
वेदेषु पौरुषं सूक्तं पुराणेषु च वैष्णवम्।
भारते भगवद् गीता धर्मशास्त्रेषु मानवम्।७। (पद्म पुराण)
पौरुषं सूक्त-मावर्त्य मुच्यते सर्व किल्बिषात्।८।(यम स्मृति)
दद्यात् पुरुष-सूक्तेन आपः पुष्पाणि चैव हि।
अर्चितं स्यादिदं तेन विश्वं भुवन सप्तकम्।९। (पाराशर स्मृति)
प्रतिवेदं महाभाग यत्सूक्तं पौरुषं स्मृतम्।
सर्व-कर्मकरं पुण्यं पवित्रं पाप-सूदनम्। १०।(पुष्कर संहिता)
एकैकया ऋचा राम स्नातो दत्वा जलाञ्जलिम्।
पौरुषेण च सूक्तेन मुच्यते सर्व किल्बिषात्।११।
अन्त-र्जल-गतो जप्त्वा तथा सूक्तं तु पौरुषम्।
सर्व-कल्मष निर्मुक्तो यथेष्टां लभते गतिम्।१२।
अकामः पौरुषं सूक्तं जप्त्वा नित्य-मतन्द्रितः।
नरो याति महाभाग तद्विष्णोः परमं पदम्।१३।
पुरुषस्य हरेः सूक्तं स्वर्ग्यं धन्यं यशस्करम्।
आत्म-ज्ञान-मिदं पुण्यं योग-ज्ञान-मिदं पदम्।१४।(शौनक स्मृति)
धृतोर्ध्व-पुण्ड्रः परमेशितारं नारायणं पूजयति स्म भक्त्या।
अर्घ्यादिभिः पौरुष-सूक्त मन्त्रैः समाप्नुया-द्विष्णु-पदं महात्मा। १५।(महोपनिषद्)
पौरुषेणैव सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत्।१६। (शाण्डिल्य स्मृति)
एषा वैष्णवी नाम संहितैतां प्रयुञ्जन् विष्णुं प्रीणाति। १७। (ब्राह्मण)

## (१७) अथ मुद्गलोपनिषद्।

श्रीमत्पुरुष-सूक्तार्थं पूर्णानन्द कलेवरम्।
पुरुषोत्तम-विख्यातं पूर्णं ब्रह्म भवाम्यहम्।।
ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविरावीर्म एधि वेदस्य

म आणीस्थ: श्रुतं मे। मा प्रहासी-रनेनाधीते-नाहोरात्रात् सन्दधामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। हरि: ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

ॐ पुरुषसूक्तार्थ निर्णयं व्याख्यास्याम:। पुरुष संहितायां पुरुष-सूक्तार्थ: संग्रहेण प्रोच्यते।
सहस्रशीर्षेत्यत्र स शब्दोऽनन्तवाचक:। अनन्त-योजनं प्राह दशाङ्गुल-वचस्तथा।१।
तस्य प्रथमया विष्णो-र्देशतो व्याप्ति-रीरिता।
द्वितीयया चास्य विष्णो: कालतो व्याप्ति-रुच्यते।२।
विष्णो-र्मोक्ष-प्रदत्वं च कथितं तु तृतीयया।
एतावा-निति मन्त्रेण वैभवं कथितं हरे:।३।
एतेनैव च मन्त्रेण चतु-र्व्यूहो विभाषित:।
त्रिपादि-त्यनया प्रोक्त-मनिरुद्धस्य वैभवम्।४।
तस्मा-द्विराडि-त्यनया पाद-नारायणा-द्धरे:।
प्रकृते: पुरुषस्यापि समुत्पत्ति: प्रदर्शिता।५।
यत्पुरुषे-त्यनया सृष्टि-यज्ञ: समीरित:।
सप्तास्यासन् परिधय: समिधश्च समीरित:।६।
तं यज्ञ-मिति मन्त्रेण सृष्टि यज्ञ: समीरित:।
अनेनैव च मन्त्रेण मोक्षश्च सुमुदीरित:।७।
तस्मदिति च मन्त्रेण जगत्सृष्टि: समीरिता:।
वेदाह-मिति मन्त्राभ्यां वैभवं कथितं हरे:।८।
यज्ञेनेत्युपसंहार: सृष्टे-र्मोक्षस्य चेरित:।
य एवमेत-ज्जानाति स हि मुक्तो भवेदिति।९। (अध्याय १)

अथ यथा मुद्गलो-पनिषदि पुरुष-सूक्तस्य वैभवं विस्तरेण प्रतिपादितम्। वासुदेव इन्द्राय भगवज्ज्ञान-मुपदिश्य पुनरपि सूक्ष्म श्रवणाय प्रणतायेन्द्राय परम रहस्यभूतं पुरुष सूक्ताभ्यां खण्ड-द्वयाभ्या-मुपदिशत्। द्वौ खण्डा-वुच्येते। योऽयमुक्त: स पुरुषो नाम-रूप ज्ञाना-गोचरं संसारिणा-मति दुर्ज्ञेयं विषयं विहाय क्लेशादिभि: संक्लिष्ट देवादि जिहीर्षया सहस्र-कला-वयव-कल्याणं दृष्ट-मात्रेण मोक्षदं वेष-माददे। तेन वेषेण भूम्यादि लोकं व्याप्या-नन्त योजन-मत्यतिष्ठत्। पुरुषो नारायणो भूतं भव्यं भविष्य-च्चासीत्। स एष सर्वेषां मोक्षद-श्चासीत्। स च सर्वस्मान् महिम्नो ज्यायान्। तस्मान्न कोऽपि ज्यायान्। महा-पुरुष आत्मानं चतुर्धा कृत्वा त्रिपादेन परमे व्योम्नि चासीत्।



इतरेण चतुर्थेना-निरुद्ध-नारायणेन विश्वान्यासन्। स च पाद नारायणो जगत्स्रष्टुं प्रकृति-मजनयत्। स समृद्ध-काय: सन्सृष्टि कर्म न जज्ञिवान्। सोऽनिरुद्ध-नारायण-स्तस्मै सृष्टि-मुपादिशत्। ब्रह्मन् स्तवेन्द्रियाणि याजकानि ध्यात्वा कोशभूतं दृढं ग्रन्थि-कलेवरं हवि-र्ध्यात्वा मां हवि-र्भुजं ध्यात्वा वसन्त-काल-माज्यं ध्यात्वा ग्रीष्म-मिध्मं ध्यात्वा शरदृतुं रसं ध्यात्वैव मग्नौ हुत्वाङ्ग स्पर्शात् कलेवरो वज्रं हीष्यते। तत: स्वकार्यान् सर्व प्राणि जीवान् सृष्ट्वा पश्वाद्या: प्रादु-र्भविष्यन्ति। तत: स्थावर-जङ्गमात्मकं जगद् भविष्यति। एतेन जीवात्मनो-र्योगेन मोक्ष प्रकारश्च कथित इत्यत्तु सन्धेयम्। य इमं सृष्टि यज्ञं जानाति मोक्ष प्रकारं च सर्वमायुरेति।२।

एको देवो बहुधा निविष्ट अजायमानो बहुधा विजायते। तमेत-मग्निरित्यध्वर्यव उपासते। यजूरित्येष हीदं सर्वं युनक्ति। सामेति छन्दोगा:। एतस्मिन् हीदं सर्वं प्रतिष्टितम्। विषमिति सर्पा: सर्प इति सर्पविद:। ऊर्गिति देवा:। रयिरिति मनुष्या:। मायेत्यसुरा:। स्वधेति पितर:। देवजन इति देवजन-विद:। रूपमिति गन्धर्वा:। गन्धर्व इत्यप्सरस:। तं यथा-यथोपासते तथैव भवति। तस्माद् ब्राह्मण: पुरुष-रूपं परं ब्रह्मैवाह-मिति भावयेत्। तद्रूपो भवति य एवं वेद।३।

तद् ब्रह्म ताप-त्रया-तीतं षट् कोष विनिर्मुक्तं षडूर्मि वर्जितं पञ्च कोषातीतं षड्भाव विकार शून्यमेवादि सर्व विलक्षणं भवति। ताप-त्रयं त्वाध्यात्मिका-धिभौतिका-धिदैविकं कर्तृ-कर्म-कार्य, ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय, भोक्तृ-भोग-भोग्य,-मिति त्रिविधम्।
त्वङ् मांस शोणिता-स्थि स्नायु मज्जा: षट् कोषा:।
काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यमित्यरि षड् वर्ग:।
अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमयानन्दमया इति पञ्च कोशा:।
प्रियात्मजनन वर्धन परिणाम क्षय नाशा: षड्भावा:।
अशनाया पिपासा शोक मोह जरा मरणानीति षडूर्मय:।
कुल गोत्र जाति वर्णाश्रम-रूपाणि षड्भ्रमा:।
एतद्योगेन परम पुरुषो जीवो भवति नान्य:। य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायु पूतो भवति। स आदित्यपूतो भवति। अरोगी भवति। श्रीमांश्च भवति पुत्र पौत्रादिभि: समृद्धो भवति। विद्वांश्च भवति। महा-पातकात् पूतो भवति। सुरा-पानात् पूतो भवति। अगम्या-गमनात् पूतो भवति। मातृ-गमनात् पूतो भवति। दुहितृ स्नुषाभि गमनात् पूतो भवति। स्वर्ण स्तेयात् पूतो भवति। वेदि जन्म हानात् पूतो भवति। गुरो-रशुश्रूषणात् पूतो भवति। अयाज्य-याजनात् पूतो भवति। अभक्ष्य-

भक्षणात् पूतो भवति। उग्र प्रतिग्रहात् पूतो भवति। परदार गमनात् पूतो भवति। काम-क्रोध-लोभ-मोहे-र्ष्यादिभि-रबाधितो भवति। सर्वेभ्य पापेभ्यो मुक्तो भवति। इह जन्मनि पुरुषो भवति। तस्मादेतत् पुरुष सूक्तार्थ-मति रहस्यं राज-गुह्यं देव-गुह्यं गुह्यादपि गुह्यतरं नादीक्षितायो-पदिशेत्। ना-नूचानाय। न बहु-भाषिणे। ना-प्रिय-वादिने। ना-सम्वत्सर-वेदिने। ना-तुष्टाय। ना-नधीत वेदायो-पदिशेत्। गुरु-रप्येवं विच्छुचौ देशे पुण्य नक्षत्रे प्राणानायम्य पुरुषं ध्यायन् उपसन्नाय शिष्याय दक्षिण-कर्णे पुरुष सूक्तार्थमुपदिशेद्विद्वान्। न बहुशो वदेत्। यात-यामो भवति। असकृत् कर्ण-मुपदिशेत्। एतत् कुर्वाणोऽध्येता-ध्यापकश्च इह जन्मनि पुरुषो भवती-त्युपनिषद्।४। इति मुद्गलोपनिषत्समाप्ता।

## (१८) अथ चक्राब्ज मण्डल देवता पूजा विधिः।

(श्री रामानुजाचार्य परम्परायां विष्वक्सेनाचार्येण उपदिष्टः)

अथ श्री वैष्णवः शुचिः प्रयतः पीताम्बर-धरः श्री चूर्ण युक्त द्वादश श्वेतोर्ध्व-पुण्ड्र-धरः तुलसी नलिनाक्ष-माला-धरः प्रधान वेद्यां श्वेत वस्त्रं प्रसार्य तत्र चक्राब्ज मण्डल-मालिख्य तत्र स्थितानां देवानां षोडशो-पचारैः पूजनङ्कुर्यात्।

प्राङ् मुखो यजमानः दर्भेष्वासीनो दर्भान् धारयमाणः पवित्रपाणिः। ॐ अच्युताय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ गोविन्दाय नमः। इति मन्त्र-त्रयेण दक्षिण हस्तेन पृथक् पृथक् त्रिराचम्य शुद्धोदकेन स्व दक्षिण हस्तं प्रक्षाल्यासून् संस्पृश्य प्राणानायम्य करे साक्षत-पुष्प-फल-जल-द्रव्या-ण्यादाय। हरिः ॐ तत्सत् गोविन्द गोविन्द गोविन्द अद्येत्यादि अस्यां शुभ पुण्य तिथौ अस्मिन्कर्मणि भगवदाज्ञया भगवत् कैङ्कर्यत्वेन प्रधान वेद्यां श्री चक्राब्ज मण्डले देवानां स्थापनं पूजनं च करिष्ये-इति सङ्कल्प्य।

**लक्ष्मीनाथ समारम्भां नाथ-यामुन-मध्यमाम्।**
**अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्।१।**
**श्रीशं श्रीसैन्यनाथं वकुलधर-मुनिं नाथ-पङ्केरुहाक्षौ।**
**श्री रामं यामुनेयं वरमपि च महापूर्ण-रामानुजार्यौ।**
**गोविन्दं भट्टवेदान्त्यथ वरकलिजिद्वंश दासांश्च कृष्णम्।**
**लोकार्य शैलनाथं वरवर मुनि-मप्यहं चिन्तयामि।२।**

इति गुरु परम्परामनुसन्धाय पुण्याह जलेन-
येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुवन्तु माम्।



इत्यात्मानं पूजा सामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य दक्षिण हस्ते पीताक्षतात् गृहीत्वा आवाहयेत्। तद्यथा-**यस्मिनृचः सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु।।(यजु.३४/५)**

मध्ये पीत कर्णिकायाम्-ॐ मन्त्राध्वने नमः-मन्त्राध्वानमावाहयामि-इति मन्त्राध्वानमावाह्य अर्घ्य-पाद्याचमन-स्नान-वस्त्रोपवीत-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्या-चमन-ताम्बूल-पूगीफल-दक्षिणा-नमस्कारैः पूजयेत्।१।

**तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः।(यजु.१८/४९, २१/२)**

ॐ तत्त्वाध्वने नमः-तत्त्वाध्वानमावाहयामि-इत्यरुण केशरेषु तत्त्वाध्वानमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।२।

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय**(श्वेताश्वतर उप३/७)

दलेषु-ॐवर्णाध्वने नमःवर्णाध्वानमावाहयामि-इति वर्णाध्वानमावाह्य समर्चयेत्।३।

**त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्।**
(ऋक्.१/२२/१८, साम.१६७०, वा.यजु.३४/४३, तै.ब्रा.२/४/६/१)

नाभौ-ॐ पदाध्वने नमः पदाध्वानमावाहयामि-इतिपदाध्वानमावाह्य प्रणमेत्।४।

**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञास्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।(वा.यजु.३४/४)**

अरुणारेषु-ॐ कालाध्वने नमः कालाध्वानमावाहयामि-इति कालाध्वानमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।५।

**प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।**
**यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षयन्ति भुवनानि विश्वा।**(वा.यजु.५/२०, ऋक्.१/१५४/२, अथर्व.७/२६/२-३, तै.ब्रा.२/४/३/४, निरुक्त.१/२०)

नेमौ-ॐ भुवनाध्वने नमः भुवनाध्वानमावाहयामि इति भुवनाध्वान-मावाह्यषोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।६।

ततः कर्णिकास्थ शुक्लाष्टविन्दुषु नारायणाष्टाक्षरमन्त्राक्षराणि पूजयेत्। तद्यथा-**सहस्रशीर्षं देवं सहस्राक्षं विश्व शम्भुवम् (सम्भवम्)। विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम्।।**(महोपनिषद्.१/५, चतुर्वेदोप.२)

इति मन्त्रेण पूर्वे प्रथमविन्दौ-ॐ ज्ञानस्वरूपकुमुदपाण्डरवर्णाय नमः ज्ञानस्वरूप कुमुद पाण्डर

वर्णमावाहयामि-इति ॐकारमावाह्य सर्वोपचारैः मूल मन्त्रप्रथमाक्षरं पूजयेत्।७।

**नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशं सः। (वा.यजु.३/३२)**

अग्निकोणे द्वितीय विन्दौ-नकाराय नमः-नकारमैश्वर्यस्वरूपं पद्मरागाचलाकारम् आवाहयामि-इति मूलमन्त्र द्वितीयाक्षरं नकारमावाह्य सम्यगर्चयेत्।८।

**मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।**
**महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः। (यजु.३/४६)**

दक्षिणे तृतीय विन्दौ -मोकाराय नमः-मोकारं शक्तिस्वरूपमञ्जनाचल निभमावहयामि-इति मूलमन्त्र तृतीयाक्षरं मोकारमावाह्य पूजयेत्।९।

**नाना हि देवहितं सदस्कृतं मा सं सृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिंसीः स्वां योनिमाविशन्ती। (वा.यजु.१९/७)**

नैर्ऋत्य कोणे चतुर्थ विन्दौ -नाकाराय नमः-नाकारं बलस्वरूपं काञ्चनाचल निभ मावाहयामि -इति मूलमन्त्र चतुर्थाक्षरम् नाकारमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।१०।

**राया वयं ससवां सोमदेम हव्ये न देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनि ऋतायुभ्यां त्वा।** (ऋक्.४/४२/१०, यजु.७/१०)

पश्चिमे पञ्चमविन्दौ-राकाराय नमः-राकारं तेजोरूपं निर्धूमाङ्गार सदृश मावाहयामि-इति मूलमन्त्र पञ्चाक्षरं राकारमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।११।

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।**
**यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।**
**(ऋक्.१०/१२१/२, अथर्व.४/२/१, १३/३/२४, यजु.२५/१३)**

वायव्य कोणे षष्ठविन्दौ-यकाराय नमः-यकारं वीर्यस्वरूप मयस्कान्त सदृशमावाहयामि-इति मूलमन्त्र षष्टाक्षरं यकारामावाह्य सम्यगर्चयेत्।१२।

**प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा। भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा। वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भं समुद्रियम्। अग्न आयाहि वीतये। (यजु.११/४६)**

उत्तरे सप्तविन्दौ-णाकाराय नमः-णाकारं बलस्वरूपमावाहयामि-इति मूलमन्त्र सप्तमाक्षरं णाकारमावाह्य सर्वापचारैः पूजयेत्।१३।

**यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।** (ऋक्.१०/१२१/३, यजु.२३/



३,२५/११, तै.सं.४/१/८/४, ७/५/१६/१, अथर्व.४/२/२)

ईशान कोणे अष्टम विन्दौ-यकाराय नमः-यकारं वीर्य्य स्वरूपमयस्कान्त सदृशमावाहयामि-इति नारायण मन्त्राष्टमाक्षरं यकारमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१४।

ततोऽरुण केशरेषु पूर्वादि क्रमेण पूजयेत्। तद्यथा-

**मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनां रूप मन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा। (वा.यजु.३९/४)**

ॐ श्रीं श्रियै नमः-श्रियमावाहयामि-इति पूर्वदलीय केशरेषु श्रियमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।१५।

**आर्द्रां पुष् (यः) करिणीं पु(य)ष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।**
**सूर्यां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह। (श्रीसूक्त.१४)**

ॐ पुं पुष्ट्यै नमः-पुष्टिमावाहयामि-इति अग्नि कोण दलीय केशरेषु पुष्टिमावाह्य पुष्पादिभिः अर्चयेत्।१६।

**पावकाः नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवति। यज्ञं वष्टुधिया वसुः।**
(ऋक्.१/३/१०, साम.१८९, वा.यजु.२०/८४, तै.ब्रा.२/४/३/१)

ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः-सरस्वतीमावाहयामि-इति दक्षिण दलीय केशरेषु सरस्वतीमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या सर्वोपचारैः पूजयेत्।१७।

**रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मे क्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (यजु१८/१०)**

ॐ प्रीं प्रीत्यै नमः प्रीतिमावाहयामि-इति नैर्ऋत्य कोण दलीय केशरेषु प्रीतिमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।१८।

**द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। (वा.यजु. ३६/१७)**

ॐ शां शान्त्यै नमः शान्तिमावाहयामि-इति पश्चिमदलीय केशरेषु शान्तिमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।१९।

**अङ्गान्यत्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती।**
**इन्द्रस्य रूपं शत मानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः। (वा.यजु. १९/९३)**

ॐ तुं तुष्ट्यै नमः तुष्टिमावाहयामि-इति वायव्य कोण दलीय केशरेषु तुष्टिमावाह्य सम्यगर्चयेत्।२०।

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु (यजु.३४/३)**

ॐ क्लीं कान्त्यै नमः कान्तिमावाहयामि इत्युत्तरदलीय केशरेषु कान्तिमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।२१।

**उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।**

**प्रदुर्भूतोऽसि(सु) राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे। (श्रीसूक्त.७)**

ॐ क्लीं कीर्त्यै नमः कीर्तिमावाहयामि-इतीशान कोण दलीय केशरेषु कीर्तिमावाह्य षोडशोपचारै; सम्पूज्य प्रणमेत्।२२।

ततःदलेषु पूर्वादि क्रमेण पूजयेत् । तद्यथा-

**महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि।**

**तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्। (लक्ष्मी सूक्त ९)**

ॐ महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मीमावाहयामि-इति पूर्वे प्रथमदले महालक्ष्मीमावाह्य सर्वोपचारैः पूजेत्।२३।

**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णनिषाणमुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण। (यजु.३१/२२)**

ॐ विद्यालक्ष्म्यै नमः विद्यालक्ष्मीमावाहयामि-इत्यग्नि कोणे द्वितीय दले विद्यालक्ष्मीमावाह्य पूजोपचारैः समर्चयेत्।२४।

**हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम्।**

**चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह। (श्रीसूक्त.१)**

ॐ सौभाग्यलक्ष्म्यै नमः सौभाग्यलक्ष्मीमावाहयामि-इति दक्षिणे तृतीय दले सौभाग्यलक्ष्मीमावाह्य पूर्वोक्तोपचारैः पूजयेत्।२५।

**पद्मानने पद्म ऊरु पद्माक्षि पद्मसम्भवे।**

**तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्।**(श्रीसूक्त १८)

ॐ अमृतलक्ष्म्यै नमः अमृतलक्ष्मीमावाहयामि-इति नैर्ऋत्य कोणे चतुर्थदले अमृत-लक्ष्मीमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।२६।

**अश्वदायी गोदायी धनदायि महाधने।**

**धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे।(श्री सूक्त. १९)**



ॐ कामलक्ष्म्यै नमः कामलक्ष्मीमावाहयामि-इति पश्चिमे पञ्चमदले कामलक्ष्मीमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।२७।

**विष्णु पत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्। विष्णुप्रियां (लक्ष्मीप्रिय) सखी देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम्। (श्री सूक्त. २५)**

ॐ सत्यलक्ष्म्यै नमः सत्यलक्ष्मीमावाहयामि-इति वायव्य कोणे षष्ठ दले सत्यलक्ष्मीम् आवाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।२८।

**तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।**

**यस्य हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्। (श्रीसूक्त.२)**

ॐ भोगलक्ष्म्यै नमः भोगलक्ष्मीमावाहयामि-इत्युत्तरे सप्तम दले भोगलक्ष्मीमावाह्य पुष्पादिभिः समर्चयेत्।२९।

**तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्य हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्। (श्री सूक्त. १५)**

ॐ योगलक्ष्म्यै नमः योगलक्ष्मीमावाहयामि-इतीशान कोणे अष्टम दले योगलक्ष्मीमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।३०।

ततः कृष्ण दल सन्धिषु पूर्वादि क्रमेण हरेर्भूषणायुधानि पूजयेत्। तद्यथा-

**आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।**

**अग्ने त्वां कामया गिरा। (यजु.१२/११५)**

पूर्वे ॐ श्रीवत्साय श्रीनिवासाय नमः श्रीवत्समावाहयामि-इति श्रीवत्समावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।३१।

**परिवाज पतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे। (यजु. ११/२५)**

आग्नेय्याम् ॐ श्रीकौस्तुभाय रत्नाधिपतये नमः श्री कौस्तुभमावाहयामि-इति श्री कौस्तुभमावाह्य पुष्पादिभिः समर्चयेत्।३२।

**कुक्कुटो ऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म वर्ष वृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतं रक्षः परापूता । आरातयो ऽपहतं रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना। (यजु.१/१६)**

दक्षिणे ॐ किरीटाय मुकुटाधिपतये नमः किरीटमावाहयामि-इति किरीटमावाह्य पूजोपचारैः सम्पूजयेत्।३३।

**इन्द्र आसां नेता बृहस्पति र्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।**

**देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्। (यजु.१७/४०)**
नैर्ऋत्याम्-ॐ वैजयन्त्यै वनमालायै नमः वैजयन्तीमावाहयामि-इति वैजयन्तीमावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।३४।
**चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि।**
**तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम।** (त्रिपाद्विभूति महानारायण उपनिषद् ७/३, महानारायण उप.५/१०, सुदर्शन उप.५)
पश्चिमे ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः सुदर्शनमावाहयामि-इति सुदर्शनमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।३५।
**अग्नि र्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्।**
**उपयाम गृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एषते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। (यजु.२६/९)**
वायव्याम् ॐ पाञ्चजन्याय शंखाधिपतये नमः पाञ्चजन्यमावाहयामि-इति पाञ्चजन्यमावाह्य पुष्पादिभिः समर्चयेत्।३६।
**जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।**
**मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः। (यजु.२०/६)**
उत्तरे ॐ कौमोदक्यै गदाधिपतये नमः कौमोदकीमावाहयामि-इति कौमोदकीमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या पूजयेत्।३७।
**सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डक स्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद् भौमी शार्दूलो वृक : पृदाकुरस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् । (यजु.२४/३३)**
ईशान्याम् ॐ शार्ङ्गाय चापाधिपतये नमः शार्ङ्गमावाहयामि-इति शार्ङ्गमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।३८।
ततः शुक्ल प्रथमनाभौ-
**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूळहमस्य पांसुरे। स्वाहा (यजु.५/१५)**
ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि - इति विष्णुमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।३९।
पीत द्वितीय नाभौ-
**ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ता द्विसीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या**



**उपमाऽअस्यविष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः। (यजु.१३/३)**
ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि-इति ब्रह्माणमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।४०।
पाटल तृतीय नाभौ-
**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्।**
**उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। (यजु. ३/६०)**
ॐ त्र्यम्बकाय नमः त्र्यम्बकमावाहयामि-इति त्र्यम्बकमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।४१।
ततोऽरुण द्वादशारेषु पूर्वादि क्रमेण केशवादि द्वादश मूर्तीन् पूजयेत् । तद्यथा-
**युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर। उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने। (यजु. ८/३४)**
ॐ केशवाय नमः केशवमावाहयामि -इति प्रथमारे केशवमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।४२।
**नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।**
**तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । (तैत्तिरीय.आ. १०/१५)**
ॐ नारायणाय नमः नारायणमावाहयामि-इति द्वितीयारे नारायणमावाह्य पूजोपचारैः समर्चयेत्।४३।
**मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा अंहसस्पतये स्वाहा। (यजु.२२/३१)**
ॐ माधवाय नमः माधवमावाहयामि - इति तृतीयारे माधवमावाह्य पुष्पादिभिः पूजयेत् । ४४।
**गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्। (यजु.१७/३८)**
ॐ गोविन्दाय नमः गोविन्दमावाहयामि-इति चतुथरि गोविन्दमावाह्य पुष्पादिभिः पूजयेत्।४५।
**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।**(ऋक्.१/२२/१९, वा.यजु.६/४,१३/३३, तै.सं.१/३/६/२, अथर्व.७/२६/६)
ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि-इति पञ्चमारे विष्णुमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।४६।
**मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव। माध्वीर्नः सन्त्वोष धीः।** (ऋक्.१/९०/

६, वा.य.१३/२७, तै.सं.४/२/९/३, तै.आ.१०/१०/२, श.ब्रा.१४/९/३/११)

ॐ मधुसूदनाय नमः मधुसूदनमावाहयामि-इति षष्ठारे मधुसूदनमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या समर्चयेत् ।४७।

**दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः संज्योतिषा भूम । (यजु.२/२५)**

ॐ त्रिविक्रमाय नमः त्रिविक्रममावाहयामि-इति सप्तमारे त्रिविक्रममावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत् ।४८।

**नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्न्याय च प्रथमाय च। (यजु.१६/३०)**

ॐ वामनाय नमः वामनमावाहयामि-इत्यष्टमारे वामनमावाह्य पुष्पादिभिः समर्चयेत् ।४९।

**दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः। (यजु.१७/५६)**

ॐ श्रीधराय नमःश्रीधरमावाहयामि-इति नवमारे श्रीधरमावाह्यसर्वोपचारैः पूजयेत्।५०।

**पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकर कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः। (यजु.२४/३५)**

ॐ हृषीकेशाय नमः हृषीकेशमावाहयामि-इति दशमारे हृषीकेशमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या समर्चयेत् ।५१।

**नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः। जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः। (यजु.२०/९)**

ॐ पद्मनाभाय नमः पद्मनाभमावाहयामि-इत्येकादशारे पद्मनाभमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत् ।५२।

**यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।**
**यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु।**



(ऋक्.१/१६२/८, वा.यजु.२५/३१, तै.सं. ४/६/८/३)

ॐ दामोदराय नमः दामोदरमावाहयामि-इति द्वादशारे दामोदरमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत् ।५३।

ततः कृष्ण द्वादशार सन्धिषु पूर्वादि क्रमेणमत्स्यं कूर्मं वराहं नृसिंहं वामनं परशुरामं रामं तद्भ्रातॄन् कृष्णं सभ्रातरं कल्किनञ्च पूजयेत्। तद्यथा-

**हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसद् ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं (बृहत्)।** (ऋक्.४/४०/५, वा.यजु. १०/२४, १२/१४, तै.सं. १/८/१५/२, तै.आ.१०/१०/२)

ॐ मत्स्याय नमः मत्स्यमावाहयामि-इति प्रथमार सन्धौ मत्स्यमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत् ।५४।

**यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम्।**
**तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः। (यजु. १७/५२)**

ॐ कूर्माय नमः कूर्ममावाहयामि-इति द्वितीयारसन्धौ कूर्ममावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत् ।५५।

**खङ्गो वैश्वदेवःश्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः। (यजु.२४/४०)**

ॐ वराहाय नमः वराहमावाहयामि-इति वराहमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या पूजयेत् ।५६।

**प्र तद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।**
**यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षयन्ति भुवनानि विश्वा। (यजु.५/२०)**

ॐ नृसिंहाय नमः नृसिंहमावाहयामि-इतिचतुर्थारसन्धौ नृसिंहमावाह्य पुष्पादिभिः समर्चयेत् ।५७।

**नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च।**
**नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्न्याय च प्रथमाय च। (यजु.१६/३०)**

ॐ वामनाय नमः वामनमावाहयामि-इति पञ्चमार सन्धौ वामनमावाह्य पूजयेत् ।५८।

**अपिबत कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।**
**अत्रादेदिष्ट पौंस्यम्। (ऋक् ८/४५/२६, साम १३१)**

ॐ परशुरामाय नमः परशुराममावाहयामि-इति षष्ठारसन्धौ परशुराममावाह्य पुष्पदिभिः पूजयेत् ।५९।

**भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।**
**सुप्रकेतै र्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्।**
(ऋक्.१०/३/३, साम. १५४८)

ॐ रामाय नमः राममावायामि-इति सप्तमार सन्धौ राममावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्। ६०।

**विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि। विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा। (यजु.५/२१)**

ॐ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणमावाहयामि-इत्यष्टमारसन्धौ लक्ष्मणमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।६१।

**तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।**
(ऋक् १/२२/२०, साम.१६७२, अथर्व.७/२६/७, वा.यजु.६/५, तै.सं १/३/६/२, ४/२/९/३)

ॐ भरताय नमः भरतमावाहयामि-इति नवमारसन्धौ भरतमावाह्य पूजोपचारैः समर्चयेत्।६२।

**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।**
(ऋक्.१/२२/१९, साम.१६७१, वा.यजु.६/४,१३/३३, तै.सं.१/३/६/२)

ॐ शत्रुघ्नाय नमःशत्रुघ्नमावहयामि-इति दशमारसन्धौ शत्रुघ्नमावाह्य पूजयेत्।६३।

**कृष्णं त एम रुशतः पुरोभा श्चरिष्ण्वर्चि र्वपुषा मिदेकम्।**
**यद् प्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीद् दूतः। (ऋक्.४/७/९)**

ॐ सभ्रात्रे कृष्णाय नमःसभ्रातरं कृष्णमावाहयामि-इत्येकादशारसन्धौ सभ्रातरं कृष्णमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।६४।

**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश।(ऋक्.६/४७/१८)**

ॐ कल्किने नमः कल्किमावाहयामि-इति द्वादशारसन्धौ कल्किनमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।६५।

ततः प्रथम नेमिवलये पूर्वादि क्रमेण शफं चक्रं गदां शङ्गं शार्ङ्गं मुसलं बाणं पाशं च पूजयेत्। तद्यथा-

**अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमीमहे महागयम्।**
**(यजु.२६/९)**



ॐ पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नमः पाञ्चजन्य शङ्खमावाहयामि-इति पूर्वे पाञ्चजन्य शङ्खमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।६६।

**चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि। तेन पवित्रेणशुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम।** (त्रिपाद्विभूति महानाायण उप. ७/३)

ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः सुदर्शनमावाहयामि-इत्यग्निकोणे चक्रमावाह्य समर्चयेत्।६७।

**भीमानिते आयुधा तिग्मानि धूर्वणे।। (ऋक्.८/२९/५, ८/९६/९)**

ॐ कौमोदक्यै गदाधिपतये नमः। कौमोदकी गदामावाहयामि-इति दक्षिणे कौमोदकी गदामावाह्य पूजयेत्।६८।

**ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।**
**तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मनसि। (यजु.१६/६१)**

ॐ नन्दकाय खड्गाधिपतये नमः नन्दकखड्गमावाहयामि-इति नैर्ऋत्ये नन्दक खड्गमावाह्य समर्चयेत्।६९।

**या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।**
**तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज। (यजु.१६/११)**

ॐ शार्ङ्गाय चापाधिपतये नमः शार्ङ्गधनुरावाहयामि-इति पश्चिमेशार्ङ्गधनुरावाह्य पूजयेत्।७०।

**नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।**
**उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने। (यजु. १६/१४)**

ॐ मुसलाय नमः मुसलमावाहयामि-इति वायव्ये मुसलमावाह्य समर्चयेत्।७१।

**विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत।**
**अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः। (यजु.१६/१०)**

ॐ बाणाय नमः बाणमावाहयामि-इत्युत्तरे बाणमावाह्य पूजयेत्।७२।

**ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।**
**तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः।**
(कौषीतकि श्रौत सूत्र.२५/१/१११, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र.३/१३/१, कौशिकसूत्र.७/८, पारस्कर गृह्य सूत्र.१/२/८)

ॐ पाशाय नमः पाशमावाहयामि-इतीशान कोणे पाशमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्। ७३।

ततः पीठस्य चतुष्कोणेषु आग्नेयादिक्रमेण वराहं नृसिंहं अनन्तं हयग्रीवं चेति चतुर्मूर्तीः

पूजयेत्। तद्यथा-

**प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।**
**महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्।**
(ऋक्.९/९७/७, साम.५२४, १११६)

पीठाग्नि कोणे-ॐ वराहाय धरणीधराय नमः वराहमावाहयामि-इति वराहमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।७४।

**प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।**
**यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।**
(ऋक्.१/१५४/२, अथर्व ७/२६/२-३, तै.ब्रा.२/४/३/४, यजु.५/२०)

पीठ नैर्ऋत्य कोणे-ॐ नृसिंहाय वज्रनखाय नमः नृसिंहमावाहयामि-इति नृसिंहमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।७५।

**विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।**
**ध्रुवासो अस्य कीरयो जनासः उरुक्षितिं सुजनिमा चकार।**
(ऋक्.७/१००/४, तै.ब्रा.२/४/३/५)

पीठ वायव्य कोणे-ॐ अनन्ताय नागराजाय सहस्रफणाशोभिताय नमः अनन्तमावाहयामि-इत्यनन्तमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।७६।

**हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्। नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान् पथः पुर एतऋजु नेषति।** (ऋक् ५/४६/१)

पीठेशान कोणे-ॐ हयग्रीवाय सर्वविद्याधराय नमः हयग्रीवमावाहयामि-इति हयग्रीवमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।७७।

ततः शुक्ल वीथ्यां पूर्वादि क्रमेण इन्द्राग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-वायु-सोमेशानान् क्रमेण पूजयेत्। तद्यथा-

**त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।**
**ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः।** (ऋक्.६/४७/११, साम.३३३, अथर्व.७/८६/१, वा.यजु.२०/५०, तै.सं.१/६/१२/५)

पूर्वे-ॐ इन्द्राय देवराजाय नमः इन्द्रमावाहयामि-इतीन्द्रमावाह्य अर्घ्य-पाद्या-चमन-स्नान-वस्त्रो-पवीत-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-दक्षिणादिभिः सम्पूज्य प्रणमेत्।७८।

**त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः।**
**यजिष्टो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्। (यजु.२१/३)**



अग्नि कोणे-ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये नमः अग्निमावाहयामि-इत्यग्निमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।७९।

**यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।**
**स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे । (यजु.३८/९)**

दक्षिणे-ॐ यमाय प्रेतराजाय नमः यममावाहयामि-इति यममावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।८०।

**असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्या मन्विहि तस्करस्य।**
**अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु। (यजु.१२/६२)**

नैर्ऋत्य कोणे-ॐ निर्ऋतये भूताधिपतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि-इति निर्ऋतिमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या पूजयेत्।८१।

**वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋत सदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद। (यजु.४/३६)**

पश्चिमे-ॐ वरुणाय जलाधिपतये नमः वरुणमावाहयामि-इति वरुणमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।८२।

**आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्।**
**वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।(यजु.२७/२८)**

वायव्य कोणे-ॐ वायवे प्राणाधिपतये नमः वायुमावाहयामि-इति वायुमावाह्य षोडशोपचारैः समर्चयेत्।८३।

**सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं वीरं कर्मण्यं ददाति।**
**सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै। (यजु.३४/२१)**

उत्तरे-ॐ सोमाय पीयूषाधिपतये नमः-इति सोममावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।८४।

**तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।**
**पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।(यजु.२५/१८)**

ईशान कोणे-ॐ ईशानाय विद्याधिपतये नमः ईशानमावहयामि-इतीशानमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।८५।

ततः चतुर्द्वा रेषु- चण्ड -प्रचण्डौ पूर्वद्वारे, भद्र-सुभद्रौ दक्षिण द्वारे, जय-विजयौ पश्चिम द्वारे, धातृ-विधातारौ उत्तर द्वारे पूजयेत्। तद्यथा-

**आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।**
**संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः।**

(ऋक्.१०/१०३/१, साम.१८४९, अथर्व.१९/१३/२, वा.यजु.१७/३३, तै.सं. ४/६/४/१)
श्वेत पूर्वद्वारे-ॐ चण्डाय नमः चण्डमावाहयामि-इति प्रथमं चण्डमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्। ८६।
**पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानड र्कम्।**
**स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियं सीषधाति प्र पूषा।**
(ऋक्.६/४९/८, वा.यजु.३४/४२, तै.सं.१/१/१४/२)
ॐ प्रचण्डाय नमः प्रचण्डमावाहयामि-इति द्वितीयं प्रचण्डमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।८७।
**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैः स्तुष्टुवांसस्तनू भिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।**
(ऋक्.१/८९/८, साम.१८७४, वा.यजु.२५/२१, तै.आ.१/१/१)
अरुण दक्षिण द्वारे-ॐ भद्राय नमः भद्रमावाहयामि-इति प्रथमं भद्रमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।८८।
**भद्रं भद्रं न आभरेषमूर्जं शतक्रतो।**
**यदिन्द्र मृळयासि नः।** (ऋक्. ८/९३/२८, साम.१७३)
ॐ सुभद्राय नमः सुभद्रमावाहयामि-इति द्वितीयं सुभद्रमावाह्य षोडशोपारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।८९।
**संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।**
**तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा।** (यजु.१७/३४)
पीत पश्चिम द्वारे-ॐ जयाय नमः जयमावाहयामि-इति प्रथमं जयमावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।९०।
**विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ ऽउत।**
**अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः।(यजु.१६/१०)**
ॐ विजयाय नमः विजयमावाहयामि-इति द्वितीयं विजयमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९१।
**धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्नि धिपा देवो अग्निः।**
**त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा। (यजु.८/१७)**


कृष्णोत्तरद्वारे-ॐ धात्रे नमः धातारमावाहयामि-इति प्रथमं धातारमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।९२।
**स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।**
**यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त। (यजु.३२/१०)**
ॐ विधात्रे नमः विधातारमावाहयामि-इति द्वितीयं विधातारमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९३।
ततो वीथ्या ईशानादि कोणेषु प्रदक्षिणा क्रमेण विष्वक्सेनं पूजयेत्। तद्यथा-
**चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्।**
**अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति।**
(ऋक्.९/९६/१९, साम.११७७)
वीथीशान कोणे-ॐ विष्वक्सेनाय सूत्रवतीसखाय नमः विष्वक्सेनमावाहयामि-इति विष्वक्सेनमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९४।
**विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।**
**तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। (यजु.१७/२४)**
वीथ्यग्नि कोणे-ॐ विष्वक्सेनाय नमः विष्वक्सेनमावाहयामि-इति विष्वक्सेनमावाह्य पूर्वोक्त रीत्या सम्पूज्य प्रणमेत्।९५।
**विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।**
**मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु।**
(ऋक्.१०/८१/६, साम.१५८९, वा.यजु.१७/२२, तै.सं.४/६/२/६)
वीथिकानिर्ऋति कोणे-ॐ सेनेशाय नमः सेनेशमावाहयामि-इति सेनेशमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९६।
**या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।**
**शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः।**
(ऋक्.१०/८१/५, वा.यजु.१७/२१, तै.सं.४/६/२/५)
वीथिका वायु कोणे-ॐ वैकुण्ठ सेनान्ये सूत्रवतीसखाय नमः वैकुण्ठसेनान्यमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९७।

द्वाराद्बहिः क्षितौ पूर्वस्यां गरुडं दक्षिणस्यां चक्रं पश्चिमायां गदां उत्तरस्यां शङ्खं पूजयेत्। तद्यथा-

**सुपर्णोऽस्मि गरुत्माँस्त्रिवृते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत। (यजु.१२/४)**

द्वाराद् बहिः क्षितौ पूर्वस्याम्-ॐ गरुडाय पक्षिराजाय नमः गरुडमावाहयामि-इति गरुडमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणभेत्।९८।

**लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम्। ज्योतिष्मद् भ्राजमानं महस्वत्। अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम्। चरणं नो लोके सुधितां दधातु ।**(तै.ब्रा ३/१२/३/१०)

द्वाराद् बहिः दक्षिणस्याम्-ॐ सुदर्शनाय हेति राजाय नमः सुदर्शनमावाहयामि-इति सुदर्शनमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।९९।

**भीमानि ते आयुधा तिग्मानि धूर्वणे। (ऋक्.८/२९/५, ८/९६/९)**

द्वाराद् बहिः पश्चिमायाम्-ॐ कौमोदक्यै गदाधिपतये नमः कौमोदकी गदाहमावाहयामि-इति गदामावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१००।

**अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्। उपयाम गृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। (यजु.२६/९)**

द्वाराद् बहिरुत्तरस्याम्-ॐ पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नमः पाचजन्य शङ्खमावाहयामि-इति शङ्खमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१०१।

ततोऽरुणपूर्णशोभासु पूर्वादि क्रमेण विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया प्रह्वी सत्या ईशाना योगा इत्यष्टौ चामरग्राहिणीः पूजयेत्। तद्यथा-

**अथैतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। (यजु.३०/२२)**

ॐ विमलायै चामरहस्तायै नमः विमलामावाहयामि-इति प्राच्यां विमलामावाह्य षोडशोपचारैः समर्चयेत्।१०२।

**मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।**
**आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा। (यजु.१४/२१)**

ॐ उत्कर्षिण्यै चामरहस्तायै नमः उत्कर्षिणीमावाहयामि-इत्याग्नेय्यामुत्कर्षिणीमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।१०३।

**संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि**



**चित स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्।** (वा. यजु.१२/४६)

ॐ ज्ञानायै चामरहस्तायै नमः ज्ञानामावाहयामि-इति दक्षिणस्यां ज्ञानामावाह्य पूर्वोक्त रीत्या पूजयेत्।१०४।

**माता च ते पिता च ते ऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः।**
**विचक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु। (यजु.२३/२५)**

ॐ क्रियायै चामरहस्तायै नमः क्रियामावाहयामि-इति नैर्ऋत्यां क्रियामावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।१०५।

**बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।**
**इषुधिः समा पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः।(यजु.२९/४२)**

ॐ प्रह्व्यै चामरहस्तायै नमः प्रह्वीमावाहयामि-इति पश्चिमायां प्रह्वीमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।१०६।

**दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।(यजु.१९/७७)**

ॐ सत्यायै चामरहस्तायै नमः सत्यामावाहयामि-इति वायव्यां सत्यामवाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।१०७।

**तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यता वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये। (यजु.२५/१८)**

ॐ ईशानायै चामरहस्तायै नमः ईशानामावाहयामि-इत्युत्तरस्यामीशानामावाह्य पूर्वोक्त रीत्या पूजयेत्।१०८।

**योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये। (यजु.११/१४)**

ॐ योगायै चामरहस्तायै नमः योगामावाहयामि-इतीशान्यां योगामावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१०९।

ततः पीतोपशोभासु पूर्वादि क्रमेणाष्ट वसून् पूजयेत्। तद्यथा-

**अप्स्वप्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः।(यजु.१२/३६)**

पूर्वे-ॐ अद्भ्यो नमःअपःआवाहयामि-इत्यप आवाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।११०।

**ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्।**
**घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया। (यजु.५/२८)**

अग्निकोणे-ॐ ध्रुवाय नमः ध्रुवमावाहयामि-इति ध्रुवमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।१११।

**इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठचाय महते जान राज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। (यजु.९/४०)**

दक्षिणे-ॐ सोमाय नमः सोममावायामि-इति सोममावाह्य पूर्वोक्त रीत्या समर्चयेत्।११२।

**भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।**

**पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः। यजु.१३/१८)**

निर्ऋति कोणे-ॐ धरण्यै नम धरणीमावाहयामि-इति धरणीमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।११३।

**मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।**

**स सुगोपातमो जनः। (यजु.८/३१)**

पश्चिमे-ॐ अनिलाय नमः अनिलमावाहयामि-इत्यनिलमावाह्य सम्गर्चयेत्।११४।

**अग्निदूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवान् आसादयादिह।(यजु.२२/१७)**

वायव्य कोणे-ॐ अनलाय नमः अनलमावाहयामि-इत्यनलमावाह्य सर्वोपचारैः पूजयेत्।११५।

**प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः।**

**उर्वन्तरिक्षमन्वेमि। (यजु.१/७)**

ॐ प्रत्यूषाय नमः प्रत्यूषमावाहयामि-इत्युत्तरे प्रत्यूषमावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।११६।

**वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वाऽऽदित्येभ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तं रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि। (यजु.२/१६)**

ईशान कोणे-ॐ प्रभाताय नमः प्रभातमावाहयामि-इति प्रभातमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।११७।

ततः कृष्णार्धशोभासु पूर्वादिक्रमेण अष्टकुलनागान् पूजयेत्। तद्यथा-

**तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।**

**अनन्त मन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति।(यजु.३३/३८)**

पूर्वे-ॐ अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि-इत्यनन्तमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।११८।

**नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।**



**ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।**(यजु.१३/६)

आग्नेय कोणे-ॐ वासुकये नमः वासुकिमावाहयामि-इति वासुकिमावाह्य पूर्वोक्तरीत्या समर्चयेत्।११९।

**नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो। नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। (यजु.१६/२७)**

दक्षिणे-तक्षकाय नमः तक्षकमावाहयामि-इति तक्षकमावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।१२०।

**पुरुष मृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्ते ऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः। (यजु.२४/३५)**

नैर्ऋति कोणे-ॐ कुलीराय नमः कुलीरमावाहयामि-इति कुलीरमावाह्य पूजोपचारैः समर्चयेत्।१२१।

**इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्। (यजु.१९/९१)**

पश्चिमे-ॐ कर्कोटाय नमः कर्कोटमावाहयामि-इति कर्कोटकमावाह्य षोडशोपचारैः समर्चयेत्।१२२।

**प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तृणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनपमन्यतौ ऽरण्याय दावपम्। (यजु.३०/१९)**

वायु कोणे-ॐ शङ्खपालाय नमः शङ्खपालमावाहयामि-इति शङ्खपालमावाह्य पूर्वोक्तरीत्या समर्चयेत्।१२३।

**प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा। अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पील वासिनीम्। (यजु.२३/१८)**

उत्तरे-ॐ कम्बलाय नमः कम्बलमावाहयामि-इति कम्बलमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूजयेत्।१२४।

**यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।**

**य चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिमूर्त्तिर्न इन्वतु। (यजु.२५/२९)**

ईशान कोणे-ॐ अश्वतराय नमः अश्वतरमावाहयामि-इत्यश्वतरमावाह्य षोडशोपचारैः

सम्पूज्य प्रणमेत्।१२५।

आग्नेयप्रभृतिषु चतुष्कोणेषु चतुर्व्यूहान् पूजयेत्। तद्यथा-

**भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रघ्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकारितारं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमव ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेघाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम्। (यजु.३०/१२)**

ॐ वासुदेवाय परमेष्ठ्यात्मने नमः वासुदेवमावाहयामि-इत्याग्नेयां वासुदेवमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१२६।

**कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि।**
**समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः। (यजु.६/२८)**

ॐ सङ्कर्षणाय पुरुषात्मने नमः सङ्कर्षणमावाहयामि-इति नैर्ऋत्यां सङ्कर्षणमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१२७।

**मित्रस्य चर्षणी धृतोऽवो देवस्य सानसि।**
**द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्** ।(यजु.११/६२)

ॐ प्रद्युम्नाय विश्वात्मने नमः प्रद्युम्नमावाहयामि-इति वायव्यां प्रद्युम्नमावाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१२८।

**ऋतं सत्यमृतं सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः। ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतं शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः। व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि। (यजु.११/४७)**

ॐ अनिरुद्धाय निवृत्त्यात्मने नमः अनिरुद्धमावाहयामि-इतीशान्याम् अनिरुद्धमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१२९।

बाह्य परिधिषु सत्त्वादि गुण-त्रय-सम्भूतान् पूजयेत्। तद्यथा-

**त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।**
**प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम।**
(ऋक्.७/१००/३, तै.ब्रा.२/४/३/५)

बाह्यशुक्लपरिधौ-ॐ सत्त्वगुणसम्भूतेभ्यो नमः सत्त्वगुणसम्भूतान्यावाहयामि-इति सत्त्वगुणसम्भूतान्यावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्।१३०।

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।**



(ऋक्.१०/१२१/१, अथर्व.४/२/७, वा.यजु.१३/४,२३/१,२५/१०, तै.सं.४/१/८/३)

बाह्यारुणपरिधौ-ॐ रजोगुणसम्भूतेभ्योनमः रजोगुण सम्भूतान्यावाहयामि-इति रजोगुणसम्भूतान्यावाह्य सर्वोपचारैः समर्चयेत्।१३१।

**असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।**
**तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि। (यजु. १६/५४)**

बाह्य कृष्ण परिधौ-ॐ तमो गुण सम्भूतेभ्यो नमः तमोगुण सम्भूतान्यावाहयामि-इति तमोगुणसम्भूतान्यावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्।१३२।

एवं चक्राब्ज मण्डले देवानावाह्य संस्थाप्य सम्पूजयेत्।

नमोऽस्मदाचार्यपरम्पराभ्यो नमो नमो भागवतव्रजेभ्यः।

नमो नमोऽनन्तमुखामरेभ्यो नमः, श्रियै श्रीपतये नमोऽस्तु।

इति श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य्य वेदान्त-प्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परम हंस परिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवदनन्त-पादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य्यस्वामिना (त्रिदण्डी स्वामीति ख्यातः) सङ्कलितः चक्राब्ज मण्डल देवता पूजा विधिः।

## सन्दर्भ

पुस्तक में केवल मूल ग्रन्थों का ही सन्दर्भ दिया गया है। वह वर्णन या उद्धरण के साथ ही है। इसका मुख्य आधार पं. मधुसूदन ओझा के प्रायः २५० वैदिक ग्रन्थ हैं जो लुप्तप्राय हैं। उनके शिष्य पं. मोतीलाल शर्मा की कुछ पुस्तकें राजस्थान पत्रिका से प्रकाशित हैं। पं मधुसूदन ओझा की कुछ पुस्तकों का संकलन राजस्थान पत्रिका, जयपुर से प्रकाशित हुआ है। कुछ अन्य का प्रकाशन जोधपुर विश्वविद्यालय के मधुसूदन ओझा प्रकोष्ठ से हुआ है। उनके लोक वर्णन में मैंने थोड़ा सुधार किया है। जैन ज्योतिष-यजुर्वेद-भागवत पुराण के समन्वय से ७ योजन तथा ७ युगों की व्याख्या द्वारा वैदिक मापों का अर्थ स्पष्ट हुआ। आधुनिक अनुमानों से तुलना करने से ज्ञात होता है कि वह किस क्षेत्र का वर्णन कर रहे हैं। यज्ञ की व्याख्या तथा महाभूतों या छन्द के माप अर्थ की व्याख्या कुछ अधिक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक हुयी है। उनकी पुस्तकों या मेरे शोध के अतिरिक्त इस विषय पर कोई अन्य पुस्तक नहीं है, अतः उनका कोई सन्दर्भ नहीं दिया गया है। देश काल की माप के बारे में सांख्य सिद्धान्त के द्वितीय अध्याय में विस्तार से वर्णन है। उसक सार इस पुस्तक में है।

**मधुसूदन ओझा** के ग्रन्थ-(१) राजस्थान पत्रिका द्वारा -ब्रह्म सिद्धान्त (हिन्दी अनुवाद सहित), ४ खण्डों में श्री ए एस. रामनाथन द्वारा सम्पादित संकलन।

(२) जोधपुर विश्वविद्यालय से प्रकाशित-आवरणवाद, व्योमवाद, पितृ समीक्षा, वर्ण समीक्षा, वेद धर्म व्याख्यानम्।

(३) राजस्थान प्राच्य अनुसन्धान परिषद्, जोधपुर-पथ्या स्वस्ति, मधुसूदन ओझा की सारस्वत साधना (२ खण्ड), अत्रि ख्याति (२ खण्ड),।

(३) राजस्थानी ग्रन्थागार, जयपुर-जगद्गुरु वैभवम्।

(४) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय-ब्रह्म सिद्धान्त, रजोवाद।

**मोतीलाल शर्मा** की पुस्तकें-राजस्थान पत्रिका-शतपथ ब्राह्मण (४ खण्ड)-पूर्ण पुस्तक प्रायः १५ खण्डों में प्रकाशित हो रही है। श्राद्ध विज्ञान (४ खण्ड), गीता विज्ञान भाष्य भूमिका-९ खण्ड, उपनिषद् विज्ञान भाष्य भूमिका-३ खण्ड, ईशावास्योपनिषद्-२ खण्ड, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् आदि।

**मेरी पुस्तकें तथा लेख**-(१) सांख्य सिद्धान्त, (२) सिद्धान्त दर्पण का व्याख्या-२ खण्ड-ये दोनों नाग प्रकाशक, दिल्ली-७ से प्रकाशित हैं।

Vedic View of Sri Jagannatha- राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति से



प्रकाशित। सभी प्रकाशित लेख तथा कुछ पुस्तकें मेरे वेब साइट पर उपलब्ध हैं- www.scribd.com/Arunupadhyay.

**मूल पुस्तकें**-(१) वेद- सभी वेद तथा पुराण मूल रूप में नाग प्रकाशक द्वारा प्रकाशित है। शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मण भी यहां से प्रकाशित है। मत्स्य तथा कुछ अन्य पुराणों का अनुवाद भी यहां से प्रकाशित है।

(२) कुछ पुराणों का अनुवाद सहित गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशन हुआ है। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७ ने प्रायः १०० खण्डों में अधिकांश पुराणों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है, पर उनमें मूल नहीं है। अधिकतर मूल पुराण/ वेद वेब साइट पर उपलब्ध हैं।

(३) ४ वेदों का हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी प्रकाशन किया है।

(४) सातवलेकर जी के वेद मण्डल पारडी (सलसाड, जिला, गुजरात) से १० खण्डों में ४ वेद हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हैं। यजुर्वेद की सभी अन्य संहितायें बिना अनुवाद के प्रकाशित हैं।

(४) आर्य समाज दिल्ली (सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा द्वारा भी सभी वेद मूल तथा हिन्दी अनुवाद (ऋक् तथ यजु का दयानन्द भाष्य) सहित प्रकाशित हैं।